

‘भीमायनम्’ महाकाव्य में आत्मसम्मान का दार्शनिक विमर्श

Prof. Raja N. Kathad

Professor and Head,
Department of Sanskrit,
Saurashtra University Rajkot-5,
Gujarat, India,
E-Mail: rnkathad@sauuni.ac.in

सारांश

आधुनिक संस्कृत साहित्य में महाकाव्य परंपरा केवल पौराणिक आख्यानो, राजस्तुतियों या रुढिवादी विषयों तक सीमित नहीं रही, अपितु उसने आधुनिक सामाजिक, राजनीतिक तथा दार्शनिक विमर्शों को भी अपने भीतर अत्यंत प्रखरता से समाहित किया है। इसी युगपरिवर्तकारी परंपरा में प्रो. प्रभाशंकर जोशी विरचित ‘भीमायनम्’ एक अद्वितीय आधुनिक संस्कृत महाकाव्य है, जिसका केंद्रबिंदु भारत-रत्न डॉ. भीमराव रामजी अंबेडकर का जीवन, महासंघर्ष, वैचारिक क्रांति और उनका कालजयी सामाजिक चिंतन है।

प्रस्तुत शोध-पत्र में ‘भीमायनम्’ में प्रतिपादित "आत्मसम्मान" (Self-respect) के दार्शनिक सिद्धांतों का गहन एवं विश्लेषणात्मक अनुशीलन किया गया है। महाकाव्य में आत्मसम्मान को मानव जीवन का सर्वोच्च मूल्य और सामाजिक मुक्ति का मूल अधिष्ठान माना गया है। इस ग्रंथ में मानवतावाद, सामाजिक न्याय, मानसिक स्वतंत्रता, स्त्री-चेतना, शिक्षा तथा बौद्ध दर्शन के आलोक में आत्मसम्मान के विविध आयामों को शास्त्रीय पद्धति से निरूपित किया गया है। प्रस्तुत शोध-पत्र में महाकाव्य से उद्धृत मूल श्लोकों के माध्यम से यह सिद्ध करने का विनम्र प्रयास किया गया है कि ‘भीमायनम्’ आधुनिक संस्कृत वांगमय में सामाजिक-दार्शनिक चेतना और मानवीय गरिमा का एक प्रामाणिक एवं सशक्त दस्तावेज है।

- **मुख्य शब्द (Keywords):** भीमायनम्, डॉ. बी.आर. अंबेडकर, आत्मसम्मान, मानवीय गरिमा, आधुनिक संस्कृत महाकाव्य, सामाजिक न्याय, बौद्ध दर्शन, षड्दर्शन।

प्रस्तावना

संस्कृत साहित्य की महाकाव्य परंपरा सहस्रों वर्षों से भारतीय संस्कृति, अध्यात्म, नीति और जीवन-दर्शन की प्रखर संवाहक रही है। प्राचीन काल में जहाँ महाकाव्यों का केंद्र राजाओं, देवताओं और पौराणिक नायकों के चरित्र रहे, वहीं आधुनिक संस्कृत साहित्य में समकालीन सामाजिक यथार्थ और युगधर्म को केंद्रीय स्थान प्राप्त हुआ। आधुनिक संस्कृत साहित्यकारों ने राष्ट्रवाद, सामाजिक पुनर्जागरण, शोषित वर्ग की पीड़ा तथा लोकतांत्रिक मूल्यों को संस्कृत काव्य के माध्यम से सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान की। इसी वैचारिक संक्रांति के महाकाव्यात्मक स्वरूप का नाम है-‘भीमायनम्’।

यह महाकाव्य आधुनिक भारत के निर्माता, प्रखर विधिवेत्ता और महान समाजचिंतक डॉ. भीमराव अंबेडकर के लोक-कल्याणकारी जीवन पर आधारित है। बाबासाहेब अंबेडकर केवल एक राजनीतिक नेता या संविधान-निर्माता नहीं थे, अपितु वे एक युगद्रष्टा दार्शनिक थे, जिन्होंने सामाजिक समानता, शिक्षा, आत्मसम्मान और नैसर्गिक मानवाधिकारों के लिए आजीवन संघर्ष किया। महाकाव्य में “आत्मसम्मान” को मानव जीवन का सर्वोच्च मूल्य माना गया है। कवि ने यह प्रतिपादित किया है कि जिस समाज में मनुष्य का

सम्मान सुरक्षित नहीं, वहाँ स्वतंत्रता, समानता और न्याय भी अधूरे रह जाते हैं। विशेषतः शोषित वर्गों के सदस्यों में आत्मसम्मान का प्रश्न सामाजिक मुक्ति और मानवीय गरिमा से अनिवार्य रूप से जुड़ा हुआ है।

• आत्मसम्मान की दार्शनिक अवधारणा

आत्मसम्मान का दार्शनिक अर्थ है-अपने अस्तित्व, व्यक्तित्व और मानवीय गरिमा के प्रति पूर्ण जागरूकता तथा आत्म-गौरव की भावना। भारतीय दर्शन की अमूल्य धरोहर 'षड्दर्शन' (न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदान्त) मूलतः मानव आत्मा की मुक्ति, दुखों के आत्यंतिक नाश और परम पुरुषार्थ की मीमांसा करते हैं। यद्यपि इन प्राचीन दर्शनों में आधुनिक राजनीतिक शब्द 'आत्मसम्मान' का प्रत्यक्ष उल्लेख नहीं मिलता, किंतु वहाँ इसके आध्यात्मिक और तात्त्विक अधिष्ठान को 'आत्मगौरव', 'स्वाभिमान', 'आत्म-मर्यादा' और 'अस्मिता' के रूप में अत्यंत सूक्ष्मता से प्रतिपादित किया गया है। षड्दर्शन मनुष्य को हाड-मांस का पुतला या परिस्थितियों का दास नहीं मानते, बल्कि उसे 'अमृतस्य पुत्राः' या स्वतंत्र 'चेतन तत्व' घोषित कर उसके सर्वोच्च आंतरिक सम्मान की दार्शनिक नींव रखते हैं:

🌈 **सांख्य दर्शन** : यह दर्शन द्वैतवादी है, जो पूरी सृष्टि को दो तत्वों में विभक्त करता है-प्रकृति (जड़) और पुरुष (शुद्ध चेतन आत्मा)। सांख्य के अनुसार, 'पुरुष' नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त और उदासीन है। जब तक मनुष्य स्वयं को शरीर, जाति, वर्ण या समाज के बंधनों में बांधकर देखता है, वह अपमानित महसूस करता है। सांख्य कहता है कि जब पुरुष को यह 'विवेक ज्ञान' हो जाता है कि वह प्रकृति का दास नहीं है, बल्कि उससे श्रेष्ठ और स्वतंत्र सत्ता है, तब उसके भीतर सर्वोच्च आत्मगौरव का उदय होता है। प्रकृति के सामने न झुकना और अपनी स्वतंत्र चेतन सत्ता को पहचानना ही सांख्य का आत्मसम्मान है।

🌈 **योग दर्शन**: महर्षि पतंजलि कृत योग दर्शन व्यावहारिक धरातल पर आत्मचेतना को जगाने का मार्ग है। योग सूत्र में एक महत्वपूर्ण प्रत्यय आता है-'अस्मिता'। जब बुद्धि और पुरुष को एक मान लिया जाता है, तो वह अज्ञान है। योग का लक्ष्य है चित्त की वृत्तियों को रोककर आत्मा को उसके वास्तविक रूप में स्थापित करना-

तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् ॥ (योगसूत्र १.३)

जो व्यक्ति अपनी इंद्रियों, वासनाओं और बाहरी अपमान या प्रशंसा का दास है, वह आत्मसम्मान खो बैठता है। अपने वास्तविक 'स्वरूप' में स्थित होना और मानसिक गुलामी से मुक्त होना ही योग सम्मत आत्मसम्मान है।

🌈 **न्याय दर्शन**: महर्षि गौतम का न्याय दर्शन प्रमाणों, तर्कों और बुद्धिमत्ता पर आधारित है। न्याय दर्शन का मानना है कि संसार के सारे दुख और अपमान 'मिथ्याज्ञान' (गलत धारणाओं) के कारण हैं। जब मनुष्य को 'तत्त्वज्ञान' (यथार्थ ज्ञान) हो जाता है, तो उसके दुखों का आत्यंतिक नाश (अपवर्ग) हो जाता है। न्याय दर्शन मनुष्य को अंधविश्वासी होने से रोकता है और तार्किक स्वतंत्रता देता है। किसी भी सामाजिक कुरीति या अपमानजनक व्यवस्था को बिना तर्क के स्वीकार न करना और अपनी बुद्धि के बल पर सत्य की खोज करना ही न्याय दर्शन का बौद्धिक स्वाभिमान है।

• **वैशेषिक दर्शन**: महर्षि कणाद कृत वैशेषिक दर्शन परमाणुवाद और पदार्थों के वर्गीकरण के लिए प्रसिद्ध है। यह सृष्टि के प्रत्येक द्रव्य में एक 'विशेष' नामक पदार्थ को स्वीकार करता है, जो एक वस्तु को दूसरी वस्तु से अलग और अद्वितीय बनाता है। सामाजिक न्याय और आत्मसम्मान की दृष्टि से यह सिद्धांत क्रांतिकारी है। वैशेषिक के अनुसार, ब्रह्मांड की प्रत्येक आत्मा में एक 'विशेष' गुण है, जो उसे दूसरों से अलग और विशिष्ट बनाता है। समाज किसी को 'अछूत' या 'हीन' कहकर उसकी विशिष्टता को नष्ट नहीं कर सकता। अपनी इस अद्वितीय सत्ता को पहचानना और अपनी गरिमा को बनाए रखना ही वैशेषिक का आत्मगौरव है।

✚ **मीमांसा दर्शन:** महर्षि जैमिनि कृत पूर्व-मीमांसा दर्शन कर्म की सर्वोच्चता पर बल देता है। मीमांसा दर्शन ईश्वर को जगत का कर्ता नहीं मानता, बल्कि 'कर्म' को ही सर्वोपरि मानता है। मनुष्य अपने कर्मों का फल भोगने के लिए स्वयं उत्तरदायी है; कोई अदृश्य शक्ति या भाग्य उसका भाग्य तय नहीं करता। मीमांसा का यह कर्मवाद मनुष्य को अभूतपूर्व स्वावलंबन और गौरव प्रदान करता है। यह दर्शन सिखाता है कि तुम किसी के रहमों-करम पर नहीं जी रहे हो। तुम्हारा कर्म ही 'अपूर्व' (अदृश्य फल) उत्पन्न करता है। अपनी नियति को स्वयं बदलने की यह क्षमता ही कर्मयोगी का वास्तविक आत्मसम्मान है।

✚ **वेदान्त दर्शन:** महर्षि बादरायण और आदि शंकराचार्य का वेदान्त दर्शन आत्मसम्मान का सबसे प्रखर और उच्चतम शिखर है। वेदान्त का मूल सिद्धांत है-'अहं ब्रह्मास्मि' (मैं ही ब्रह्म हूँ) और 'तत्त्वमसि'। यहाँ आत्मा और परमात्मा में कोई भेद नहीं है-

सर्वं खल्विदं ब्रह्म ॥ (छान्दोग्य उपनिषद्)

दार्शनिक धरातल पर वेदान्त से बड़ा आत्मसम्मान का कोई दूसरा सिद्धांत नहीं है। यह मनुष्य को दीन-हीन, पापी या अछूत मानने से साफ इनकार करता है। वेदान्त चिल्लाकर कहता है कि तुम साक्षात् 'ब्रह्म' हो। जब प्रत्येक मनुष्य के भीतर एक ही ब्रह्म (चेतना) व्याप्त है, तो सामाजिक व्यवहार में ऊँच-नीच, जाति-पाति और छुआछूत का भेद दार्शनिक रूप से सर्वथा असत्य (मिथ्या) सिद्ध हो जाता है। स्वामी विवेकानंद ने इसी को 'व्यावहारिक वेदांत' कहा था, जो दलितों और शोषितों को उठने और अपना आत्मसम्मान वापस लेने की प्रेरणा देता है।

षड्दर्शन का सामूहिक निष्कर्ष यही है कि मनुष्य का वास्तविक सम्मान बाहरी परिस्थितियों, धन, जाति या सामाजिक पद पर निर्भर नहीं करता। सच्चा आत्मसम्मान 'आंतरिक जाग्रति' से आता है। जहाँ सांख्य और योग मनुष्य को मानसिक रूप से स्वतंत्र करते हैं, न्याय और वैशेषिक उसे तार्किक और विशिष्ट बनाते हैं, वहीं मीमांसा और वेदान्त उसे कर्म की शक्ति और 'ब्रह्म' होने का सर्वोच्च गौरव प्रदान करते हैं।

• 'भीमायनम्' में आत्मसम्मान :

भारतीय दर्शन की उपनिषदिक परंपरा में जहाँ "आत्मानं विद्धि" (अपने वास्तविक स्वरूप को जानो) कहकर आत्मज्ञान और स्वाभिमान को उच्च आध्यात्मिक मूल्य माना गया है, वहीं डॉ. भीमराव अंबेडकर ने इसी आत्मचेतना को सामाजिक क्रांति का व्यावहारिक और अनिवार्य मूलाधार माना। उनके अनुसार, मनुष्य का जीवन तभी सार्थक है, जब वह समाज में बिना किसी भेदभाव के पूर्णतः सम्मानपूर्वक जी सके। इसी क्रांतिकारी दार्शनिक चिंतन का प्रभाव 'भीमायनम्' के प्रत्येक सर्ग में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

■ आत्मसम्मान और मानव-मर्यादा

महाकाव्य में प्रत्येक मनुष्य की गरिमा को प्राकृतिक रूप से समान माना गया है। जन्मना जातिभेद और अस्पृश्यता को मनुष्य के आत्मसम्मान के विरुद्ध सबसे बड़ा अपराध घोषित किया गया है।

मानवस्य महत्त्वं हि ना जात्या न कुलेन च ।

आत्मसम्मानयुक्तस्य जीवनं शोभते सदा ॥ ('भीमायनम्', सर्ग २, श्लोक १५)

मनुष्य की महानता या उसका महत्त्व उसकी जाति या कुल से निर्धारित नहीं होता। इस संसार में केवल उसी मनुष्य का जीवन सदा सुशोभित और सार्थक है, जो आत्मसम्मान से युक्त है।

दार्शनिक दृष्टि से यह श्लोक जन्म पर आधारित सामाजिक व्यवस्था के खोखलेपन को उजागर करता है। उपनिषदों का अद्वैत दर्शन जब प्रत्येक जीव में एक ही ब्रह्म का निवास देखता है, तो सामाजिक धरातल पर कुल या जाति का अहंकार अज्ञान का सूचक है। महाकाव्यकार यहाँ स्पष्ट करते हैं कि मानव-मर्यादा का एकमात्र मापदंड आत्मसम्मान है। आत्मसम्मान से हीन व्यक्ति जीवित रहते हुए भी मृत समान है।

■ सामाजिक अन्याय के विरुद्ध स्वाभिमान

‘भीमायनम्’ में आत्मसम्मान को केवल एक अमूर्त विचार नहीं माना गया, बल्कि इसे अन्याय, शोषण और दमन के विरुद्ध सक्रिय संघर्ष करने की प्रेरक शक्ति के रूप में स्थापित किया गया है।

अपमानं न सोढव्यं मानवेन कदाचन ।

स्वाभिमानरक्षणार्थं संघर्षः कार्य एव हि ॥ (‘भीमायनम्’, सर्ग ६, श्लोक ४२)

किसी भी मनुष्य को अपने जीवन में कभी भी अपमान चुपचाप सहन नहीं करना चाहिए; क्योंकि अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए निरंतर संघर्ष करना ही मनुष्य का परम कर्तव्य है। यह श्लोक अस्तित्ववाद और प्रतिरोध के दर्शन को प्रतिपादित करता है। बाबासाहेब अंबेडकर का मानना था कि अपमान को चुपचाप सहना अमानवीयता को बढ़ावा देना है। यहाँ ‘संघर्ष’ को एक नैतिक कर्तव्य माना गया है। यह विचार भगवद्गीता के अन्याय के विरुद्ध अर्जुन को दिए गए युद्ध के संदेश से साम्य रखता है, जहाँ अपने अधिकारों और स्वाभिमान की रक्षा के लिए लड़ना ही वास्तविक धर्म है।

■ शिक्षा और आत्मसम्मान का अंतःसंबंध

महाकाव्य में शिक्षा को आत्मसम्मान प्राप्ति का सबसे प्रखर और व्यावहारिक साधन माना गया है। अज्ञान ही वह अंधकार है जो मनुष्य को हीनता ग्रंथि और मानसिक दासता की ओर ले जाती है।

विद्यया मानवो लोके स्वमूल्यं प्रतिपद्यते ।

ज्ञानदीपप्रभावेण स्वाभिमानः प्रवर्धते ॥ (‘भीमायनम्’, सर्ग ४, श्लोक १८)

इस संसार में मनुष्य शिक्षा के माध्यम से ही अपने वास्तविक मूल्य और अधिकारों को पहचान पाता है। ज्ञानरूपी दीपक के प्रभाव से ही उसके भीतर स्वाभिमान जाग्रत और प्रवर्धित होता है।

ज्ञान मीमांसा की दृष्टि से यह श्लोक अत्यंत महत्वपूर्ण है। शिक्षा केवल आजीविका का साधन नहीं है, बल्कि यह आत्म-साक्षात्कार का माध्यम है। जब एक शोषित व्यक्ति शिक्षित होता है, तो उसका बौद्धिक विकास होता है, जिससे वह अपनी हीनभावना का परित्याग कर समाज में बराबरी का दावा करता है। यह विचार डॉ. अंबेडकर के “शिक्षित बनो, संगठित रहो, संघर्ष करो” के मूल दार्शनिक सिद्धांत की शास्त्रीय पुनर्व्याख्या है।

■ आत्मसम्मान और मानसिक स्वतंत्रता

महाकाव्यकार के अनुसार, आत्मसम्मान और स्वतंत्रता एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जो व्यक्ति मानसिक रूप से दास है या जिसके भीतर आत्मगौरव नहीं है, उसके लिए भौतिक या राजनीतिक स्वतंत्रता पूरी तरह से अर्थहीन है।

स्वाभिमानविहीनस्य स्वातन्त्र्यं निष्फलं भवेत् ।

आत्मगौरवयुक्तेन जीवनं सार्थकं स्मृतम् ॥ (‘भीमायनम्’, सर्ग १०, श्लोक ३१)

स्वाभिमान से रहित व्यक्ति के लिए स्वतंत्रता भी पूरी तरह से निष्फल और व्यर्थ हो जाती है। दार्शनिकों ने केवल आत्मगौरव से युक्त जीवन को ही वास्तव में सार्थक माना है।

राजनीतिक दर्शन की दृष्टि से यह श्लोक यह स्पष्ट करता है कि बाह्य स्वतंत्रता तब तक कोई मूल्य नहीं रखती जब तक मनुष्य के भीतर आंतरिक स्वतंत्रता न हो। दासता केवल जंजीरों में जकड़े होने का नाम नहीं है, बल्कि अपनी मानवीय गरिमा को भूल जाना ही सबसे बड़ी दासता है। आत्मगौरव ही स्वतंत्रता को उपभोग करने की शक्ति प्रदान करता है।

■ बौद्ध दर्शन और आत्मगौरव का पुनरुत्थान

महाकाव्य के उत्तरार्ध में, बाबासाहेब द्वारा बौद्ध धर्म ग्रहण करने के प्रसंग में, बौद्ध दर्शन को आत्मसम्मान और सामाजिक समता का सर्वोत्कृष्ट मार्ग बताया गया है। बुद्ध का करुणा और प्रज्ञा का सिद्धांत आत्मगौरव की पुनर्स्थापना करता है।

बुद्धधर्म समाश्रित्य मानवो लभते गतिम् ।

समतायाः प्रकाशेन स्वाभिमानः प्रवर्धते ॥ ('भीमायनम्, सर्ग १९, श्लोक ५५)

बौद्ध धर्म का आश्रय लेकर मनुष्य वास्तविक प्रगति और आत्म-कल्याण को प्राप्त करता है। इस धर्म में व्याप्त समता के प्रकाश से प्रत्येक व्यक्ति का स्वाभिमान अत्यंत दृढ़ होता है।

यहाँ बौद्ध दर्शन के सामाजिक और व्यावहारिक पक्ष को उजागर किया गया है। बाबासाहेब का धम्म-परिवर्तन कोई रूढ़िवादी क्रिया नहीं थी, बल्कि वह एक आध्यात्मिक और सामाजिक पुनर्जागरण था। बुद्ध का मार्ग जन्मना श्रेष्ठता को नकार कर 'अत्त दीपो भव' - अपना दीपक स्वयं बनो का उपदेश देता है, जो व्यक्ति के भीतर आत्मगौरव और आत्म-निर्भरता की दार्शनिक नींव रखता है।

■ भारतीय संविधान और आत्मसम्मान की सुरक्षा

डॉ. भीमराव अंबेडकर द्वारा निर्मित भारत के संविधान को इस महाकाव्य में केवल एक कानूनी दस्तावेज नहीं, बल्कि प्रत्येक नागरिक की मानवीय गरिमा और आत्मसम्मान का रक्षक कवच माना गया है।

संविधानप्रभावेण जागृतो मानवो महान् ।

अधिकारैः संरक्षितः स्वाभिमानं प्रपद्यते ॥ ('भीमायनम्, सर्ग १६, श्लोक १८)

आधुनिक भारतीय संविधान के दार्शनिक प्रभाव से समाज का सामान्य और पीड़ित मनुष्य भी आज जाग्रत और महान हो गया है। मौलिक अधिकारों से सुरक्षित होकर वह अपने खोए हुए आत्मसम्मान को पुनः प्राप्त कर रहा है।

न्यायशास्त्र और राजनीतिक नीतिशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में यह श्लोक प्रतिपादित करता है कि आत्मसम्मान को केवल नैतिक उपदेशों से सुरक्षित नहीं रखा जा सकता; उसके लिए संवैधानिक और कानूनी संरक्षण अनिवार्य है। संविधान मनुष्य को 'याचक' से 'नागरिक' बनाता है, जो उसके आत्मसम्मान की वास्तविक गारंटी है।

■ नारी-आत्मसम्मान का दार्शनिक पक्ष

'भीमायनम्' महाकाव्य में बाबासाहेब के स्त्री-मुक्ति और उनके अधिकारों के संघर्ष को भी आत्मसम्मान के विमर्श का एक अत्यंत महत्वपूर्ण और अनिवार्य अंग माना गया है।

यत्र नार्यः समादृत्य स्वाधिकारैः विभूषिताः ।

तत्रैव शोभते राष्ट्रं संस्कृत्या च समन्वितम् ॥ ('भीमायनम्, सर्ग १४, श्लोक २९)

जिस समाज या राष्ट्र में नारियों को पूर्ण आदर-सम्मान मिलता है और वे अपने अधिकारों से विभूषित होती हैं, वही राष्ट्र वास्तविक संस्कृति से समन्वित होकर संपूर्ण विश्व में सुशोभित होता है।

यह श्लोक प्राचीन मनुस्मृति के प्रसिद्ध वाक्य “यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः” की एक आधुनिक, प्रगतिशील और संवैधानिक पुनर्व्याख्या है। यहाँ ‘पूजा’ के स्थान पर ‘स्वाधिकारैः विभूषिताः’ - अधिकारों से युक्त होना शब्द का प्रयोग किया गया है। दार्शनिक दृष्टि से नारी का आत्मसम्मान दया या संरक्षण पर नहीं, बल्कि उसके नैसर्गिक अधिकारों और उसकी सामाजिक स्वतंत्रता पर निर्भर करता है। यही बाबासाहेब के ‘हिंदू कोड बिल’ के पीछे का मूल दर्शन था।

■ आत्मसम्मान और उच्च नैतिकता

महाकाव्य में यह दार्शनिक सिद्धांत स्थापित किया गया है कि सच्चा आत्मसम्मान मनुष्य को केवल अधिकारों के प्रति सजग नहीं करता, बल्कि उसे एक उच्च नैतिक जीवन जीने की आंतरिक प्रेरणा भी देता है।

स्वाभिमाने स्थितो नित्यं नाधर्मे रमते नरः ।

आत्मगौरवयुक्तस्य नैतिकं जीवनं भवेत् ॥ (‘भीमायनम्’, सर्ग ११, श्लोक ३)

जो मनुष्य निरंतर अपने स्वाभिमान और आत्म-मर्यादा में स्थित रहता है, वह कभी भी अधर्म या अनैतिक कार्यों में प्रवृत्त नहीं होता। आत्मगौरव से युक्त व्यक्ति का जीवन स्वतः ही नैतिक और सदाचारी बन जाता है।

नीतिशास्त्र की दृष्टि से यह श्लोक आत्मसम्मान को सदाचार का मूल स्रोत मानता है। जो व्यक्ति स्वयं का सम्मान करता है, वह कभी ऐसा कोई कार्य नहीं करेगा जिससे उसकी अंतरात्मा को ग्लानि हो या समाज में उसका सिर नीचा हो। अतः आत्मसम्मान व्यक्ति को वासनाओं, भ्रष्टाचार और अधर्म से दूर रखकर एक न्यायपूर्ण समाज के निर्माण में सहायक बनाता है।

■ आत्मसम्मान और मानवतावाद का समन्वित विमर्श

‘भीमायनम्’ महाकाव्य में आत्मसम्मान का अंतिम और परम उद्देश्य किसी संकीर्ण वर्ग-हित की साधना नहीं, बल्कि संपूर्ण मानवता की प्रतिष्ठा है। महाकाव्यकार ने पूरे ग्रंथ के दार्शनिक मर्म को निम्नलिखित वैचारिक सूत्रों में पिरोया है:

- आत्मसम्मान के बिना स्वतंत्रता अधूरी है: क्योंकि आत्मसम्मानहीन मनुष्य मानसिक रूप से सदा दास ही रहेगा।
- आत्मसम्मान के बिना समानता असंभव है: क्योंकि सम्मान की भावना के बिना दो वर्गों के बीच केवल घृणा या दया का संबंध हो संबंध हो सकता है, समता का नहीं।
- आत्मसम्मान के बिना शिक्षा दुर्लभ है: क्योंकि वास्तविक शिक्षा वही है जो मनुष्य के भीतर आत्म-चेतना और विवेक को जाग्रत करे।
- आत्मसम्मान के बिना न्याय अस्थिर है: क्योंकि जिस समाज में मानवीय गरिमा का सम्मान नहीं है, वहाँ कानून केवल शक्तिशाली का हथियार बनकर रह जाता है।
- ‘भीमायनम्’ महाकाव्य में प्रतिपादित आत्मसम्मान के इस बहुआयामी चिंतन भारतीय उपनिषदिक आत्म-परंपरा, बुद्ध के करुणा-मार्ग, कबीर के पाखंड-विरोध तथा पाश्चात्य लोकतांत्रिक मूल्यों का एक अप्रतिम और प्रगतिशील समन्वय है।

• उपसंहार

‘भीमायनम्’ आधुनिक संस्कृत साहित्य परंपरा का एक युगांतकारी, क्रांतिकारी और दार्शनिक मील का पत्थर है। यह महाकाव्य अकाट्य श्लोक संदर्भों के माध्यम से यह संदेश देता है कि सम्मानपूर्ण जीवन जीना किसी भी मनुष्य पर समाज का अहसान नहीं, बल्कि उसका नैसर्गिक और मौलिक अधिकार है।

डॉ. भीमराव अंबेडकर के महान जीवन-संघर्ष और उनके विचारों से अनुप्राणित होकर महाकाव्यकार प्रो. प्रभाशंकर जोशी ने आधुनिक समाज को यह शाश्वत शिक्षा दी है कि:

1. आत्मसम्मान ही मानव जीवन की वास्तविक और आत्मिक शक्ति है।
2. आत्मसम्मान ही सामाजिक बंधनों और दासता से मुक्ति का एकमात्र राजमार्ग है।
3. आत्मसम्मान ही एक स्वतंत्र, समान, नैतिक और न्यायपूर्ण लोकतांत्रिक समाज की स्थापना का मूल आधारतत्त्व है।

यह महाकाव्य सिद्ध करता है कि संस्कृत भाषा केवल प्राचीन ऋषियों के आध्यात्मिक चिंतन को ही अभिव्यक्त नहीं करती, बल्कि वह समकालीन युग की सामाजिक क्रांतियों और मानवाधिकारों के विमर्श को भी उतनी ही शास्त्रीय प्रखरता और भव्यता के साथ वैश्विक पटल पर स्थापित करने में पूर्णतः सक्षम है।

• **संदर्भ सूची**

1. जोशी, प्रो. प्रभाशंकर, 'भीमायनम्' महाकाव्य, शारदा गौरव ग्रन्थमाला, पुणे।
2. अंबेडकर, डॉ. भीमराव रामजी, एनिहिलेशन ऑफ कास्ट (Annihilation of Caste), सिद्धार्थ प्रकाशन, मुंबई।
3. अंबेडकर, डॉ. भीमराव रामजी, द बुद्धा एंड हिज धम्मा, बुद्धभूमि प्रकाशन, नागपुर।
4. मिश्र, सूर्यकांत, संस्कृत महाकाव्य परंपरा और आधुनिकता, चौकम्बा विद्याभवन, वाराणसी।
5. त्रिपाठी, राधावल्लभ, संस्कृत साहित्य की प्रवृत्तियाँ और आधुनिक युग, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

સામાજિક ન્યાય, સમાનતા અને બંધુત્વ અને આધુનિક ભારતમાં તેની સુસંગતતા અંગે
ડૉ. આંબેડકરના મંતવ્યો

ડૉ. મગનલાલ એસ. મોલીયા

પ્રોફેસર, અને અધ્યક્ષ,

શિક્ષણસાસ્ત્ર ભવન,

સૌરાષ્ટ્ર યુનિવર્સિટી, રાજકોટ -૦૫

M-9687693241

Email: msmolia99@gmail.com

સારાંશ

પ્રસ્તુત સંશોધનના મુખ્ય હેતુઓ (1) ન્યાય, સમાનતા અને બંધુત્વ માટે ઉપલબ્ધ બંધારણીય જોગવાઈઓને સમજવી અને (2) સામાજિક-આર્થિક દુષણોની હાજરીની વર્તમાન પરિસ્થિતિને ઓળખવા અને બાબાસાહેબ ડૉ. આંબેડકરના સપના અને વર્તમાન વાસ્તવિક ભારત વચ્ચેના અંતરને ઓળખવાના હતા. ગુણાત્મક પ્રકારનું વિષયવસ્તુ વિશ્લેષણ પદ્ધતિ દ્વારા થયેલ આ સંશોધનનું વ્યાપકવિશ્વ તરીકે ભારતીય બંધારણ, ડૉ. ભીમરાવ રામજી આંબેડકરના પુસ્તકો અને સાહિત્યને પસંદ કર્યા હતા. માહિતીના ગૌણ સ્ત્રોતોનો ઉપયોગ માહિતીના સંગ્રહ માટે ખાસ કરીને સત્તાવાર વેબસાઈટ્સ, ઈ-અખબારો, ભારતીય બંધારણ, સામયિકો, જેમ કે ભીમ પત્રિકા વગેરે નમૂના તરીકે પસંદ કર્યા હતા. માહિતી એકત્રીકરણ માટે વેબસાઈટ્સ, ઈ-અખબારો, ભારતીય બંધારણ, સામયિકો, જેમ કે ભીમ પત્રિકા વગેરે નો ઊંડાણપૂર્વક અભ્યાસ કર્યો હતો. માહિતીનું પૃથક્કરણ અને અર્થઘટન વિષયવસ્તુ વિશ્લેષણ પદ્ધતિથી કર્યું હતું. અભ્યાસના તારણો (1) આંબેડકરના મતે તેમનો સામાજિક ન્યાય નૈતિક મૂલ્યો અને સ્વાભિમાન પર આધારિત છે. બંધારણ દ્વારા નિયંત્રિત સામાજિક, રાજકીય અને આર્થિક ન્યાયાધીશો દ્વારા ન્યાય થાય છે. આંબેડકરનો સામાજિક ન્યાયનો ખ્યાલ તમામ મનુષ્યોની સ્વતંત્રતા, સમાનતા અને બંધુત્વ માટેનો છે, (2) આંબેડકરે મહિલાઓ માટે વ્યાપક આર્થિક અને સામાજિક અધિકારોની હિમાયત કરી અને અનુસૂચિત જાતિ અને અનુસૂચિત જનજાતિ અને અન્ય પછાત વર્ગના સભ્યો માટે નાગરિક સેવાઓ, શાળાઓ અને કોલેજોમાં અનામતની પ્રણાલી દાખલ કરવા માટે વિધાનસભાનું સમર્થન મેળવ્યું (3) આંબેડકર એ હકીકતને સ્વીકારે છે કે ફેન્સ્ય ક્રાંતિકારીઓએ બંધુત્વ શબ્દની શોધ કરી હતી અને તેનો ઉપયોગ કર્યો હતો અને (4) મોટાભાગના લોકો હજુ પણ સ્ત્રીઓ અને SC/ST પ્રત્યે નકારાત્મક માનસિકતા/અભિગમ ધરાવે છે.

મુખ્ય શબ્દો: સ્વતંત્રતા, સમાનતા, બંધુત્વ, ભેદભાવ, અત્યાચાર વગેરે.

• પ્રસ્તાવના

“મને સ્વતંત્રતા, સમાનતા અને બંધુત્વ શીખવતો ધર્મ ગમે છે - ડૉ. ભીમરાવ રામજી આંબેડકર”

ભારતીય બંધારણની પ્રસ્તાવના જણાવે છે કે બંધારણ વધુ સંપૂર્ણ સંઘની રચના કરવા, ન્યાયની સ્થાપના કરવા, ઘરેલું શાંતિ સુનિશ્ચિત કરવા, સામાન્ય સંરક્ષણ માટે પ્રદાન કરવા અને સામાન્ય કલ્યાણને પ્રોત્સાહન આપવા માટે અસ્તિત્વમાં છે. તે જણાવે છે કે બંધારણ તેની સત્તા ભારતના લોકો પાસેથી મેળવે છે અને ભારતને સમાજવાદી, સાર્વભૌમ, બિનસાંપ્રદાયિક અને લોકશાહી તરીકે જાહેર કરે છે. ન્યાય, સ્વતંત્રતા, સમાનતા અને બંધુત્વ એ બંધારણના ઉદ્દેશ્યો છે. પ્રસ્તાવનામાં સાર્વભૌમ, સમાજવાદી, બિનસાંપ્રદાયિક, લોકશાહી, પ્રજાસત્તાક શબ્દો રાજ્યની પ્રકૃતિ સૂચવે

છે. ન્યાય, સ્વતંત્રતા, સમાનતા, બંધુત્વના આદર્શો બંધારણના ઉદ્દેશ્યોને પ્રતિબિંબિત કરે છે. બાબાસાહેબ ડૉ. બી.આર. આંબેડકરે ભારતીય બંધારણની કલમ 32 એટલે કે બંધારણીય ઉપાયોના અધિકારને 'બંધારણનું હૃદય અને આત્મા' ગણાવ્યું હતું. પ્રસ્તાવનાને બંધારણનું હૃદય કહેવામાં આવે છે કારણ કે તે બંધારણમાં જે કંઈ છે તેનો ટૂંકો સારાંસ આપે છે. 42મા સુધારાએ પ્રસ્તાવનામાં પણ સુધારો કર્યો અને ભારતના વર્ણનને "સાર્વભૌમ લોકતાંત્રિક પ્રજાસત્તાક"માંથી બદલીને "સાર્વભૌમ, સમાજવાદી બિનસાંપ્રદાયિક લોકશાહી પ્રજાસત્તાક" બનાવ્યું, અને "રાષ્ટ્રની એકતા" શબ્દોને "રાષ્ટ્રની એકતા અને અખંડિતતા"માં બદલી નાખ્યા. હાલમાં ભારતીય બંધારણમાં 25 ભાગોમાં 448 લેખો, 12 અનુસૂચિઓ, 5 પરિશિષ્ટો અને 98 સુધારાઓ છે જ્યારે તે લખવામાં આવ્યું ત્યારે તેની સરખામણીએ તેમાં 22 ભાગોમાં 395 લેખો અને પ્રારંભ સમયે 8 અનુસૂચિઓ હતી.

સરકારો, એનજીઓ, સામાજિક સંગઠનો અને અનેક કાયદાઓ અને જોગવાઈઓના સખત પ્રયાસો છતાં, આપણે ભારતીયો આપણા દેશમાં સમાનતા, ન્યાય અને બંધુત્વની સ્થાપના કરવામાં ખાસ કરીને SC/ST અને સ્ત્રીઓ (તમામ ધર્મો, જાતિઓ અને જ્ઞાતિઓની) ના સંદર્ભમાં મોટા પ્રમાણમાં નિષ્ફળ ગયા છીએ. બાબાસાહેબ જે સપનું જોયું હતું તે ભારત બનાવવાના સપનાને આપણે સાકાર કરી શક્યા નથી. બાબાસાહેબના સપનાના ભારત અને વાસ્તવિક ભારતમાં મોટું અંતર છે. પછીના વિભાગમાં, આ અને અન્ય સંબંધિત મુદ્દાઓ પર ટૂંકી ચર્ચા કરવામાં આવી છે.

● અભ્યાસના ઉદ્દેશ્યો

અભ્યાસના ઉદ્દેશ્યો આ પ્રમાણે હતાં.

1. ન્યાય, સમાનતા અને બંધુત્વ માટે ઉપલબ્ધ બંધારણીય જોગવાઈઓને સમજવી.
2. સામાજિક-આર્થિક દુષણોની હાજરીની વર્તમાન પરિસ્થિતિને ઓળખવા અને બાબાસાહેબ ડૉ. આંબેડકરના સપના અને વર્તમાન વાસ્તવિક ભારત વચ્ચેના અંતરને ઓળખવા.

● વ્યાપવિશ્વ અને નમૂનો

પ્રસ્તુત અભ્યાસમાં વ્યાપવિશ્વ તરીકે ભારતીય બંધારણ, ડૉ. ભીમરાવ રામજી આંબેડકરના પુસ્તકો અને સાહિત્યને પસંદ કર્યા હતા. માહિતીના ગૌણ સ્ત્રોતોનો ઉપયોગ માહિતીના સંગ્રહ માટે ખાસ કરીને સત્તાવાર વેબસાઈટ્સ, ઈ-અખબારો, ભારતીય બંધારણ, સામયિકો, જેમ કે ભીમ પત્રિકા વગેરે નમૂના તરીકે પસંદ કર્યા હતા.

● સંશોધન પદ્ધતિ

પ્રસ્તુત સંશોધનમાં વર્ણનાત્મક સંશોધન પદ્ધતિ પૈકી વિષયવસ્તુ વિશ્લેષણ પદ્ધતિનો ઉપયોગ કર્યો હતો.

● માહિતી એકત્રીકરણ, પૃથ્થકરણ અને અર્થઘટન

માહિતી એકત્રીકરણ માટે વેબસાઈટ્સ, ઈ-અખબારો, ભારતીય બંધારણ, સામયિકો, જેમ કે ભીમ પત્રિકા વગેરે નો ઊંડાણપૂર્વક અભ્યાસ કર્યો હતો. માહિતીનું પૃથ્થકરણ અને અર્થઘટન વિષયવસ્તુ વિશ્લેષણ પદ્ધતિથી કર્યું હતું.

● ચર્ચા અને વિશ્લેષણ

બાબાસાહેબ ડૉ.બી.આર.આંબેડકરે દેશ માટે પોતાનું આખું જીવન બલિદાન આપ્યું અને પોતાને સાચા દેશવાસી તરીકે સાબિત કર્યા. તેમણે દેશ માટે તેમની પત્ની અને ચાર બાળકોનું બલિદાન આપ્યું કારણ કે તેઓ એક નવું ભારત (એટલે કે ભારત) બનાવવાની તેમની પ્રતિબદ્ધતા અને સમર્પણને કારણે તેમની પત્ની અને પરિવારને યોગ્ય સમય આપી શક્યા ન હતા. ગંભીર ગરીબીનો સામનો કરવા છતાં, તેમણે એક એવો દેશ બનાવવાનું સપનું જોયું અને

કામ કર્યું જ્યાં બધા કોઈ પણ ભેદભાવ વિના, અસમાનતા કે અન્યાય વિના સાથે રહી શકે. તેમના સપનાઓને વ્યવહારુ સ્વરૂપ આપવા માટે, તેમણે માત્ર અંગ્રેજોના શાસન દરમિયાન જ નહીં પરંતુ સ્વતંત્ર ભારતમાં પણ સમાજના દરેક વર્ગના અધિકારો માટે લડ્યા. તેમણે આત્યંતિક પરિસ્થિતિઓમાં અભ્યાસ કર્યો અને તેમના જીવનના દરેક ક્ષેત્રમાં માઈલેજ સ્ટોન સેટ કર્યો. તેમની સિદ્ધિઓ ઉત્કૃષ્ટ અને ઉત્તમ છે. તેમણે સ્વતંત્ર ભારતમાં પ્રથમ કાયદા પ્રધાન તરીકે ભારતીય બંધારણ લખવામાં અને વિવિધ કાયદાઓ (અધિનિયમો) પસાર કરવામાં દિવસ-રાત મહેનત કરી હતી. તેમનો દીર્ઘદ્રષ્ટિપૂર્ણ અભિગમ ન્યાયી સમાજ, સુમેળભર્યો સમાજ અને જાતિવિહીન સમાજ માટેની તેમની તરસમાંથી ઉદભવે છે જેના માટે તેમણે જીવનભર શિક્ષણ, સંગઠન અને સંઘર્ષ પર ભાર મૂક્યો હતો. તેમણે એકતા, સમાનતા અને બંધુત્વ પર ધ્યાન કેન્દ્રિત કર્યું. તેમના લખાણો અને ભાષણો અને તેમના પુસ્તકોમાંના દરેક શબ્દ દરેક ભારતીય માટે સફળતાનો માર્ગ મોકળો કર્યો અને ખોલ્યો. તેમણે રાજકીય લોકશાહી ઉપરાંત સામાજિક-આર્થિક લોકશાહી પર ધ્યાન કેન્દ્રિત કર્યું.

A. ન્યાય, સમાનતા અને બંધુત્વ માટે ઉપલબ્ધ બંધારણીય જોગવાઈઓ. બંધારણ ભારતીય નાગરિકોને નીચેના છ મૂળભૂત અધિકારોની બાંધધરી આપે છે:

- | | |
|-------------------------------------|---------------------------------|
| (i) સમાનતાનો અધિકાર | (ii) સ્વતંત્રતાનો અધિકાર |
| (iii) શોષણ સામેનો અધિકાર | (iv) ધર્મની સ્વતંત્રતાનો અધિકાર |
| (v) સાંસ્કૃતિક અને શૈક્ષણિક અધિકારો | (vi) બંધારણીય ઉપાયોનો અધિકાર |

મૂળભૂત અધિકારોનો અર્થ એ છે કે જે અધિકારો બંધારણ નાગરિકોને બાંધધરી આપે છે અને જે સામાન્ય રીતે સ્વીકૃત મૂળભૂત મૂલ્યો તરીકે સમાજમાં પોતાને પ્રગટ કરે છે. આપણા મૂળભૂત અધિકારોમાં સ્વાતંત્ર્યના કહેવાતા અધિકારોનો સમાવેશ થાય છે. અમારા મૂળભૂત અધિકારોમાં આર્થિક, સામાજિક અને સાંસ્કૃતિક અધિકારોનો પણ સમાવેશ થાય છે. ભારતીય બંધારણની કલમ 32 આ જોગવાઈને સમાવિષ્ટ કરે છે જેમાં વ્યક્તિઓ તેમના મૂળભૂત અધિકારોના ઉલ્લંઘન માટે નિવારણની માંગ કરી શકે છે, જ્યાં સુધી તે જાહેર ફરજોના આવા અધિકારોના અમલ માટે બંધારણીય શસ્ત્રો, જેને 'રિટ' તરીકે ઓળખવામાં આવે છે ત્યાં સુધી અવલોકન સાચું છે.

આપણું બંધારણ દેશના દરેક નાગરિકને સમાન અધિકારો અને તકો પ્રદાન કરે છે અને સમાજના કેટલાક વર્ગો, જેમ કે મહિલાઓ, એસસી/એસટી, ઓબીસી, લઘુમતી વર્ગો માટે વિશેષ સુરક્ષા છે જેનું હજારો વર્ષોથી જાતિ/ધર્મના નામે શોષણ કરવામાં આવ્યું હતું. આ એ લોકો છે જેઓ અમુક ધર્મના ઠેકેદારોની ગંદી/સંકુચિત માનસિકતાના કારણે ખોરાક, આશ્રય અને વસ્ત્રની પ્રાથમિક સુવિધાઓથી પણ વંચિત હતા. લોકશાહી સંઘવાદની વિભાવના પર આધારિત છે, જે વિવિધ જૂથોમાં સત્તાનું સમાન વિભાજન છે. આથી, દેશમાં વીજળીના પ્રવાહને સંતુલિત કરવા માટે, સરકારે સમાજના અમુક વર્ગ માટે વિશેષ સુરક્ષા પ્રદાન કરવી પડશે.

સામાજિક ન્યાય સૂચવે છે કે સમાજના તમામ લાભો અને વિશેષાધિકારો તેના તમામ સભ્યો દ્વારા વહેંચવા જોઈએ. જો કોઈ ચોક્કસ વિભાગ પ્રત્યે કોઈ માળખાકીય અસમાનતા હોય, તો સરકારે આવી અસમાનતાને દૂર કરવા માટે હકારાત્મક પગલાં લેવા જોઈએ. સરળ શબ્દોમાં તે સકારાત્મક ઉદારવાદના વિચાર સાથે અને કલ્યાણકારી રાજ્યના ખ્યાલ સાથે સંબંધિત છે. તે તે પ્રકારના રાજ્યો માટે વપરાય છે જેમના કાર્યો કાયદો અને વ્યવસ્થા સુધી મર્યાદિત નથી પરંતુ તે લોકોની સંભાળ રાખવા માટે વિસ્તૃત છે જેઓ તેમને મદદ કરવાની સ્થિતિમાં નથી. આંબેડકરના મતે તેમનો સામાજિક ન્યાય નૈતિક મૂલ્યો અને સ્વાભિમાન પર આધારિત છે. બંધારણ દ્વારા નિયંત્રિત સામાજિક, રાજકીય અને આર્થિક ન્યાયાધીશો દ્વારા ન્યાય થાય છે.

આંબેડકરનો સામાજિક ન્યાયનો ખ્યાલ તમામ મનુષ્યોની સ્વતંત્રતા, સમાનતા અને બંધુત્વ માટેનો છે. તેઓ એક એવી સામાજિક વ્યવસ્થા માટે ઊભા હતા જે તેમના જીવનના તમામ ક્ષેત્રોમાં માણસ અને માણસ વચ્ચેના સાચા સંબંધો પર આધારિત હોય.

આંબેડકરે મહિલાઓ માટે વ્યાપક આર્થિક અને સામાજિક અધિકારોની હિમાયત કરી અને અનુસૂચિત જાતિ અને અનુસૂચિત જનજાતિ અને અન્ય પછાત વર્ગના સભ્યો માટે નાગરિક સેવાઓ, શાળાઓ અને કોલેજોમાં અનામતની પ્રાણલી દાખલ કરવા માટે વિધાનસભાનું સમર્થન મેળવ્યું.

આપણે વારંવાર સાંભળીએ છીએ કે ડૉ બી આર આંબેડકરે ફ્રેન્ચ ક્રાંતિમાંથી ભાઈચારો શબ્દ ઉધાર લીધો હતો. જોકે આંબેડકર એ હકીકતને સ્વીકારે છે કે ફ્રેન્ચ ક્રાંતિકારીઓએ બંધુત્વ શબ્દની શોધ કરી હતી અને તેનો ઉપયોગ કર્યો હતો, તેઓ સ્પષ્ટતા કરે છે કે તેઓ જે બૌદ્ધ ધર્મનું પાલન કરતા હતા તેમાં આ શબ્દનો સાચો અર્થ તેમને મળ્યો હતો.

B. સામાજિક-આર્થિક ખરાબીઓની વર્તમાન પરિસ્થિતિ અને બાબાસાહેબના સ્વપ્નવાળા ભારત અને વાસ્તવિક ભારત વચ્ચેના અંતર. સામાજિક-આર્થિક ખરાબીઓની વર્તમાન પરિસ્થિતિ અને બાબાસાહેબના સ્વપ્નવાળા ભારત અને વાસ્તવિક ભારત વચ્ચેના અંતર આ પ્રમાણે છે.

1. ભારતીય બંધારણમાં અને વાસ્તવિક ભારતમાં મહિલા. લિંગ સમાનતાનો સિદ્ધાંત ભારતીય બંધારણમાં તેની પ્રસ્તાવના, મૂળભૂત અધિકારો, મૂળભૂત ફરજો અને નિર્દેશક સિદ્ધાંતોમાં સમાવિષ્ટ છે. બંધારણ માત્ર મહિલાઓને સમાનતા આપતું નથી, પરંતુ મહિલાઓની તરફેણમાં હકારાત્મક ભેદભાવના પગલાં અપનાવવા માટે રાજ્યને સશક્તિકરણ પણ કરે છે. ભારતનું બંધારણ લિંગ પર આધારિત ભેદભાવને પ્રતિબંધિત કરે છે પરંતુ તે સમાન રીતે સરકારને મહિલાઓ માટે વિશેષ પગલાં લેવાનું નિર્દેશન અને સત્તા આપે છે. છેલ્લા ચાર દાયકામાં ભલે મહિલાઓની સ્થિતિમાં સુધારો થયો છે, પરંતુ તેમ છતાં તેઓ પોતાની ગરિમા અને સ્વતંત્રતા જાળવવા માટે સંઘર્ષ કરી રહી છે. હાલમાં ભારતીય મહિલાઓ માનસિક અને શારીરિક રીતે સૌથી મુશ્કેલ સમયનો સામનો કરી રહી છે, જેનું મુખ્ય કારણ સ્ત્રીના કાયદાકીય અને બંધારણીય અધિકારો અંગેની અજાણતા અને જ્ઞાનનો અભાવ છે. બંધારણ મહિલાઓ માટે ઘણા સંરક્ષણ અધિકારો પ્રદાન કરે છે જેમ કે મહિલાઓની તરફેણમાં રક્ષણાત્મક ભેદભાવ, મહિલાઓની સ્વતંત્રતાનો અધિકાર, શોષણ સામે મહિલાઓનો અધિકાર, નિર્દેશો હેઠળના મહિલાઓના અધિકારો અને મહિલાઓની રાજકીય રજૂઆત.

તાજેતરના થોમસન રોયટર્સ ફાઉન્ડેશનના સર્વેક્ષણ 2018માં ભારતને મહિલાઓ માટે વિશ્વનો સૌથી ખતરનાક દેશ જાહેર કરવામાં આવ્યો છે. અફઘાનિસ્તાન અથવા સીરિયા જેવા યુદ્ધગ્રસ્ત દેશો અથવા સાઉદી અરેબિયા જેવા રાજાશાહી દેશો કરતાં ભારત વધુ ખરાબ સ્કોર કરે છે તે જોઈને આંચકો લાગે છે, જ્યાં મહિલાઓ થોડા અધિકારો છે. વિશ્વની સૌથી મોટી કાર્યકારી લોકશાહી ભારતમાંથી દરેક વ્યક્તિ મહિલાઓ માટે વધુ અને વધુ સારી અપેક્ષા રાખે છે. છેવટે, ભારતીય બંધારણ મહિલાઓને સમાનતાના અધિકારોને સમાયોજિત કરે છે, જેમાં અવાજની સ્વતંત્રતા, ચળવળ અને તેમના પોતાના શરીર પરના અધિકારોનો સમાવેશ થાય છે. ભારતનો હોદ્દો રાષ્ટ્રીય ગૌરવને ઠેસ પહોંચાડે છે કારણ કે તે એક એવો દેશ છે જ્યાં લાખો સ્માર્ટલી પોશાક પહેરેલી મહિલાઓ દરરોજ બહુમાળી ઓફિસોમાં કામ કરવા જાય છે, જ્યાં મહિલાઓની સુરક્ષા માટે કાયદા બદલાયા છે અને જ્યાં મહિલાઓ અને પુરૂષો વિકરાળ બળાત્કાર સામે વિરોધ કરવા શેરીઓમાં ઉતરી આવ્યા છે. ટોડલર્સ, આઠ વર્ષની બાળકીઓ પર સામૂહિક બળાત્કાર અને મહિલાઓની હેરફેરનો વિરોધ કરી રહેલી યુવા મહિલા કાર્યકરોની.

થોમસન રોઈટર્સ ફાઉન્ડેશન સર્વેનું સૌથી મોટું યોગદાન એ છે કે તે લિંગ તફાવત અથવા લિંગ સમાનતા વિશેના પ્રશ્નોને મહિલાઓની સુરક્ષા અને જોખમ વિશેના પ્રશ્નમાં ફેરવે છે. તે હવે અધિકારોનો ફિલોસોફિકલ મુદ્દો

નથી. તે ફક્ત પૂછે છે: શું સ્ત્રીઓ સુરક્ષિત અને મુક્ત છે? તે આપણને ઔપચારિક કાયદો, શિક્ષણ, રોજગાર અથવા આવક હોવા છતાં, સંસ્કૃતિમાં સ્ત્રીઓ સાથે ખરેખર કેવી રીતે વર્તે છે તે અસર કરે છે તેવા કાયદાઓના અમલીકરણ અને સાંસ્કૃતિક દળોને ધ્યાનમાં લેવા દબાણ કરે છે. ભારત એ હકીકતને નકારે છે કે તેની મોટાભાગની મહિલાઓ શેરીઓમાં, કામ પર, બજારોમાં અથવા ઘરમાં એકલી સુરક્ષિત અનુભવતી નથી, તેમ છતાં તેઓએ આ અસ્તિત્વની ચિંતાનો સામનો કેવી રીતે કરવો તે શીખી લીધું છે. નવી દિલ્હી (ભારતની રાષ્ટ્રીય રાજધાની)માં મોટાભાગની શિક્ષિત યુવતીઓ સલામત અનુભવતી નથી અને તેઓ બિનજરૂરી રીતે એકલા બહાર નથી જતા; અંધારા પહેલા રાત્રે ઘરે આવો; બહાર જવાની પરવાનગી મેળવો; હંમેશા સાવચેત અને સાવચેત રહો; અને તેઓ તેમની વાણી, તેમના કપડાં અને તેમના શરીરની મુદ્રાને સેન્સર કરે છે, જેમાં તેઓ પુરુષોની આંખોમાં દેખાય છે કે નહીં.

નેશનલ ક્રાઈમ રેકૉર્ડ બ્યુરોના 2012 થી 2016ના આંકડા દર્શાવે છે કે બળાત્કારનો ભોગ બનેલી લગભગ 40% મહિલાઓ સગીર હતી અને 95% બળાત્કારીને ઓળખતી હતી. બળાત્કારીઓ વિસ્તૃત પરિવાર અને મિત્રોના "વિશ્વાસના વર્તુળ" ના હતા. યુવાન છોકરીઓને ક્યાં જવું નથી. ભારતીય મહિલાઓ સતત સતર્કતાની સ્થિતિમાં છે, જેમ કે- આતંકવાદી એલર્ટ પરનો દેશ. કલમ 23 "માણસ અને ભિખારી અને મજૂરના અન્ય સમાન સ્વરૂપોની અવજવર" ને પ્રતિબંધિત કરે છે. અભિવ્યક્તિ "મનુષ્યમાં ટ્રાફિક એ દેખીતી રીતે ખૂબ જ વ્યાપક અભિવ્યક્તિ છે, જેમાં અનૈતિક અથવા અન્ય હેતુઓ માટે મહિલાઓના ટ્રાફિક પર પ્રતિબંધનો સમાવેશ થાય છે. મહિલાઓ અને છોકરીઓની અનૈતિક હેરફેરનું દમન અધિનિયમ, 1956 પણ મહિલાઓ અને છોકરીઓની અનૈતિક હેરફેરને રોકવા અથવા નાબૂદ કરવાના ઉદ્દેશ્ય સાથે ઘડવામાં આવ્યો છે. કલમ 21 અને 23 પણ રાજ્ય પર ફરજ લાદે છે કે તેઓ મુક્ત કરાયેલા બંધુઆ મજૂરોની ઓળખ, મુક્તિ અને પુનર્વસન કરે.

2. ભારતીય બંધારણમાં અને વાસ્તવિક ભારતમાં SC/ST. બંધારણીય આદેશને જાળવી રાખવા અને અનુસૂચિત જાતિ અને અનુસૂચિત જનજાતિ (SCST) ના હિતોની રક્ષા કરવા માટે, તેમના માટે અનામતના માર્ગ દ્વારા વિશેષાધિકારો સહિત, સમય સમય પર વિશેષ સામાજિક અધિનિયમો અમલમાં આવ્યા છે. કેન્દ્ર દ્વારા મુખ્ય કાયદાકીય અધિનિયમો છે: (i) નાગરિક અધિકાર અધિનિયમ, 1955નું રક્ષણ; (ii) SC/ST (અત્યાચાર નિવારણ) અધિનિયમ, 1989. નાગરિક અધિકારોનું રક્ષણ અધિનિયમ, 1955 બંધારણની કલમ 17 ને આગળ વધારવા માટે ઘડવામાં આવ્યો હતો જેના દ્વારા અસ્પૃશ્યતા નાબૂદ કરવામાં આવી હતી અને કોઈપણ સ્વરૂપમાં તેની પ્રથા પર પ્રતિબંધ છે. વધુમાં, અન્ય સમુદાયોની વ્યક્તિઓ દ્વારા અનુસૂચિત જાતિ/જનજાતિ વિરુદ્ધ ગુનાઓને રોકવા અને અટકાવવા માટે, અનુસૂચિત જાતિ અને અનુસૂચિત જનજાતિ (અત્યાચાર નિવારણ) અધિનિયમ, 1989 30મી જાન્યુઆરી, 1990થી અમલમાં મૂકવામાં આવ્યો હતો. આ કાયદાઓએ સકારાત્મકતાનો વિસ્તાર કર્યો છે. SC અને ST ની તરફેણમાં ફોજદારી કાયદાના ક્ષેત્રમાં ભેદભાવ, તેઓ ભારતીય દંડ સંહિતા (IPC) અને અન્ય કાયદાઓ હેઠળના અનુરૂપ ગુનાઓ કરતાં વધુ કડક દંડ સૂચવે છે. આ અધિનિયમો હેઠળ ફક્ત નોંધાયેલા કેસોની ઝડપી સુનાવણી માટે, મુખ્ય રાજ્યોમાં વિશેષ કેન્દ્રોની સ્થાપના કરવામાં આવી છે. વધુમાં, બંધારણનો 65મો સુધારો અધિનિયમ, 1990ના અનુસંધાનમાં, SC અને ST માટે રાષ્ટ્રીય આયોગની રચના કરવામાં આવી હતી. 12મી માર્ચ, 1992, SC અને STના સામાજિક-આર્થિક વિકાસ માટે મહત્વપૂર્ણ એવા મુદ્દાઓ હાથ ધરવા માટે સિવિલ કોર્ટના વિશાળ કાર્યો અને સત્તાઓ સાથે.

આ કાયદાઓ હોવા છતાં, SC/ST વિરુદ્ધ અપરાધનો ગ્રાફ સતત વધી રહ્યો છે. આવી ક્રૂરતા પાછળનું સૌથી મહત્વનું કારણ એ છે કે દેશની આખી વ્યવસ્થામાં SCST લોકોના યોગ્ય યોગદાનનો અભાવ, પછી તે ન્યાયતંત્ર હોય, પોલીસ હોય કે રાજકારણ. મહત્તમ સત્તાઓ અને શક્તિશાળી હોદ્દો બિન-SCST લોકોના હાથમાં છે અને જ્યારે પણ આવા કિસ્સાઓ તેમની સામે આવે છે અને ગરીબ SCST લોકો તેમના અધિકારો અને ન્યાયથી વંચિત છે ત્યારે

આમાંથી મહત્તમ લોકો તેમના પોતાના સમુદાય/જાતિના લોકોની તરફેણ કરે છે. સંકુચિત માનસિકતા માત્ર અભણ લોકોમાં જ નહીં પરંતુ પ્રતિષ્ઠિત હોદ્દા પર કામ કરતા ઉચ્ચ શિક્ષિત વ્યક્તિઓમાં પણ જોવા મળે છે. તેઓ SC/ST સામે તિરસ્કાર અને શ્રેષ્ઠતા સંકુલની તૈયાર ધારણા ધરાવે છે અને આવા રોગ હજારો વર્ષોથી તેમના લોહીનો એક ભાગ છે જે ફક્ત આત્મનિરીક્ષણ અને પ્રેમ, શાંતિ, સંવાદિતા, ભાઈચારો અને દયાથી શુદ્ધ થઈ શકે છે. ભગવાન બુદ્ધ).

2016 માં અનુસૂચિત જાતિ અને અનુસૂચિત જનજાતિ (SC/ST) વિરુદ્ધ અપરાધના 47,338 જેટલા કેસ નોંધાયા હતા (NCRB દ્વારા અહેવાલ). તેમાંથી, 78.3% માં ચાર્જશીટ દાખલ કરવામાં આવી હતી અને દોષિત ઠરાવનો દર માત્ર 25.8% હતો. 2015 માં, કુલ 38,564 કેસો અને 6275 કેસ અનુક્રમે SC અને ST વિરુદ્ધ કથિત ગુના માટે નોંધાયા હતા જેમાં દોષિત ઠરાવો દર અનુક્રમે માત્ર 27.2% અને 19.8% હતો. SC/ST (અત્યાચાર નિવારણ) નિયમો 1995 ના નિયમ 3 (v) સ્પષ્ટ કરે છે કે SC/ST ના સભ્યો પર અત્યાચાર અટકાવવા માટે, જો જરૂરી જણાય તો, SC/ST ના સભ્યોને શસ્ત્ર લાઈસન્સ આપી શકે છે, પરંતુ વાસ્તવમાં આવા સંરક્ષણ હથિયારો છે. અધિકારીઓ કે સરકાર દ્વારા આપવામાં આવેલ નથી.

ભારતમાં બિહાર રાજ્યમાં SC/ST સામેના ગુનાનો દર સૌથી વધુ છે અને પશ્ચિમ બંગાળ સૌથી ઓછો (NCRB) છે. 2014 થી, SC સામેના ગુનાઓમાં એકંદરે એક ટકાનો વધારો થયો છે, જોકે 2016 માં તેમાં 5.5 ટકાનો તીવ્ર વધારો થયો હતો. ખાસ કરીને SCs સામેના ગુનાઓ માટે, મધ્યપ્રદેશ સૌથી વધુ 43.4 ટકા છે, અને પશ્ચિમ બંગાળ સૌથી ઓછું 6 ટકા છે. ખાસ કરીને ST વસ્તી સામેના ગુનાઓમાં રાજસ્થાન સૌથી વધુ 12.9 ટકા છે, જ્યારે પશ્ચિમ બંગાળ સૌથી ઓછું 1.6 ટકા છે. અનુસૂચિત જાતિ અને અનુસૂચિત જનજાતિ (અત્યાચાર નિવારણ) અધિનિયમ, 1989 હેઠળ અનુસૂચિત જાતિ અને અનુસૂચિત જનજાતિ (અત્યાચાર નિવારણ) અધિનિયમ હેઠળ સુરક્ષિત છે તે સુનિશ્ચિત કરવામાં પોલીસ નિર્ણાયક ભૂમિકા ભજવે છે. કેસ નોંધાયા પછી ચાર્જશીટ દાખલ કરવામાં આવે તે સુનિશ્ચિત કરવા માટે તેઓ જવાબદાર છે, અને કે પછી તમામ કેસોની તપાસ કરવામાં આવે છે અને સુનાવણીના તબક્કામાં મોકલવામાં આવે છે.

2016 માં, SC દ્વારા કુલ 39629 કેસ દાખલ કરવામાં આવ્યા હતા, જેમાં સૌથી વધુ સંખ્યામાં છત્તીસગઢમાં નિકાલ કરવામાં આવ્યો હતો (5479). ST દ્વારા દાખલ કરાયેલા કુલ 6490 કેસોનો નિકાલ કરવામાં આવ્યો હતો, જેમાં સૌથી વધુ નિકાલ મધ્ય પ્રદેશ (1805)માં થયો હતો. અધિનિયમ હેઠળ એસસી/એસટી દ્વારા દાખલ કરાયેલા તમામ કેસોમાંથી, લગભગ 30 ટકા હજુ તપાસ બાકી છે. રાજ્ય સ્તરે, ઝારખંડમાં SC અને ST બંને માટે આ પ્રમાણ સૌથી વધુ છે (અનુક્રમે 65.8% અને 69.7%). તેનાથી વિપરિત, કેટલાક રાજ્યોમાં મધ્યપ્રદેશ (9.7% અને 7%) જેવા SC અને STના પડતર કેસોની સંખ્યા ખૂબ ઓછી છે. SC અને ST (78.3% અને 81.3%) વિરુદ્ધ હિંસાના અહેવાલો માટે પોલીસ જે દરે ચાર્જશીટ ફાઈલ કરે છે તે દર પણ ચાર્જશીટના રાષ્ટ્રીય દર (87.5%) કરતા ઓછો છે.

ન્યાયતંત્ર એ અધિનિયમ હેઠળ એસસી/એસટીના અધિકારોને લાગુ કરવા માટે જવાબદાર સંસ્થા છે, ન્યાયી સુનાવણી ચલાવીને અને દોષના કિસ્સામાં સત્તાવણી કરનારને દોષિત ઠેરવીને. SC/ST અત્યાચારો સાથે સંકળાયેલા કેસો માટે દોષિત ઠરાવો દર ST (20.8%) માટે અખિલ ભારતીય દર (21%) કરતા થોડો ઓછો છે, અને SC (25%) સાથે સંકળાયેલા કેસોમાં નોંધપાત્ર રીતે વધારે છે. ખાસ કરીને કર્ણાટક, ઓડિશા અને આંધ્ર પ્રદેશમાં દોષિત ઠરાવનો દર ઓછો છે. જો કે, હજુ પણ મોટી સંખ્યામાં SC/ST અત્યાચારો સાથે સંકળાયેલા કેસો પેન્ડિંગ છે, જે દર્શાવે છે કે ન્યાયમાં વિલંબ થઈ રહ્યો છે. બિહાર જેવા રાજ્યો SC અને ST બંને કેસો (95.9% અને 94%) માટે ખૂબ જ ઊંચો પેન્ડિંગ દર દર્શાવે છે. લગભગ તમામ રાજ્યોમાં પેન્ડિંગ ટકાવારી 80% થી વધુ છે, જે સમગ્ર દેશમાં અત્યંત બેકલોગનું પ્રતિનિધિત્વ કરે છે. પોલીસ તપાસના તબક્કે, પીડિતા દ્વારા હકીકતમાં થયેલી ભૂલને કારણે અથવા

તેને ખોટો કેસ માનવામાં આવતાં પોલીસ દ્વારા કુલ 1063 કેસોનો નિકાલ કરવામાં આવ્યો હતો. આમાંથી 691 કેસ રાજસ્થાન રાજ્યમાં થયા છે. વધુમાં, અદાલતો દ્વારા નિકાલ કરાયેલા કેસોમાં, SC/ST વિરુદ્ધ હિંસાના કેસોમાં પ્લી સોદાબાજી માટે એક રસપ્રદ વલણ જોવા મળે છે. 2016 માં, પ્લી સોદાબાજીની પદ્ધતિનો ઉપયોગ કરીને 38 કેસોનો નિકાલ કરવામાં આવ્યો હતો, અને તે બધા રાજસ્થાન રાજ્યમાં સાક્ષી બન્યા હતા. SC/ST લોકોએ જોકે ઘણા કેસોમાં આરોપ લગાવ્યો હતો કે પોલીસ અને ન્યાયતંત્ર સાંઠગાંઠનો એક ભાગ છે અને SC/ST પીડિતોને કોઈ સુરક્ષા પૂરી પાડવામાં આવતી નથી અને શક્તિશાળી લોકો (ઘણી વખત શ્રીમંત લોકો, મોટા જમીનદારો, રાજકારણીઓ વગેરે) ની ધમકીઓને લીધે તેઓ મજબૂરી હેઠળ સમાધાન. આ નીચા દોષિત દરનું એક કારણ છે અને દોષિત વ્યક્તિ/વ્યક્તિ ભય વિના મુક્તપણે ફરે છે કારણ કે તેઓ પોલીસ હોય કે બીજું કંઈપણ ખરીદી શકે છે.

● અભ્યાસના તારણો

અભ્યાસના તારણો આ પ્રમાણે હતા.

1. આંબેડકરના મતે તેમનો સામાજિક ન્યાય નૈતિક મૂલ્યો અને સ્વાભિમાન પર આધારિત છે. બંધારણ દ્વારા નિયંત્રિત સામાજિક, રાજકીય અને આર્થિક ન્યાયાધીશો દ્વારા ન્યાય થાય છે. આંબેડકરનો સામાજિક ન્યાયનો ખ્યાલ તમામ મનુષ્યોની સ્વતંત્રતા, સમાનતા અને બંધુત્વ માટેનો છે.
2. આંબેડકરે મહિલાઓ માટે વ્યાપક આર્થિક અને સામાજિક અધિકારોની હિમાયત કરી અને અનુસૂચિત જાતિ અને અનુસૂચિત જનજાતિ અને અન્ય પછાત વર્ગના સભ્યો માટે નાગરિક સેવાઓ, શાળાઓ અને કોલેજોમાં અનામતની પ્રણાલી દાખલ કરવા માટે વિધાનસભાનું સમર્થન મેળવ્યું.
3. આંબેડકર એ હકીકતને સ્વીકારે છે કે ફેન્ટ ક્રાંતિકારીઓએ બંધુત્વ શબ્દની શોધ કરી હતી અને તેનો ઉપયોગ કર્યો હતો,
4. મોટાભાગના લોકો હજુ પણ સ્ત્રીઓ અને SC/ST પ્રત્યે નકારાત્મક માનસિકતા/અભિગમ ધરાવે છે.

● ઉપસંહાર

ભારતીય બંધારણ બાબાસાહેબ ડૉ. બી.આર. આંબેડકરે આ આશા સાથે લખ્યું હતું કે નવા બંધારણ સાથે, સરકારો સમગ્ર દેશમાં શાંતિ, પ્રેમ, સંવાદિતા અને ભાઈચારો સ્થાપિત કરવાની સ્થિતિમાં હશે અને ભારતમાં હાજર સામાજિક-આર્થિક દુષણો નાબૂદ થશે. હજારો વર્ષોથી સમાજ તેમને આશા હતી કે એક નાગરિકતા, એક ઓળખ અને એક મતદાનનો અધિકાર લોકોમાં સમાનતા લાવશે. તેમણે દેશમાં મહિલાઓ અને સમાજના દલિત વર્ગના હિતોની સુરક્ષા માટે બંધારણમાં મોટી સંખ્યામાં કલમો બનાવી. આ કલમો અને કાયદાઓ હોવા છતાં, મહિલાઓ અને SCST સામે ક્રૂરતા, અત્યાચાર અને હિંસાનો ગ્રાફ સતત વધી રહ્યો છે. જોકે, વિવિધ સરકારો, એનજીઓ અને સામાજિક સંગઠનોએ બંધારણના અમલ માટે તેમના શ્રેષ્ઠ પ્રયાસો કર્યા છે પરંતુ તે વાસ્તવિક અર્થમાં થઈ શક્યું નથી, એટલે કે, બંધારણનો સંપૂર્ણ અને સંપૂર્ણ ભાવનાથી અમલ થતો નથી. સામાજિક માળખું, જીવનધોરણ અને લોકોની વધતી આવકમાં ધરખમ ફેરફારો જોવા મળ્યા છે, પરંતુ મોટાભાગના લોકો હજુ પણ સ્ત્રીઓ અને SC/ST પ્રત્યે નકારાત્મક માનસિકતા/અભિગમ ધરાવે છે અને તેથી જ અત્યાચાર, બળાત્કાર, છેડતી, ઘરેલું હિંસા, અસ્પૃશ્યતા, અસ્પૃશ્યતાની ઘટનાઓની સંખ્યા વધી રહી છે. અપમાન દિવસેને દિવસે વધી રહ્યું છે. આપણે, ભારતના લોકોએ બંધારણની પ્રસ્તાવના, આપણા મૂળભૂત અધિકારો અને ફરજો અને આપણા બંધારણના અન્ય પાસાઓને ખૂબ કાળજીપૂર્વક વાંચવું જોઈએ અને આપણા રોજિંદા જીવનમાં અમલમાં મૂકવું જોઈએ. આનાથી અમને એક આદર્શ ભારતીય નાગરિક બનવામાં મદદ મળશે અને અમે કોઈપણ પૂર્વગ્રહ વિના અને લિંગ, જાતિ, ધર્મ અથવા પ્રદેશના નામે કોઈપણ ભેદભાવ વિના આપણા દેશના દરેક નાગરિકને માન આપવાનું શરૂ કરીશું. ચાલો ભગવાન બુદ્ધ, સતગુરુ રવિદાસજી

અને અન્ય સંતોએ આપેલા નિર્દેશને અનુસરીએ અને પ્રેમ, શાંતિ, સૌહાર્દ અને ભાઈચારા સાથે સમૃદ્ધ ભારત તરફ આગળ વધીએ.

References

- Jadhav Narendra, (2014). Ambedkar: Awakening India's social conscience, Konark Publishers, New Delhi, pp. 453-463.
- Dr. A. Padmanaban: Ambedkar's life's and legacy, Ambedkar and social justice, Vol. II, Published by Director Publication Division, Govt. of India. pp. 27.
- Kuber, W.N. (1973). Dr. Ambedkar: A Critical Study, People's publishing House, New Delhi.
- Lal, Shyam (1998). "Ambedkar and Social Justice" in Shyam Lal and KS Sazena,(eds), Ambedkar and Nation Building, Rawat Publication, Jaipur, Quoted in A Ranjith Kumar, "Ambedkar's Notion of Social Justice-A Different Perspective" , international journal of scientific and engineering research, December, 2011.
- Ambedkar, B.R. (1989). "Women and Counter Revaluation". "Riddles of Hindu Women" in Dr. Baba Saheb Ambedkar: Writings and Speech, Vol. 3, Department of Education, Government of Maharashtra.
- Arya Sudha (2000). Women Gender Equality and the State, Deep and Deep Publications, New Delhi. 2000.
- Government of India: The National Policy for the Empowerment of Women (2001), Department of Women and Child Development, Ministry of Human Resource Development, New Delhi.
- Haksar, Nandita (1986). Demystification of Law for Women, Lancer Press, New Delhi.
- K. Kavita (2013). B. R. Ambedkar' Role in Women Empowerment, Women Issues.
- Limaye, Champa (1999). Women Power and Progress, B.R. Publishing Corporation, New Delhi.
- Mathew, Thomas (1999) Ambedkar: Reform or Revolution, Segment Books, New Delhi.
- P, Hemraj (2013). Dr. Ambedkar and Women Empowerment, Dalit vision.
- www.ncrb.gov.in
- www.theguardian.com
- www.evaglobaldatabase.com
- www.indianexpress.com
- www.thewire.in
- www.thetimesofindia.com
- www.buddymantras.com

भासकृत 'दूतवाक्यम्' रूपक में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का समन्वित अध्ययन

डॉ. वैशालीबेन जे. पटेल

सहायक प्राध्यापक (संस्कृत)

शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, वांसदा

जिला : नवसारी (गुजरात)

ई-मेल आईडी : patelvj009@gmail.com

सारांश

भारतीय दर्शन में पुरुषार्थ-चतुष्टय-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-मानव जीवन के सर्वांगीण विकास का आधार माना गया है। संस्कृत नाट्य-परंपरा में महाकवि भास द्वारा रचित दूतवाक्यम् रूपक महाभारत की कथा पर आधारित होते हुए भी केवल युद्ध-प्रसंग तक सीमित न रहकर गहन नैतिक, सामाजिक एवं दार्शनिक मूल्यों को अभिव्यक्त करता है। प्रस्तुत शोध-लेख में दूतवाक्यम् के प्रमुख पात्रों, संवादों तथा कथानक के माध्यम से पुरुषार्थ-चतुष्टय की अवधारणा का विशद एवं समन्वित विश्लेषण किया गया है। इस अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि भास ने धर्म को केंद्रीय पुरुषार्थ मानते हुए अर्थ और काम को उसके अधीन तथा मोक्ष को अंतिम लक्ष्य के रूप में प्रतिष्ठित किया है। यह रूपक भारतीय जीवन-दर्शन की शाश्वत प्रासंगिकता को सुदृढ़ रूप में प्रस्तुत करता है।

बीज शब्द : दूतवाक्यम्, भास, पुरुषार्थ-चतुष्टय, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, महाभारत

• पूर्वभूमिका :

भारतीय सांस्कृतिक परंपरा में मानव जीवन को उद्देश्यहीन नहीं माना गया है। जीवन की सार्थकता के लिए जिन चार मूल उद्देश्यों को स्वीकार किया गया है, वे ही पुरुषार्थ-चतुष्टय कहलाते हैं-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। ये चारों पुरुषार्थ न केवल व्यक्तिगत जीवन को दिशा प्रदान करते हैं, बल्कि सामाजिक व्यवस्था, राजनीतिक आचरण और आध्यात्मिक उन्नति का भी आधार हैं।

संस्कृत साहित्य, विशेषतः नाट्य-साहित्य, इन पुरुषार्थों की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम रहा है। भास संस्कृत नाटक के प्राचीनतम और प्रभावशाली नाटककारों में माने जाते हैं। उनके नाटक महाभारत की कथाओं पर आधारित होते हुए भी केवल आख्यान-वर्णन तक सीमित नहीं रहते, बल्कि गहन दार्शनिक एवं नैतिक चिंतन प्रस्तुत करते हैं।

दूतवाक्यम् एक एकांकी रूपक है, जिसमें भगवान् श्रीकृष्ण कौरव-सभा में पांडवों के दूत बनकर शांति-संदेश देने जाते हैं। यह रूपक युद्ध-पूर्व की राजनीतिक, नैतिक और मानसिक स्थिति को दर्शाता है। इसी पृष्ठभूमि में पुरुषार्थ-चतुष्टय की अवधारणा अत्यंत प्रभावशाली ढंग से उभरकर सामने आती है।

१. पुरुषार्थ-चतुष्टय की अवधारणा

भारतीय दर्शन एवं संस्कृति में पुरुषार्थ-चतुष्टय मानव जीवन के मूल उद्देश्यों का समन्वित स्वरूप है। 'पुरुषार्थ' शब्द का तात्पर्य है-मानव द्वारा साध्य किए जाने वाले जीवन-लक्ष्य, और 'चतुष्टय' का अर्थ है-चार। इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-ये चार पुरुषार्थ भारतीय जीवन-दर्शन की आधारशिला माने

जाते हैं। इनका उद्देश्य मानव जीवन को केवल भौतिक सुख तक सीमित न रखकर नैतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक पूर्णता की ओर उन्मुख करना है।

पुरुषार्थ-चतुष्टय भारतीय दर्शन में जीवन के संतुलित और समन्वित दृष्टिकोण को प्रस्तुत करता है। धर्म मार्गदर्शक है, अर्थ साधन है, काम प्रेरक शक्ति है और मोक्ष अंतिम लक्ष्य। इन चारों के सामंजस्य से ही मानव जीवन सार्थक, नैतिक और पूर्ण बनता है।

२. दूतवाक्यम् में 'धर्म' पुरुषार्थ का निरूपण

संस्कृत नाट्य-साहित्य में महाकवि भासकृत दूतवाक्यम् रूपक में धर्म पुरुषार्थ का निरूपण अत्यंत प्रभावशाली एवं केंद्रीय रूप में हुआ है।

दूतवाक्यम् में भगवान् श्रीकृष्ण का दूत-रूप धर्म पुरुषार्थ का सशक्त प्रतीक है। श्रीकृष्ण पांडवों की ओर से कौरव-सभा में शांति-संदेश लेकर जाते हैं। उनका उद्देश्य युद्ध को रोकना और धर्मसम्मत समाधान प्रस्तुत करना है। वे दुर्योधन के समक्ष अत्यंत संयमित और न्यायपूर्ण प्रस्ताव रखते हैं, जिससे यह स्पष्ट होता है कि धर्म का मार्ग सदैव अहिंसा, संवाद और समझौते को प्राथमिकता देता है।

इस रूपक में राजधर्म की अवधारणा विशेष रूप से उभरकर सामने आती है। युधिष्ठिर का चरित्र धर्म का आदर्श रूप प्रस्तुत करता है। वे राज्य, सत्ता और व्यक्तिगत प्रतिशोध की अपेक्षा न्याय और शांति को अधिक महत्त्व देते हैं। युधिष्ठिर का यह आचरण दर्शाता है कि राजा का धर्म केवल शासन करना नहीं, बल्कि प्रजा के कल्याण और न्याय की स्थापना करना है। इसके विपरीत, दुर्योधन सत्ता-लोभ और अहंकार के कारण राजधर्म का उल्लंघन करता है।

दूतवाक्यम् में बंधुधर्म और सामाजिक धर्म का भी स्पष्ट निरूपण मिलता है। श्रीकृष्ण बार-बार दुर्योधन को भाई-भाई के संबंध, कुल-मर्यादा और पारिवारिक धर्म का स्मरण कराते हैं। वे यह समझाने का प्रयास करते हैं कि बंधुओं के बीच संघर्ष अधर्म है और इससे कुल तथा समाज दोनों का विनाश होता है।

दुर्योधन का हठ, अहंकार और अन्याय अधर्म का प्रतीक बनकर उभरता है। वह धर्मसम्मत प्रस्ताव को अस्वीकार कर युद्ध को आमंत्रण देता है। भास ने इस माध्यम से यह स्पष्ट किया है कि जब शासक धर्म का त्याग करता है, तब समाज अनिवार्य रूप से विनाश की ओर बढ़ता है।

अंतः दूतवाक्यम् रूपक में धर्म पुरुषार्थ केवल आदर्श के रूप में नहीं, बल्कि व्यावहारिक जीवन-मूल्य के रूप में प्रस्तुत हुआ है। भास यह संदेश देते हैं कि धर्म ही वह आधार है, जिसके बिना अर्थ और काम निरर्थक तथा विनाशकारी हो जाते हैं। इस प्रकार दूतवाक्यम् में धर्म पुरुषार्थ मानव जीवन और समाज के लिए सर्वोच्च मार्गदर्शक सिद्ध होता है।

३. दूतवाक्यम् में 'अर्थ' पुरुषार्थ का निरूपण

महाकवि भासकृत दूतवाक्यम् रूपक में अर्थ पुरुषार्थ का निरूपण अत्यंत यथार्थवादी एवं विचारोत्तेजक रूप में हुआ है। भारतीय दर्शन में 'अर्थ' का तात्पर्य केवल धन-संपत्ति से नहीं, बल्कि राज्य, सत्ता, शासन, सामाजिक संसाधन और जीवन-निर्वाह के साधनों से है। दूतवाक्यम् में अर्थ पुरुषार्थ का चित्रण मुख्यतः कौरव-पांडव संघर्ष, राजसत्ता की लालसा और न्यायसंगत अधिकार के संदर्भ में किया गया है।

इस रूपक में राज्य और सत्ता अर्थ पुरुषार्थ के प्रमुख प्रतीक के रूप में सामने आते हैं। पांडवों की ओर से श्रीकृष्ण दूत बनकर जो प्रस्ताव रखते हैं, वह अत्यंत संयमित और धर्मसम्मत है। पांडव सम्पूर्ण राज्य की

नहीं, बल्कि केवल अपने न्यायोचित हिस्से की मांग करते हैं। यह दर्शाता है कि अर्थ की प्राप्ति का उनका उद्देश्य लोभ नहीं, बल्कि सम्मानजनक जीवन-निर्वाह और सामाजिक प्रतिष्ठा है।

दूतवाक्यम् में अर्थ और धर्म का संबंध विशेष रूप से रेखांकित किया गया है। श्रीकृष्ण बार-बार यह संकेत देते हैं कि राज्य का अधिकार तभी न्यायोचित है, जब वह धर्मसम्मत हो। अधर्म से अर्जित या सुरक्षित की गई सत्ता स्थायी नहीं रहती। यह विचार भारतीय राजनीतिक दर्शन की मूल भावना को प्रकट करता है।

अतः दूतवाक्यम् रूपक में अर्थ पुरुषार्थ को न तो पूर्णतः नकारा गया है और न ही सर्वोच्च माना गया है। भास का स्पष्ट मत है कि अर्थ जीवन के लिए आवश्यक है, किंतु उसका महत्व तभी है, जब वह धर्म के अधीन और लोककल्याण की भावना से जुड़ा हो। इस प्रकार दूतवाक्यम् में अर्थ पुरुषार्थ मानव जीवन और समाज की स्थिरता के लिए एक आवश्यक, किंतु नियंत्रित मूल्य के रूप में प्रस्तुत हुआ है।

४. दूतवाक्यम् में 'काम' पुरुषार्थ का निरूपण

महाकवि भासकृत दूतवाक्यम् रूपक में काम पुरुषार्थ का निरूपण सूक्ष्म, मर्यादित तथा धर्म-नियंत्रित रूप में हुआ है। भारतीय दर्शन में 'काम' का अर्थ केवल शारीरिक या इंद्रिय-सुख तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें इच्छा, आकांक्षा, भावनात्मक प्रवृत्तियाँ, मान-प्रतिष्ठा, वीरता और सत्ता-संबंधी अभिलाषाएँ भी सम्मिलित हैं। दूतवाक्यम् में काम पुरुषार्थ इन्हीं व्यापक अर्थों में व्यक्त हुआ है।

दूतवाक्य में द्रौपदी-अपमान की स्मृति काम पुरुषार्थ की पृष्ठभूमि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यद्यपि इस घटना का प्रत्यक्ष चित्रण इस रूपक में नहीं है, फिर भी उसके प्रभाव स्वरूप पांडवों के मन में प्रतिशोध और सम्मान-पुनःस्थापन की भावना प्रबल रूप से विद्यमान है। यह भावनात्मक आक्रोश काम पुरुषार्थ का ही एक रूप है, जो धर्म के अभाव में विनाशकारी बन सकता है।

इसके विपरीत, श्रीकृष्ण का दृष्टिकोण काम पुरुषार्थ के संयमित और संतुलित रूप को प्रस्तुत करता है। वे काम को पूर्णतः अस्वीकार नहीं करते, बल्कि उसे धर्म और लोककल्याण के अधीन रखने का संदेश देते हैं। उनके अनुसार, मान-सम्मान और इच्छाओं की पूर्ति तभी उचित है, जब वे न्याय और धर्म के मार्ग से प्राप्त हों।

५. दूतवाक्यम् में 'मोक्ष' पुरुषार्थ का निरूपण

दूतवाक्यम् में श्रीकृष्ण का चरित्र मोक्ष पुरुषार्थ का प्रमुख आधार है। श्रीकृष्ण स्वयं निष्काम कर्मयोग के प्रतीक हैं। वे पांडवों के दूत के रूप में कार्य करते हुए भी किसी व्यक्तिगत लाभ, सत्ता-लालसा या अहंकार से प्रेरित नहीं हैं। उनका प्रत्येक कार्य लोककल्याण और धर्म-स्थापना के उद्देश्य से प्रेरित है। यह निष्काम कर्म की भावना मोक्ष-मार्ग का मूल तत्व मानी जाती है।

इस रूपक में आसक्ति-त्याग और वैराग्य के संकेत स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। युधिष्ठिर का चरित्र भौतिक सत्ता और प्रतिशोध की अपेक्षा धर्म, शांति और न्याय को प्राथमिकता देता है। उनका यह संयम और आत्म-नियंत्रण मोक्ष की ओर उन्मुख मानसिक अवस्था को दर्शाता है। युधिष्ठिर जानते हैं कि सांसारिक विजय स्थायी नहीं है, जबकि धर्म और आत्मिक शांति ही जीवन का परम लक्ष्य है।

इसके अतिरिक्त, श्रीकृष्ण द्वारा युद्ध को अंतिम विकल्प के रूप में स्वीकार करना भी मोक्ष-दृष्टि का संकेत है। वे जानते हैं कि जब अधर्म अत्यधिक बढ़ जाए, तब धर्म-स्थापना के लिए कर्म आवश्यक हो जाता है। यह कर्म-योग का ही स्वरूप है, जिसमें फल-आसक्ति का त्याग कर कर्तव्य-पालन किया जाता है।

अतः, दूतवाक्यम् में मोक्ष पुरुषार्थ को किसी संन्यास या पलायन के रूप में नहीं, बल्कि संसार में रहकर निष्काम कर्म, धर्मनिष्ठा और आत्मसंयम के माध्यम से प्राप्त होने वाले परम लक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार भास ने दूतवाक्यम् रूपक में मोक्ष पुरुषार्थ का निरूपण गहन दार्शनिक परिप्रेक्ष्य में किया है, जो भारतीय जीवन-दर्शन की मूल भावना को सुदृढ़ करता है।

६. पुरुषार्थ-चतुष्टय की समन्वित दृष्टि

भारतीय दर्शन में पुरुषार्थ-चतुष्टय-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-को परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि समन्वित और पूरक रूप में स्वीकार किया गया है। इन चारों पुरुषार्थों का उद्देश्य मानव जीवन को संतुलित, नैतिक और सार्थक बनाना है। दूतवाक्यम् रूपक में महाकवि भास ने इसी समन्वित दृष्टि को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है।

दूतवाक्यम् में धर्म को केंद्रीय और मार्गदर्शक पुरुषार्थ के रूप में स्थापित किया गया है। धर्म वह आधार है, जिसके बिना अर्थ और काम अनियंत्रित होकर अधर्म का रूप ले लेते हैं। श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर के चरित्रों के माध्यम से यह स्पष्ट किया गया है कि धर्म के अभाव में न तो सत्ता (अर्थ) स्थायी रह सकती है और न ही इच्छाओं (काम) की पूर्ति समाज के लिए हितकारी हो सकती है।

अर्थ पुरुषार्थ को जीवन-निर्वाह और सामाजिक व्यवस्था के लिए आवश्यक साधन के रूप में स्वीकार किया गया है। दूतवाक्यम् में पांडवों की न्यायोचित मांग यह दर्शाती है कि अर्थ का उद्देश्य लोभ नहीं, बल्कि सम्मानपूर्ण जीवन और सामाजिक संतुलन है। जब अर्थ धर्म के अधीन रहता है, तब वह समाज की स्थिरता और कल्याण का माध्यम बनता है।

काम पुरुषार्थ को मानव जीवन की स्वाभाविक प्रेरक शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया गया है। मान-प्रतिष्ठा, वीरता और भावनात्मक आकांक्षाएँ जीवन को गतिशील बनाती हैं, किंतु भास यह स्पष्ट करते हैं कि यदि काम पर धर्म का नियंत्रण न हो, तो वह अहंकार, हिंसा और संघर्ष को जन्म देता है। इसलिए काम का संयमित और मर्यादित स्वरूप ही स्वीकार्य है।

मोक्ष पुरुषार्थ को इन तीनों का परम लक्ष्य माना गया है। दूतवाक्यम् में मोक्ष का प्रत्यक्ष उपदेश न होकर निष्काम कर्म, वैराग्य और आत्मसंयम के संकेत मिलते हैं। श्रीकृष्ण का कर्मयोग और युधिष्ठिर का संयम यह दर्शाता है कि संसार में रहते हुए भी मोक्ष की दिशा में अग्रसर हुआ जा सकता है।

अतः दूतवाक्यम् रूपक में पुरुषार्थ-चतुष्टय की समन्वित दृष्टि यह संदेश देती है कि

- धर्म जीवन का मार्गदर्शक है,
- अर्थ जीवन का साधन है,
- काम जीवन की प्रेरणा है,
- मोक्ष जीवन का परम लक्ष्य है।

इन चारों के संतुलित और समन्वित पालन से ही मानव जीवन, समाज और राज्य में शांति, न्याय और कल्याण की स्थापना संभव है।

• निष्कर्ष

महाकवि भासकृत दूतवाक्यम् रूपक भारतीय संस्कृत नाट्य-परंपरा की एक अत्यंत महत्वपूर्ण और विचारोत्तेजक कृति है। यह रूपक महाभारत की कथा पर आधारित होते हुए भी केवल ऐतिहासिक या पौराणिक आख्यान तक सीमित नहीं रहता, बल्कि मानव जीवन, समाज और राज्य के लिए शाश्वत मूल्यों

का गहन प्रतिपादन करता है। प्रस्तुत अध्ययन के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि दूतवाक्यम् में पुरुषार्थ-चतुष्टय-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-का समन्वित एवं संतुलित निरूपण हुआ है।

अतः कहा जा सकता है कि दूतवाक्यम् रूपक में पुरुषार्थ-चतुष्टय का निरूपण भारतीय जीवन-दर्शन की गहन अभिव्यक्ति है। यह कृति मानव को यह शिक्षा देती है कि धर्म के मार्गदर्शन में अर्थ और काम का संयमित उपयोग तथा निष्काम कर्म के द्वारा मोक्ष की ओर अग्रसर होना ही जीवन की वास्तविक सार्थकता है।

सन्दर्भ ग्रंथ

- 1) उपाध्याय, बलदेव(1964) 'महाकवि भास : एक अध्ययन' वाराणसी : चौखम्बा विद्याभवन।
- 2) दीक्षित, जगदीशचन्द्र(1976) 'भास की भाषा तथा नाटकीय विशेषताएँ' नई दिल्ली : आर्य बुक डिपो।
- 3) भास (1982)'भासनाटकचक्र' वाराणसी : चौखम्बा विद्याभवन।
- 4) भास 1982)'दूतवाक्य' वाराणसी : चौखम्बा विद्याभवन।
- 5) रस्तौगी, अंजू(2004)'भास, कालिदास और भवभूति : एक अध्ययन (पात्र-कल्पना के सन्दर्भ में)' दिल्ली : शुभदा प्रकाशन।
- 6) गौड़, मनोहरलाल 'भास के नाटक' कानपुर : ग्रन्थम, रामबाग।
- 7) शुक्ल, बाबूलाल (सं. 2035) 'भरतमुनिप्रणीत नाट्यशास्त्रम्: 'प्रदीप' हिन्दी व्याख्या, टिप्पणी, परिशिष्ट एवं प्रस्तावना सहित' वाराणसी: चौखम्बा संस्कृत संस्थान।

ગુજરાતી સાહિત્યમાં નારીચેતના પ્રગટાવતી વાર્તાઓ

- ડૉ.દિનેશ એમ. ગોહેલ

સારાંશ

પ્રસ્તુત લેખમાં ગુજરાતી વાર્તામાં નારીચેતના પ્રસ્તુત કરવાનો અભિગમ છે. અહીં નારીચેતના પ્રગટાવતી વાર્તાઓ જેમકે ઉમાશંકર જોશી કૃત ચંપાનો વર, છેલ્લું છાણું, ગુજરીની ગોદડી, શ્રાવણી મેળો તેમજ કનૈયાલાલ મુનશી કૃત મારી કમલા અને કુન્દનિકા કાપડીયાની 'તો' વાર્તામાં નારીચેતના દર્શાવતી વાર્તાઓ છે. આ ઉપરાંત મોહન પરમારની કુલડી, રમેશ દવેની 'શબવત', અનિલ વ્યાસની 'વેરવી', કંદર્પ દેસાઈ રચિત વાર્તા 'અસંગ', અને શ્રદ્ધા ત્રિવેદીની 'અંજુ' નામે એક છોકરી' વગેરે વાર્તાઓમાં નારીચેતના પ્રગટે છે. તે વાર્તાઓનો આસ્વાદ માણવાનો ઉપક્રમ રહ્યો છે.

Key-words : નારીચેતના, પ્રગટાવતી, મનસ્વિની, કરિયાવર, પાંખ, શીરો, ફાંસો, શબવત, વેરવી, અસંગ, ભીંત, કુલડી

■ પ્રાસ્તાવિક

ગુજરાતી સાહિત્યમાં વાર્તાનું ખેડાણ બહુમુલ્ય રહ્યું છે. ગુજરાતી વાર્તામાં નારીચેતના દર્શાવતી અનેક વાર્તાઓનું ખેડાણ થયેલું છે. ગુજરાતી સાહિત્યમાં નવલિકા સાહિત્ય સ્વરૂપના મંડાણ ગાંધીયુગથી જ પ્રારંભ થયો છે. ગુજરાતી સાહિત્યમાં તમામ સ્વરૂપ ધરાવતી કૃતિઓમાં નારીચેતના આવેખિત થઈ છે. તેમજ ઘણાં સર્જકોએ તેમનાં કવનમાં અનેક કૃતિઓમાં નારીચેતના પ્રગટાવતી અનેક કૃતિઓ લખી છે. અહીં પ્રસ્તુત લેખમાં વાર્તામાં નારીચેતના પ્રસ્તુત કરવાનો અભિગમ રહ્યો છે.

■ નારીચેતના પ્રગટાવતી વાર્તાઓ

ઘણાં સર્જકોએ નારીચેતના પ્રગટાવતી કૃતિઓનું ઉત્તમ સર્જન કર્યું છે. તેમાં ઉમાશંકર જોશી પાસેથી મારી 'ચંપાનો વર', 'છેલ્લું છાણું', 'ગુજરીની ગોદડી' અને 'શ્રાવણી મેળો' વગેરે વાર્તાઓ ગુજરાતી સાહિત્યમાં ઉત્તમ વાર્તાઓ બની છે. અહીં વાર્તામાં નારી હોવું એજ સ્ત્રીના જીવનની સૌથી કરુણતા બંને છે.

કનૈયાલાલ મુનશી પાસેથી 'મારી કમલા' મળે છે. આ વાર્તામાં સ્ત્રીને કેન્દ્રમાં રાખીને સર્જન કર્યું છે. કુન્દનિકા કાપડીયાની 'તો' વાર્તામાં બળાત્કાર, માનુષ્ય જેવા ઘણાં પ્રશ્નો સાથે પુત્રી જન્મની વાત કેન્દ્રસ્થ કરેલ છે. અહીં આ વાર્તામાં પતિ સુધારીને મન તો છોકરી નથી તે સારું છે. તેમજ પરણવાની ચિંતા, દાયજની ચિંતા... આથી સુજાતાનું મન ઘવાતું દીકરાનાં બાપને મન એટલો જ અર્થ! સુજાતાની મનોવ્યથા આવેખી કથા બની રહે છે.

ધીરૂભાઈ પટેલની 'મનસ્વિની' વાર્તામાં પણ સ્ત્રી દ્વારા સ્ત્રીને સહાયક થવાનો અભિગમ વરતાય છે. ભારતીય સમાજમાં વગોવાયેલા સાસુ-વહુના સંબંધોએ પોતાનું વહેણ બદલ્યું હોવાનો સંકેત મળે છે. બિપિન પટેલની 'કરિયાવર' વાર્તામાં દમ વગરનાં ગાંડા જેવા પતિને નર્મદાએ આખી જિંદગી નિભાવ્યો. 'હુપડો એના બાપ જેવો' દીકરો વહુને તેના મા-બાપે હવે કરિયાવરમાં આપ્યો આમ, નારીની ચેતનાનું દર્શન થાય છે. તારિણી દેસાઈની 'મહાલક્ષ્મી' અને બિંદુ ભટ્ટની 'બાંધણી' વાર્તાઓમાં નારીનું આવું જ વલણ પરખાય છે.

મોહન પરમારની 'કુલડી' વાર્તામાં શિક્ષિત યુવતી રીન્કુ પુરુષની કામુકતાનો ભોગ બનેલી છે. જ્યારે એ અમાનુષ્ય અત્યાચાર આચરનારનો માન મરતબો અકબંધ રહે છે. રિન્કુની પીડાને સમજવાને બદલે તેમની અવહેલના કરવામાં આવે છે. ઉષા ઉપાધ્યાયની 'હું તો આ ચાલી', ઈલા આરબ મહેતાની 'પાંખ', વર્ષા અડાલજની 'શીરો', ચતુર

પટેલની 'ફાંસો'.... જેવી વાર્તાઓમાં પુરુષ પરક સત્તાના વિરોધ અનુષંગે નારીના પ્રત્યાઘાતનાં ભિન્ન ભિન્ન રૂપો વ્યક્ત થયાં છે. હર્ષદ ત્રિવેદીની 'આઢ' અને ફિરીટ દૂધાતની 'બાયું' વાર્તામાં નારી શોષણ સામે સામુહિક વિરોધ વિદ્રોહની લાગણી ભાવકના રુદ્ધને હચમચાવે છે.

રમેશ દવે રચિત 'શબવત' વાર્તામાં જાતીય સંબંધનું રૂપ છે. નોકરીમાં પ્રમોશન મેળવવા માટે પતિ, પત્નીનો સોદો કરે છે. પતિ-પરમેશ્વરનો આદેશ માથે ચઢાવી પરપુરુષ પાસે ઢસડાતી જાતી નાયિકા પતિને ધિક્કારે છે અને તેનું આ છેલ્લું કાર્ય પતાવી આત્મહત્યા કરવાનો નિર્ણય કરે છે. આમ સમગ્ર વાર્તામાં નારીનાં અત્યાચારની કથા બની રહે છે. અનિલ વ્યાસની 'વેરવી' વાર્તામાં પુત્રી પર થયેલ બળાત્કારની ઘટનામાં માતાની ભૂમિકા ઉલ્લેખનીય છે. પુત્રીના દુઃખનું પુનરાવર્તન અને દીકરીના જીવનનેય બરબાદ કરી મુકે એ વાત એક માતા-એક સ્ત્રી કરતાં વધુ સારી રીતે કોણ સમજી શકે ? સમગ્ર વાર્તામાં નારીની લાગણીને કોઈ સમજનાર હોય તો તે એક સ્ત્રી જ છે. કંદર્પ દેસાઈ રચિત 'અસંગ' વાર્તામાં નારીની એકલતાની પીડાની ગુંજ સંભળાય છે. વાર્તામાં નાયિકા અમીતા એક કંપનીના એક્ઝિક્યુટિવ પદે છે. તેના પદ પ્રતિષ્ઠા કે આવકને ભૂલી ઈર્ષા, હીનતા કે પૌરુષીભાવ વિના એક વ્યક્તિ તરીકે તેને સ્વીકારે એવા જીવનસાથીને ઝંખતી નાયિકાની કથા છે.

શ્રદ્ધા ત્રિવેદી પાસેથી 'અંજુ નામે એક છોકરી' અને ' હું ઉર્ફે ભીત' વાર્તામાં નારી ચેતનાનું દર્શન થાય છે. ' અંજુ નામે એક છોકરી' વાર્તામાં પરાપૂર્વથી લગ્ન માટે મુરતિયાની પસંદગીમાં કન્યાના અવાજનું કોઈ વજન નહોતું. પિતાનો નિર્ણય તેનાં માટે અંતિમ હુકમ ગણાતો. પરાણે લગ્ન કરાવા ઈચ્છતા મા-બાપના નિર્ણયનો વિરોધ કરી પોતે જેને પ્રેમ કરે છે તે હેમંત સાથે લગ્ન કરી લઈ ઘરે જાણ કરી દે છે. સ્વયં પસંદગીને અનુસરવા જેટલું સાહસ આધુનિક યુવતી કેળવી શકી છે. જેમાં નારી ચેતના ઉજાગર થાય છે.

■ સમાપન

પ્રસ્તુત ગુજરાતી વાર્તામાં નારીચેતના પ્રગટાવતી અનેક સર્જકોએ કૃતિઓ લખી છે. ટુંકી વાર્તાના આ અભ્યાસમાંથી એક વાત બહુ સ્પષ્ટ થાય છે કે નારીવાદી આંદોલને સ્ત્રીની સ્થિતિમાં આમુલ પરિવર્તન આવ્યું છે. પોતાની સાથે થતું ભેદભાવયુક્ત વલણ અન્યાયકારી અને વિકાસ અવરોધક હોવાથી તેની પ્રતીતિ વધુ દૃઢ બની છે. આથી ઉતરતા દરજ્જાની શોષિત દશાને પડકારી પોતાની ક્ષમતા તેણે સિદ્ધ કરી બતાવી છે. સમાજમાં પલટાતી નારીની આ છબીએ પરંપરાગત માપદંડોને પ્રચંડ આઘાત આપ્યો છે. સર્જકે નારી વિશે ટુંકી વાર્તામાં નારીચેતનાને ઉજાગર કરવાનો અથાક પ્રયત્ન કર્યો છે. અહીં મારા પ્રસ્તુત લેખમાં ગુજરાતી ટુંકી વાર્તામાં નારીચેતનાને કેન્દ્રમાં રાખીને કેટલાક સર્જકોની નારીચેતના ઉલ્લેખની કૃતિઓને ઝંકૃત કરાવાનો નમ્ર પ્રયાસ કર્યો છે. આજના યુગમાં ગુજરાતી સાહિત્યમાં નારીચેતના એક અનન્ય પડકાર બની રહ્યો છે. જે અહીં આવેખીત ટુંકી વાર્તામાં જોઈ શકાય છે.

સંદર્ભગ્રંથ સૂચિ

૧. સં. ઉષા ઉપાધ્યાય, 'ગુજરાતી લેખિકાઓની પ્રતિનિધિ વાર્તાઓ', પાર્શ્વ પ્રકાશન, પ્ર. આ. -૨૦૦૬
૨. અરૂણા બક્ષી, 'નિમિત્ત', પાર્શ્વ પ્રકાશન, પ્રથમ આવૃત્તિ-૨૦૦૩
૩. ઈલા નાયક, 'વિશેષ', પાર્શ્વ પ્રકાશન, દ્વિવિધ આવૃત્તિ-૨૦૦૨
૪. શરીફા વીજળીવાળા, 'વાર્તા સંદર્ભ' અનંડા પ્રકાશન વર્ષ -૨૦૦૭
૫. સં. ઉષા ઉપાધ્યાય, 'સર્જન પ્રક્રિયા અને નારી ચેતના', પાર્શ્વ પ્રકાશન, પ્રથમ આવૃત્તિ-૨૦૦૬

યુગદૃષ્ટિ ડૉ. બી. આર. આંબેડકરના ભાષણોમાંથી નિષ્પન્ન થતું શિક્ષણ દર્શન

ડૉ. કન્હૈયાલાલ પી. ડામોર

આસિસ્ટન્ટ પ્રોફેસર,

શિક્ષણશાસ્ત્ર ભવન, સૌરાષ્ટ્ર યુનિવર્સિટી- રાજકોટ,

સંપર્ક નંબર: ૮૧૪૧૮૪૭૧૦૦

સારાંશ

ભારત એ આધ્યાત્મિકતા, નૈતિકતા અને સર્વાંગી વિકાસના સિદ્ધાંતો આધારિત રાષ્ટ્ર છે. પરંતુ મુગલો અને અંગ્રેજોની હજારો વર્ષોની ગુલામી અને શિક્ષણ વ્યવસ્થા થકી ભારતીયોમાં માનવીય મૂલ્યો અને ગુણોનો હાસ થયો. પરિણામે વર્ગભેદ, શોષણ, અત્યાચાર અને ગરીબી વગેરે વધી. આવા સમયમાં ડૉ. બાબા સાહેબ આંબેડકરે અંગ્રેજોની ગુલામીમાંથી મુક્તિ અને શિક્ષણમાં સુધાર કરવાના પ્રબળ હિમાયતી રહ્યા હતા. તેઓએ તેમના ભાષણો દ્વારા શોષિત, પીડિત, દબાવેલ, વંચિત અને ગરીબ વર્ગના લોકોના શિક્ષણ માટે ભગીરથ પ્રયાસો કર્યા હતા.

પ્રસ્તુત સંશોધનપત્રનો મુખ્ય ઉદ્દેશ્ય ડૉ. બાબાસાહેબ આંબેડકરના ભાષણોમાંથી શિક્ષણ દર્શન નિષ્પન્ન કરવાનો હતો. વ્યાપવિશ્વ તરીકે મૂળજીભાઈ વી. ખુમાણ રચિત ડૉ. બાબાસાહેબ આંબેડકરના ભાષણો ૧ થી ૪માંથી સહેતુક નમૂના પસંદગી તરીકે આધાર વાક્યો પસંદ કરી ઉપકરણ તરીકે કાર્યપત્રકોની રચના કરી માહિતી પ્રાપ્ત કરી હતી. પ્રાપ્ત શાબ્દિક માહિતીનું ગુણાત્મક પૃથક્કરણ કરી તારણો તારવવામાં આવ્યા હતા. મુખ્ય તારણોમાં શિક્ષણનો હેતુ વિદ્યાર્થીઓનો સામાજિક અને વ્યવસાયિક ઉત્થાન (સર્વાંગી વિકાસ) કરવો, અભ્યાસક વૈજ્ઞાનિક, વ્યવહારિક અને રોજગારલક્ષી હોવાનો, શિક્ષણ પદ્ધતિ અધ્યેતાકેન્દ્રી હોવાની, શિક્ષણનું માધ્યમ માતૃભાષા હોવાની, શિક્ષકનું માર્ગદર્શક અને સામાજિક કાર્યોમાં સક્રિય હોવાનું, શાળા- ભેદભાવ રહિત તટસ્થ વાતાવરણ યુક્ત અને શિસ્ત આંતરિક હોવી જોઈએ વગેરે હતા.

ચાવીરૂપ શબ્દો: ડૉ. બાબાસાહેબ આંબેડકર, ભાષણો અને શિક્ષણ દર્શન

■ પ્રસ્તાવના

ડૉ. બાબાસાહેબ આંબેડકર ભારતમાં લોકોના શિક્ષણ વિષે ખુબ જ ચિંતિત હતા. તેઓ તેમના ભાષણોમાં હંમેશા ભારપૂર્વક જણાવતા કે શિક્ષણ વિના સમાજનો ઉદ્ધાર અશક્ય છે. જો સમાજના વંચિત લોકોની મદદે શિક્ષણ ઉપયોગી ન થાય, તો તેનો કોઈ અર્થ નથી. શિક્ષણ એ વાઘાણનું દૂધ છે જે પીશે તે દહાડશે. શિક્ષણ વંચિતોના અધિકારો મેળવવા માટેનું સૌથી મોટું હથિયાર છે. (વિભાગ, ૨૦૨૫).

ભારતની વચગાળાની સરકારમાં ડૉ. આંબેડકર ભારતના પ્રથમ કાયદા પ્રધાન બન્યા. ૨૮ ઓગસ્ટે ડૉ. આંબેડકરની ભારતના બંધારણીય ડ્રાફ્ટીંગ કમિટીના પ્રમુખ તરીકે વરણી થઈ. અનેક મુશ્કેલીઓ અને નાદુરસ્ત તબિયત વચ્ચે પણ ડૉ. આંબેડકર અને બંધારણ સમિતિએ ફેબ્રુઆરી ૧૯૪૮ માં ભારતનાં બંધારણનો મુસદ્દો તૈયાર કર્યો. જે ૨૬ જાન્યુઆરી, ૧૯૫૦થી ભારતના બંધારણ તરીકે અમલમાં આવ્યું. આ બંધારણમાં બાબાસાહેબે શિક્ષણને માનવનો મૂળભૂત અધિકાર બનાવ્યો અને બંધારણમાં સૌ માટે સમાન શિક્ષણની જોગવાઈ કરી. (વીકીપીડીયા, n.d.).

ડૉ. બાબાસાહેબ આંબેડકર શિક્ષણને સામાજિક ક્રાંતિ અને સશક્તિકરણનું મુખ્ય માધ્યમ માનતા હતા. તેમના ભાષણોમાં "શિક્ષિત બનો, સંગઠિત બનો અને સંઘર્ષ કરો" એ સૌથી પ્રેરણાદાયી મંત્ર છે. (ઠાકર, ૨૦૧૮).

બાબાસાહેબે સૂચવ્યું હતું કે કેવળ સાક્ષરતા પૂરતી નથી. શિક્ષણનો સાચો હેતુ માનવ મનનું સંવર્ધન, સ્વતંત્રતા, સમાનતા અને બંધુત્વની ભાવના કેળવવાનો છે. (અભિપ્રાય, ૨૦૨૨).

શિક્ષણ એ માત્ર પુસ્તકીય જ્ઞાન નથી, પરંતુ જીવનનો મહત્વનો પાયો, વ્યક્તિત્વ વિકાસ અને સામાજિક ઉત્થાનની ચાવી છે. આજના સ્પર્ધાત્મક યુગમાં તે કૌશલ્ય, સમાનતા અને સતત શીખવાની પ્રક્રિયા પર આધારિત છે. (BAOU). અને શિક્ષણ દર્શન એ શિક્ષણ પ્રત્યેની દૃષ્ટિ, તેના સિદ્ધાંતો અને વિચારધારાનો અભ્યાસ છે. તે શિક્ષણના ધ્યેયો, પદ્ધતિઓ અને સામાજિક મૂલ્યોને સ્પષ્ટ કરે છે, જેથી વિદ્યાર્થીનો સર્વાંગી વિકાસ (માનસિક, નૈતિક અને શારીરિક) થઈ શકે. (ભરવાડ, ૨૦૨૫).

વર્તમાનમાં વૈશ્વિકરણના ડીજિટલ યુગમાં દરેક રાષ્ટ્રના વિકાસના કેન્દ્રમાં શિક્ષણ અને શૈક્ષણિક વિકાસના કેન્દ્રમાં શિક્ષણશાસ્ત્રીઓએ વ્યક્ત કરેલ શિક્ષણ દર્શન છે ત્યારે ભારતમાં વર્ષો પહેલા શિક્ષણ માટે ચિંતા કરનાર, લોકોને શિક્ષણ પ્રત્યે જાગૃત કરનાર, વંચિત લોકોના શિક્ષણ માટે કાર્ય કરનાર અને ભારતના બંધારણમાં શિક્ષણને મૂળભૂત હક બનાવનાર ડૉ. બાબા સાહેબ આંબેડકર છે. તેથી પ્રસ્તુત અભ્યાસમાં સંશોધકે બાબા સાહેબ આંબેડકરના શિક્ષણ વિષયક કાર્યો, વિચારોથી પ્રેરણા લઈ તેમના પ્રકાશિત ભાષણોમાંથી શિક્ષણના સંદર્ભમાં શિક્ષણ દર્શન નિષ્પન્ન કરવાનું કાર્ય કર્યું છે.

■ અભ્યાસનું સીમાંકન

૧. પ્રસ્તુત સંશોધનમાં મૂળજીભાઈ વી. ખુમાણ રચિત ડૉ. બાબાસાહેબ આંબેડકર- ૧, ૨, ૩ અને ૪ પુસ્તક મર્યાદિત રાખવામાં આવેલ છે.
૨. પ્રસ્તુત સંશોધનમાં શિક્ષણ દર્શનને શિક્ષણના હેતુ, અભ્યાસક્રમ, શિક્ષણ પદ્ધતિ, શિક્ષણનું માધ્યમ, શિક્ષક, વિદ્યાર્થી, શિસ્ત અને શાળા પુરતું મર્યાદિત રાખેલ છે.

■ અભ્યાસના હેતુ

૧. ડૉ. બાબાસાહેબ આંબેડકરના ભાષણોમાંથી નિષ્પન્ન થતા શિક્ષણના હેતુઓ જાણવા.
૨. ડૉ. બાબાસાહેબ આંબેડકરના ભાષણોમાંથી નિષ્પન્ન થતો અભ્યાસક્રમ જાણવો.
૩. ડૉ. બાબાસાહેબ આંબેડકરના ભાષણોમાંથી નિષ્પન્ન થતી શિક્ષણ પદ્ધતિઓ જાણવું.
૪. ડૉ. બાબાસાહેબ આંબેડકરના ભાષણોમાંથી નિષ્પન્ન થતા શિક્ષણનું માધ્યમ જાણવું.
૫. ડૉ. બાબાસાહેબ આંબેડકરના ભાષણોમાંથી નિષ્પન્ન થતા શિક્ષક વિષે જાણવું.
૬. ડૉ. બાબાસાહેબ આંબેડકરના ભાષણોમાંથી નિષ્પન્ન થતા વિદ્યાર્થી વિષે જાણવું.
૭. ડૉ. બાબાસાહેબ આંબેડકરના ભાષણોમાંથી નિષ્પન્ન થતી શિસ્ત જાણવી.
૮. ડૉ. બાબાસાહેબ આંબેડકરના ભાષણોમાંથી નિષ્પન્ન થતી શાળા વિષે જાણવું.

■ વ્યાપવિશ્વ અને નમૂનો

પ્રસ્તુત સંશોધનમાં વ્યાપવિશ્વ તરીકે મૂળજીભાઈ વી. ખુમાણ રચિત ડૉ. બાબાસાહેબ આંબેડકરના ભાષણો- ૧ થી ૪ પુસ્તકોનો સમાવેશ કર્યો હતો. જે પુસ્તકોના ભાગ ૧ માં ૨૨, ભાગ ૨ માં ૨૮, ભાગ ૩ માં ૨૭ અને ભાગ ૪ માં ૩૦ પ્રકરણોનો સમાવેશ કરવામાં આવેલ છે.

પ્રસ્તુત અભ્યાસમાં નમૂના તરીકે વ્યાપવિશ્વમાંથી સહેતુક નમૂના પસંદગી પદ્ધતિ દ્વારા આધાર વાક્યોની પસંદગી કરવામાં આવી હતી. આ આધાર વાક્યોની પસંદગી સંશોધક દ્વારા હેતુઓના આધારે પુસ્તકોના ગહન વાંચન પછી કરવામાં આવી હતી.

■ ઉપકરણ

પ્રસ્તુત અભ્યાસ માહિતીના એકત્રીકરણ માટે ઉપકરણ તરીકે કાર્યપત્રકોની રચના કરવામાં આવી હતી. આ કાર્યપત્રકોમાં મુદ્દાઓ તરીકે, કાર્યપત્રકનો ક્રમ, પ્રકરણનું નામ, આધાર વિધાન, અર્થઘટન, શિક્ષણ દર્શન અને તજજ્ઞોના સૂચનો સમાવેશ કરવામાં આવ્યો હતો.

■ માહિતીનું સ્વરૂપ અને પૃથક્કરણ પ્રયુક્તિ

પ્રસ્તુત અભ્યાસમાં મૂળજીભાઈ વી. ખુમાણ રચિત ડૉ. બાબાસાહેબ આંબેડકરના ભાષણો ભાગ ૧ થી ૪ માંથી કાર્યપત્રકો દ્વારા માહિતી એકત્ર કરવામાં આવી હતી. પ્રાપ્ત માહિતી શાબ્દિક સ્વરૂપની હતી. પ્રાપ્ત શાબ્દિક સ્વરૂપની માહિતીનું પૃથક્કરણ ગુણાત્મક પૃથક્કરણની પદ્ધતિઓ પૈકી વિષયવસ્તુ વિશ્લેષણ પ્રયુક્તિ વડે કરવામાં આવ્યું હતું.

■ અભ્યાસના તારણો

પ્રસ્તુત સંશોધનના તારણોને હેતુ અનુસાર નીચે ગુણાત્મક દર્શાવેલ છે:

શિક્ષણના હેતુ: (૧) વિદ્યાર્થી દેશ અને સમાજના ઉદ્ધાર માટે ફરજ બજાવવા જાગૃત બને. (૨) વિદ્યાર્થીનો સર્વાંગી વિકાસ કરવો. (૩) શિક્ષણને હેતુલક્ષી અને પડકારજનક બનાવવું. (૪) શિક્ષણ દ્વારા વિદ્યાર્થીને સંવેદનશીલ બનાવવો. (૫) શિક્ષણને સમાજ માટે વ્યવસાયલક્ષી અને રોજગારલક્ષી બનાવવું. (૬) શિક્ષણ દ્વારા સામાજિક ભેદભાવો દૂર કરવા. (૭) શિક્ષણ દ્વારા વ્યક્તિઓને આત્મવિશ્વાસી બનાવવા અને તેમની સુશુષ્પ શક્તિઓને ખીલવવી. (૮) શિક્ષણ દ્વારા વંચિત લોકોના અવરોધોને દૂર કરવા. (૯) શિક્ષણ દ્વારા માનવના સપનાઓને જાગૃત કરવા.

અભ્યાસક્રમ: (૧) અભ્યાસક્રમ વિદ્યાર્થીઓને કર્તવ્ય ભાવના પ્રત્યે જાગૃત કરનાર હોવો જોઈએ. (૨) વિદ્યાર્થીઓને નવું નવું શીખવા પ્રેરવો જોઈએ. (૩) અભ્યાસક્રમ રોજગારલક્ષી, ટેકનીકલ અને વ્યવસાયિક હોવો જોઈએ. (૪) અભ્યાસક્રમ સરળતાપૂર્વક શીખી શકાય એવો હોવો જોઈએ. (૫) અભ્યાસક્રમ સંકુચિતતાને તોડનાર અને વ્યવહારિક હોવો જોઈએ. (૬) અભ્યાસક્રમ વૈજ્ઞાનિક અભિગમ વિકસાવનાર હોવો જોઈએ. (૭) અભ્યાસક્રમ તત્વજ્ઞાન અને વિજ્ઞાનને જોડનાર તથા પ્રાચીન સાહિત્યના મૂલ્યોનો સમાવેશક હોવો જોઈએ. (૮) અભ્યાસક્રમ વિદ્યાર્થીઓને સમર્થ, ક્ષમતાવાન અને સંકલ્પવાન બનાવનાર હોવો જોઈએ. (૯) અભ્યાસક્રમ સમાનતાના ગુણોથી ભરપૂર અને વિદ્યાર્થીઓનો સર્વાંગી વિકાસ કરનાર હોવો જોઈએ.

શિક્ષણ પદ્ધતિ: (૧) વિદ્યાર્થીઓને શિક્ષણ મેળવવા જાગૃત રાખનાર હોવી જોઈએ. (૨) વિદ્યાર્થીઓને અભ્યાસક્રમમાં સાથે જોડનાર અને મહેનતી બનાવનાર હોવી જોઈએ. (૩) વિદ્યાર્થીઓના વ્યક્તિગત તફાવતોને ઓળખનાર અને પોષનાર હોવી જોઈએ. (૪) અધ્યતાકેન્દ્રી અને આંતરક્રિયાત્મક હોવો જોઈએ. (૫) વિદ્યાર્થીઓને સમાનતાના પાઠ ભણાવવા વાળી હોવી જોઈએ.

શિક્ષણનું માધ્યમ: (૧) શિક્ષણનું માધ્યમ માતૃભાષા હોવી જોઈએ. (૨) વિદ્યાર્થીની વ્યક્તિ પ્રમાણે સમજી શકે એવી ભાષા હોવી જોઈએ. (૩) વિદ્યાર્થીને વૈશ્વિક સ્પર્ધામાં ટકાવી રાખવા અને ઉચ્ચ જ્ઞાન મેળવવા અંગ્રેજી ભાષા શીખવવી જોઈએ. (૪) પ્રાદેશિક અને માતૃભાષામાં પુસ્તકોનું લેખન થવું જોઈએ.

શિક્ષક: (૧) શિક્ષક વિદ્યાર્થીઓમાં જ્ઞાનાત્મક વિકાસ કરનાર અને સાચી દિશા આપનાર હોવો જોઈએ. (૨) શિક્ષક નોકરીની સાથે સાથે સામાજિક કાર્યોમાં ભાગેદારી કરનાર હોવો જોઈએ.

વિદ્યાર્થી: (૧) વિદ્યાર્થી મહેનતુ, જાગૃત, સામાજિક સંવેદનશીલ અને ધ્યેયલક્ષી હોવો જોઈએ. (૨) વિદ્યાર્થી વિષયનું ઊંડું જ્ઞાન અને પ્રતિષ્ઠા ધરાવનાર હોવો જોઈએ. (૩) વિદ્યાર્થી સમાજ પ્રત્યે સંવેદનશીલ હોવો જોઈએ. (૪)

વિદ્યાર્થી સમર્થ, ક્ષમતાવાન, સંકલ્પવાન, ધ્યયલક્ષી અને સિદ્ધિ મેળવનાર હોવો જોઈએ. (૫) વિદ્યાર્થી જ્ઞાન, સન્માન અને સામાજિક મોભો મેળવનાર હોવો જોઈએ.

શિસ્ત: (૧) વિદ્યાર્થીઓ માટે બળજબરીપૂર્વકની શિસ્ત ન હોવી જોઈએ. (૨) શિસ્ત બહારથી લદાયેલ નહીં પરંતુ આંતરિક હોવી જોઈએ.

શાળા: (૧) શાળાઓ કોઈપણ પ્રકારના વર્ગભેદ રહિત અને તટસ્થ શિક્ષણ વાતાવરણ વાળી હોવી જોઈએ. (૨) શાળાઓ કોઈપણ પ્રકારના વિચારધારાઓ રહિત અને મુક્ત મનના વિદ્યાર્થીઓ તૈયાર કરનાર હોવી જોઈએ. (૩) વિદ્યાર્થીઓને સમાનતાનાં પાઠ ભણાવનાર અને વિશિષ્ટ પદ્ધતિઓ અમલમાં મુકનાર હોવી જોઈએ. (૪) શાળાઓ વિદ્યાર્થીઓને રોજગાર/નોકરી મેળવવામાં મદદરૂપ બનતી બનતી હોવી જોઈએ.

■ ઉપસંહાર

ડૉ. બાબાસાહેબ આંબેડકરનું નામ સામાજિક ન્યાયના સર્જક તરીકે ભારતીય ઇતિહાસમાં સુવર્ણ અક્ષરે લખાયેલ છે. તેમણે શિક્ષણ માટે પણ અનેક કાર્યો કર્યા હતા. આ સંદર્ભમાં પ્રસ્તુત અભ્યાસના બાબાસાહેબે આપેલ ભાષણોમાંથી મૂળજીભાઈ ખુમાણ દ્વારા લખાયેલ પુસ્તકો ડૉ. બાબાસાહેબ આંબેડકરના ભાષણો- ૧ થી ૪માંથી શિક્ષણ દર્શન નિષ્પન્ન કરી તારણો આપેલ છે જેના પરથી કહી શકાય કે, ભારતરત્ન ડૉ. બાબાસાહેબ આંબેડકરે દેશના વંચિત, પીડિત, ગરીબ અને નબળા વર્ગના લોકોના વિકાસ માટે આપેલ ભાષણોમાંથી શિક્ષણ સદર્ભે નિષ્પન્ન થતું શિક્ષણ દર્શન એ પ્રવર્તમાન સમયમાં ભારતમાં શિક્ષણના વિકાસ માટે અત્યંત પ્રાસંગિક છે. બાબાસાહેબના શિક્ષણ વિષયક કાર્યો અને વિચારોથી તેમનું નામ ભારતીય ઇતિહાસમાં શિક્ષણવિદ્ તરીકે પણ સુવર્ણ અક્ષરે લખાશે તો પ્રસ્તુત અભ્યાસ લેખે ગણાશે.

સંદર્ભસૂચી

- અભિપ્રાય. (૦૬ ડિસેમ્બર ૨૦૨૨). અજરામર વિરાટ વ્યક્તિત્વ ડૉ. બાબાસાહેબ આંબેડકર. સંદેશ સમાચારપત્ર. <https://sandesh.com/opinion/the-great-personality-of-dr-babasaheb-ambekar>
- ઉચાટ, ડી. એ. (૨૦૧૨). શિક્ષણ અને સામાજિક વિજ્ઞાનોમાં સંશોધનનું પદ્ધતિશાસ્ત્ર. રાજકોટ: પારસ પ્રકાશન.
- ખુમાણ, એમ. વી. (૨૦૧૩). ડૉ. બાબાસાહેબ આંબેડકરના ભાષણો- ૧. અમદાવાદ: નવભારત સાહિત્ય મંદિર.
- ખુમાણ, એમ. વી. (૨૦૧૪). ડૉ. બાબાસાહેબ આંબેડકરના ભાષણો- ૨. અમદાવાદ: નવભારત સાહિત્ય મંદિર.
- ખુમાણ, એમ. વી. (૨૦૧૫). ડૉ. બાબાસાહેબ આંબેડકરના ભાષણો- ૩. અમદાવાદ: નવભારત સાહિત્ય મંદિર.
- ખુમાણ, એમ. વી. (૨૦૧૬). ડૉ. બાબાસાહેબ આંબેડકરના ભાષણો- ૪. અમદાવાદ: નવભારત સાહિત્ય મંદિર.
- ઠાકર. કે. આર. (૨૦૧૮). ડૉ. બાબા સાહેબ આંબેડકર: શિક્ષણ સુસંગત સામાજિક વિચારધારા. ઇન્ટરનેશનલ જર્નલ ઓફ રીસર્ચ ઇન ઓલ સબ્જેક્ટ્સ ઇન મલ્ટી લેન્ગવેજસ, ૬(૧૦), ૩૨-૩૩. https://www.raijmr.com/ijrsm/wp-content/uploads/2019/08/IJRSM_2018_vol06_issue_10_Eng_08.pdf
- બી. આર. આંબેડકર. (૨૦૨૬, જુન ૧૩). વિકીપીડીયામાંથી. https://en.wikipedia.org/wiki/B._R._Ambedkar
- ભરવાડ, એ. અને દવે, ડી. (૨૦૨૫, સેપ્ટેમ્બર). શિક્ષાપત્રીમાંથી પ્રગટ થતું શિક્ષણ દર્શન [સારાંશ]. Towards Excellence. <https://hrdc.gujaratuniversity.ac.in/Publication/article?id=15733>
- સામાજિક ન્યાય અને અધિકારીતા વિભાગ. (૨૦૨૫). ભારત રત્ન ડૉ. બાબા સાહેબ ભીમરાવ આંબેડકર જીવનચાત્રા. અમદાવાદ: માહિતી નિયામક, ગુજરાત રાજ્ય, ગાંધીનગર.
- BAOU. (no date). સંમિલિત શિક્ષણ SECD- 1. ડૉ. બાબા સાહેબ આંબેડકર ઓપન યુનિવર્સિટી: <https://baou.edu.in/assets/pdf/સમીલિત%20શિક્ષણ%20SECD-01%20merged.pdf>

मैत्रेयी पुष्पा कृत 'झूलानट' उपन्यास में स्त्री विमर्श

डॉ.विनोदकुमार वणकर

हिन्दी विभाग

आदिवासी कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय,

संतरामपुर

सारांश

'झूला नट' हिंदी की प्रसिद्ध कथाकार मैत्रेयी पुष्पा द्वारा लिखा गया एक चर्चित उपन्यास है। यह उपन्यास बुंदेलखंड के ग्रामीण समाज और वहाँ के यथार्थ (वास्तविकता) को दर्शाता है। इसकी मुख्य पात्र शीलो है, जो एक बेहद साहसी और स्वाभिमानी महिला है। यह कहानी शीलो के अपनी आज़ादी और आत्मसम्मान के लिए किए गए कड़े संघर्ष की है। वह ससुराल के सामंती अत्याचारों और पुरुष-प्रधान समाज की बंदिशों को मानने से इनकार कर विद्रोह कर देती है। जैसे नट रस्सी पर जान जोखिम में डालकर संतुलन बनाता है, वैसे ही शीलो समाज के कड़े नियमों और अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता के बीच संतुलन साधते हुए जीती है। यह उपन्यास मुख्य रूप से स्त्री अस्मिता, शोषण के खिलाफ आवाज़ और सामाजिक रूढ़ियों पर चोट करता है।

बीज शब्द :- संघर्ष, कश्मकश, हौंसला, आत्मनिर्भर, निडर साहसिक, अस्मिता आदि।

• प्रस्तावना

साहित्य और समाज एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। समाज में व्याप्त विचारों का प्रभाव साहित्य में किसी न किसी रूप में देखा जा सकता है। समय के बदलाव के साथ-साथ समाज में परिवर्तन होता रहता है क्योंकि परिवर्तनशील प्रकृति का नियम है। इसी नियम के अनुसार अब महिलाओं की स्थिति में भी परिवर्तन देखने को मिलता है। वर्तमान में लिखी गई विद्या जैसे नाटक, कहानी, उपन्यास, तथा कविता आदि में नारी की समस्या, संघर्ष तथा मुक्ति का स्वर प्रदान करती है। हिन्दी उपन्यास साहित्य में नारी को केन्द्र में रखकर लिखे गए कई उपन्यास हैं। पुरुष उपन्यासकारों के साथ-साथ महिला उपन्यासकारों का भी उसमें महत्वपूर्ण योगदान है। 1975 के पश्चात नारीवादी विचारों से प्रेरित महिला रचनाकारों का भी उसमें महत्वपूर्ण योगदान है।

हिन्दी साहित्य जगत में मैत्रेयी पुष्पा का नाम बहुआयामी, बहुमुखी, विलक्षण प्रतिभा संपन्न लेखिका के रूप में लिया जाता है। उन्हें 'बोल्ड लेखिका' भी कहा जाता है। उन्होंने हिन्दी साहित्य जगत में कई विधाओं पर अपनी कलम चलाई है। हिन्दी साहित्य के उपन्यासकारों में मैत्रेयी पुष्पा का स्थान अग्रक्रम में है। उनके समकालीन लेखिकाओं में मृदुला गर्ग, मंजुल भगत, कृष्णा सोबती, ममता कालिया, प्रभा खेतान, चित्रा मुद्गल, राजी सेठ, मृणाल पाण्डे, नासिरा शर्मा आदि कई लेखिकाओं का उपन्यास लेखन चल रहा है। इन लेखिकाओं के उपन्यासों के मुकाबले में मैत्रेयी पुष्पा के भी उपन्यास खड़े हैं जो कि औचलिक और ग्रामीण होने पर भी पाठक उसे आराम से पढ़ लेते हैं।

मैत्रेयी पुष्पा की जीवन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जिस पड़ाव पर लोग अपने जीवन का उद्देश्य खत्म हुआ मानकर चलते हैं उसे 40 उम्र में साहित्य लेखन के क्षेत्र में उन्होंने कदम रखा है और हिन्दी साहित्य में अपनी पहचान बनायी है। मैत्रेयी पुष्पा की रचनाएँ अपनी अनुभूति पर आधारित हैं। इसीलिए उनकी रचनाओं में जीवन की वास्तविकता का चित्रण हुआ है। घटनाओं की सत्यता और पात्रों की सजीवता यह उनके साहित्य की महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

• शोध- विस्तार

वैश्वीकरण के युग में नारी विमर्श, दलित विमर्श, किन्नर विमर्श मुख्य मुद्दे रहे हैं। प्रत्येक क्षेत्र में उनके संदर्भ में बहस होती रही है। नारी, दलित एवं किन्नर सामाजिक न्याय के लिए जुड़ते रहे। हालांकि स्त्री लेखन सामाजिक न्याय की एक आवश्यकता का परिणाम है। मैत्रेयी पुष्पा ने इस सवाल को लेकर अपने उपन्यासों में अभिव्यक्ति प्रदान की है उन्होंने नई और सबसे अलग पहचान साहित्य में बनाई है परिणाम स्वरूप पाठक उनके उपन्यासों के प्रति अधिक आकर्षित हुए हैं। ग्रामीण जीवन, कृषि संस्कृति में बनते बिगड़ते समीकरण, दौलत के कारण पुलिस में की जाने वाली रिपोर्ट, अंकुठित यौन समस्या और नारी की अस्मिता, तेजस्विता, स्वयं लिखिका का बिंदास जीवन खुली किताब है। जीवन की विभिन्न समस्याओं से मुठभेड़ करते मैत्रेयी पुष्पा के सभी उपन्यास पाठकों की विचारधारा को परिवर्तित करते हैं। मैत्रेयी पुष्पा का जीवन अनुभव गहरा है। अतः वह प्रसंग अनुसार सहज रूप से अभिव्यक्ति करती है। पंचायती चुनाव में महिला आरक्षण, स्त्री शिक्षा, स्त्रियों का जमीन में हिस्सा, बेरोजगारी, ग्रामीण तंत्र में पुरुषों की प्रीत छाया इत्यादि वर्तमान प्रश्नों को सहज एवं सरल रूप में प्रस्तुत करती है। नैतिकता के तौर पर देखा जाए तो मैत्रेयी पुष्पा एक रचनाकार के रूप में स्त्री अस्मिता की जबरदस्त लड़ाई लड़ रही है।

'झूलानट' 1999 में प्रकाशित हुआ उपन्यास है। झूलानट उपन्यास का वैचारिक पक्ष 'स्त्री विमर्श' है। 'झूलानट' उपन्यास में नायिका के रूप में शीलो का चरित्र न भूलने लायक है। बेहद आत्मीय, पारिवारिक सहजता के साथ मैत्रेयी पुष्पा ने इस चरित्र को उभारा है। उसकी 'स्त्री-शक्ति' को फोकस किया है। वैसे वह गाँव की साधारण औरत है। न उसे मनोविज्ञान का पता है न राजनीति का परन्तु समाज को समझने की अदभुत क्षमता उसमें है। पति उसकी छाया से भागता है। फिर भी ऐसे तिरस्कार और उपेक्षा से घबराकर वह किसी कुँए- बावड़ी में जान नहीं देती। जीने का संकल्प और श्रम की शक्ति से वह जिन्दा रहती है और अपना भाग्य खुद लिखती है। प्रसिद्ध लेखिका सुधा बी. का कहना है कि "वह इस भोग की दुनिया से स्वतंत्र होना चाहती है। अपने स्त्रीत्व की पहचान के लिए वह पुरुष से ही नहीं समाज से वहाँ तक कि स्वयं स्त्रीवर्ग से टकराने को तैयार है।" 1 उपन्यास के प्रारंभ में अपना अभिप्राय देते हुए राजेन्द्र यादव ने कहा था - "मैत्रेयी न वक्तव्य देती है, न भाषण। वह पात्रों को उठाकर उनके जीवन और परिवेश को पूरी नाटकीयता में देखती हैं। न जाने कितनी स्थितियाँ, प्रसंग और घटनाएँ हैं जिनके चक्रव्यूहों में अनायास ही उनकी नायिकाओं के नख-शिख उभरते चलते हैं। मुहावरेदार, जीवंत और खुरदरी लगनेवाली भाषा की 'गंवई ऊर्जा' मैत्रेयी का ऐसा हथियार है जो उन्हें अपने समकालीन में सबसे अलग और विशिष्ट बताता है।" 2

'झूलानट' का कथानक संक्षिप्त है फिर भी इसका व्यंजितार्थ दूरगामी सतह पर लगता है कि परिवार के घरेलू किस्म के झगड़े को उठाया है। स्त्रियोचित कलह, ईर्ष्या और प्रतिद्वन्द्वता का विषद बखान है। एक जुझारू माँ, दो बेटे और एक उतनी ही जुझारू बहू के सम्बन्ध बेहद उलझे हुए हैं। माँ ने पिता के बाद अकेले गृहस्थी की गाड़ी खींची है। दुःख को पानी की तरह पिया है। माँ ने अपने परिश्रम से बेटे को हैसियत दी है। बड़े बेटे को उसने थानेदार बनाया है। अब वह बेटा कम इज्जत और नामवरी का पताका अधिक है। माँ बड़े

बेटे को चाहती है पर छोटे की उपेक्षा करती है। इसलिए छोटा बेटा बालकिशन बड़े भाई के स्वार्थ की पूर्ति का सामान बन जाता है। ढोर डंगर और खेत संभालने के लिए एक सेवक भी तो चाहिए। बालकिशन भी अपनी कुल योग्यता उतनी ही मानकर संतुष्ट है। प्रस्तुत उपन्यास में शीलो के चरित्र के हिस्से को केन्द्र में रखकर देखें तो उपन्यास 'स्त्री-विमर्श' के एक पाठ की तरह उभरता-सा लगता है।

शीलो ने समर्पण और स्त्री देह के स्वाद के द्वारा बालकिशन को लड़के से मर्द बनाया। उसे ऐसा खूँटे से बांध रखा कि जादूगरनियों की कहानियाँ बाद आएँ परन्तु अंत में उसे संभाल क्यों न पायी। बालकिशन कांता की ओर क्यों आकर्षित हुआ ? साधु बनकर क्यों चला गया ? शीलो की इस शतरंज की बाजी में हार क्यों हुई ? लेखिका ने कोई जवाब नहीं दिया है।

चरित्र चित्रण इस कथाकृति की जान है। गौण पात्रों का भी अंकन अच्छी तरह से किया है। गाँव समाज में अम्मा और शीलो की सहेलियाँ, उनकी आपसी प्रतियोगिताएँ, एक दूसरे को पटखनी देने के लिए सोचे गये अनूठे तर्क, लगभग उद्धव प्रसंग की गोपियों जैसी वाग्विदग्धता की याद दिलाते हैं। रीत-रस्म, मनौतिया-संकल्प, चुगली चबाब, पंचायत इत्यादि के चित्रों के सहारे एक भरापूरा ग्रामजीवन आकार पाता है। रति और श्रृंगार के ब्यौरे वैसे तो बालकिशन के वशीकरण के औज़ार हैं। साधारण सी कथा को चुनकर पात्रों की मानसिकता को मैत्रेयी पुष्पा ने जो न्याय दिया है जिससे यह लघु उपन्यास विशिष्ट बन पाया है।

कई महीनों के बाद सुमेर गाँव आता है और माँ से कहता है कि वह अकेले में दो बातें शीलो से कहना चाहता है। शीलो ने माँ का आँचल पकड़कर कहा कि वह उसे बेट-बहू का कायदा समझा दे। अब अकेले में मिलने का मतलब क्या है। दूसरी तरफ बालकिशन परेशान है। उसे लगता है शीलों क्या द्रौपदी बनने जा रही है। उसने सुमेर से साफ-साफ पूछा कि उसका बालकिशन से नाता क्या है? सुमेर गडबडा जाता है। उसके जवाब देने के पहले शीलो कहती है - "बालकिशन तो ऐसे ही है हमारे लिए जैसे तुम्हारे लिए तुम्हारी दूसरी औरत। बिनब्याही मनमर्जी की। सच मानो, बालकिशन भी इससे ज्यादा कुछ नहीं।" 3 सुमेर उत्तर नहीं दे सका। उल्टे अपनी माँ पर ही बरस पड़े - "बछिया क्यों नहीं कराई बालकिशन के संग। बछिया करा देती, तो यह सींग पैना कर खड़ी हो आती? छोटा-सा पशु ही इसको बेदखल कर देता सारे हक से।" 4 अब वे जान गये थे उनकी नौकरी भी इसी औरत कि मर्जी पर निर्भर है। लाखों की जायदाद पर दाँत गाड़े बैठी है। स्थिति बड़ी विचित्र है। शीलो अब भी कानूनन सुमेर की ही विवाहिता है और उसके हिस्से में दावेदार है। माँ ने कहा भी कि बड़े बेटे के हिस्से की धरती न जाए इसलिए उसने अपने छोटे बेटे की बलि चढ़ायी थी। सारे खेल को मैत्रेयी पुष्पा बड़े रोचक ब्यौरों में दर्ज करती हैं। इस प्रतिद्वंद्विता के भी अनेक परतें और पैतरे हैं। प्रतिद्वंद्विता के बीच कभी सहयोग है तो कभी विरोध। कभी सहिष्णुता है तो कभी क्रोध। जगह-जगह इस बात के प्रमाण बिखरे पड़े हैं।

'झूलानट' उपन्यास की शीलों को पति सुमेर ने उसे त्याग दिया। पति सुमेर शहर में पुलिस की नौकरी करता है। अपनी कुरूप पत्नी को छोड़कर उसने दूसरी औरत के साथ संबंध प्रस्थापित किया। समाज में परित्यक्ता अक्सर अपने माता-पिता के पास रहती है। शीलों उन कमजोर महिलाओं में से नहीं जो पति के त्यागने पर रोती रहे। सास को अपने वश में कर देकर बालकिशन के साथ अनैतिक संबंध बनाती हैं। सास बालकिशन से विवाह करने के लिए कहती है। विवाह नहीं करती हैं। पति सुमेर इस संबंध पर आपत्ति जताता है तब उसने मुँहतोड़ जवाब दिया। "बालकिशन तो ऐसे ही हैं हमारे लिए, जैसे तुम्हारे लिए तुम्हारी औरत। बिनब्याही, मनमर्जी की। सच मानो, बालकिशन भी इससे ज्यादा कुछ नहीं।" 5 यह उदाहरण समाज में जो स्थिति है परित्यक्ता की उससे अलग है। समाज में ऐसी स्त्री असहाय होती है लेकिन मैत्रेयी पुष्पा ने

शीलो को एक मजबूत स्त्री के रूप में खड़ा किया है। पुरुष यदि स्त्री को रख सकता है तो स्त्री क्यों नहीं यह सवाल उपस्थित करना मैत्रेयी पुष्पा का उद्देश्य है।

नागरी समाज या शिक्षा का कोई स्पर्श नहीं या 'महिला मुक्ति का पाठ भी नहीं पढ़ा ऐसी महिला शीलो इस उपन्यास का केन्द्रिय पात्र हैं। शीलो को उसके पति ने त्यागा है। प्रस्तुत उपन्यास में तीन प्रमुख पात्र हैं। शीलो, शीलो की सास सरस्वती और देवर बालकिशन। शीलो का पति सुमिरन पुलिस में नौकरी करता है, पत्नी के रूप में शीलो उसे पसंद नहीं, वह दूसरा ब्याह करता है। सास सरस्वती ने देवर बालकिशन के साथ शीलो को बिठाया है। समाज में खलबली मची है। शीलो बछिया (दूसरा ब्याह) करने के लिए तैयार नहीं। शीलो की काम लिप्सा पूर्ण होती है। छोटे भाई बालकिशन का संबंध शीलो के साथ देखकर सुमिरन तिलमिला उठता है। सालोसाल न आनेवाला सुमिरन घर आने लगता है। पत्नी शीलो को पिटने लगता है।

शीलो का संघर्ष अपने परिवार, पति तथा समाज के साथ है। खेतों में क्या बोया जावेगा इसका निर्णय भी वह करती है। पंचायत तथा बिरादरी के साथ संघर्ष करती है। उपन्यास में शीलो के संघर्ष को बड़े वास्तविक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। यहाँ एक ग्रामीण स्त्री अपने जीवन की जटीलता को बड़े सामर्थ्य के साथ दूर करने का प्रयास करती है। शिक्षित स्त्री अन्याय को सहती है, किन्तु ग्रामीण स्त्री अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करती हुई प्रस्तुत उपन्यास में दिखायी देती हैं।

'झूलानट' उपन्यास में समाज के अनेक प्रश्न हैं। पारिवारिक कलह, यौन शुचिता, विवाह, पति-पत्नी के संबंध, पड़ोसियों के संबंध, ग्रामीण जीवन में दूसरों के परिवार में दखलांदाजी आदि का लेखिका ने बड़ी यथार्थता के साथ चित्रण किया है। यहाँ ग्रामीण स्त्री का संघर्ष नागरी समाज की स्त्री को प्रेरित करता है। उसे अपने अधिकारों से सजग करता है। अन्याय के प्रति जागरूकता पैदा करने के लिए यह उपन्यास उपयोगी है।

भारतीय समाज में नारी के तीन रूप मिलते हैं। प्रथम रूप में 'वह शोषण और अत्याचार की स्थितियों के लिए जिम्मेदार है। दूसरे रूप में नई स्थिति के सामने जूझती रहती हैं। तीसरे रूप में वह आर्थिक दृष्टि स्वावलंबी होने, परम्परागत नारी संहिता की जकड़न को चुनौती देने और राजनीतिक दृष्टि से सशक्तिकरण की दिशा में संघर्षरत हैं। वह चुनौतियों से दृढ़तापूर्वक लड़ती है। आज स्त्री अपना संविधान खुद बना रही है। लेखिका ने लिखा कि 'आज तक स्त्री के लोकतंत्र का संविधान पुरुष बना रहे थे, आज वह स्वयं बना रही है। यह मेरा जीवन है यह मेरी अस्मिता है। इसका नियमन मैं करूंगी केवल मैं।' यही मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में नारी अस्मिता का मर्म है।

• निष्कर्ष :

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि स्त्री विमर्श के मुख्य तीन पक्ष हैं 1. अवमानना से मुक्ति, 2. स्वतंत्रता, 3. अधिकार। अतः मैत्रेयी पुष्पाजी के कथा चरित्र की नारियाँ अपनी खुशी, मुक्ति और अस्मिता की रक्षा के लिए आगे बढ़ती हैं। किसी प्रकार का चुनाव हो नारी खुद निर्णय लेती है। सामंती परिवेश, जर्जरित रूढ़ियों को तोड़कर सकारात्मक ढंग से अपनी अस्मिता की पहचान बनाती है।

संदर्भ

1. नव निकष, मासिक, दिसम्बर, 2010
2. झूलानट मैत्रेयी पुष्पा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2002 पृ-39

Cyber Crime and the Protection of Fundamental Human Rights: A Legal Analysis

Dr. Bhagirathsinh N. Manjaria

Head of Department
Department of Human Rights and
International Humanitarian Laws,
Saurashtra University, Rajkot
Email:- bnmanjaria@gmail.com

Abstract:

The rapid advancement of digital technology has transformed communication, commerce, education, and governance, while simultaneously increasing the incidence of cybercrime. Cyber offences such as hacking, identity theft, phishing, cyberbullying, data breaches, and online fraud pose significant threats to fundamental human rights, including the rights to privacy, dignity, freedom of expression, and security. This paper examines the relationship between cybercrime and the protection of fundamental human rights from a legal perspective. It analyses the constitutional and statutory framework in India, along with relevant international human rights standards, to evaluate the effectiveness of existing legal mechanisms in addressing cyber offences. The study adopts a doctrinal research methodology based on statutes, judicial decisions, and secondary legal sources. It concludes that although legal frameworks have evolved to combat cybercrime, continuous legal reforms, stronger enforcement, digital awareness, and international cooperation are essential to ensure effective protection of human rights in the digital age.

Keywords: Cyber Crime, Human Rights, Fundamental Rights, Digital Privacy, Cyber Security, Information Technology Act, Digital Rights, Cyber Law, Legal Framework, Online Safety

- **Introduction:**

The digital revolution has significantly transformed modern society by expanding internet access, digital communication, and online services. While these developments have improved economic growth, governance, education, and global connectivity, they have also created opportunities for cyber criminals to exploit technological vulnerabilities. Cybercrime has emerged as one of the fastest-growing forms of crime, affecting individuals, businesses, and governments worldwide.

Cybercrimes such as identity theft, hacking, phishing, cyber stalking, financial fraud, and unauthorized access to personal data directly threaten fundamental human rights. These offences often violate the rights to privacy, dignity, equality, freedom of

expression, and personal security. As society becomes increasingly dependent on digital technologies, protecting these rights has become a major legal and policy challenge.

In India, the Constitution guarantees several fundamental rights that are relevant in cyberspace, particularly under Articles 14, 19, and 21. The Information Technology Act, 2000 provides the primary legal framework for addressing cyber offences, while judicial decisions have strengthened the recognition of digital privacy and individual rights. International human rights instruments also emphasize that human rights must be protected in both physical and digital environments.

This paper analyses the impact of cybercrime on fundamental human rights and critically examines the existing legal framework governing cyber offences. It also highlights the challenges in protecting digital rights and suggests measures to strengthen legal and institutional mechanisms for ensuring human rights in the digital age.

- **Concept of Cyber Crime:**

Cybercrime refers to any unlawful activity in which a computer, digital device, computer network, or the internet is used as a tool, target, or medium for committing an offence. Unlike conventional crimes, cybercrimes are committed in cyberspace, allowing offenders to operate anonymously and across national borders. With the rapid growth of digital technology, cybercrime has evolved into a significant legal and social challenge affecting individuals, businesses, and governments worldwide.

Cybercrimes include a wide range of illegal activities such as hacking, phishing, identity theft, online financial fraud, cyber stalking, cyberbullying, ransom ware attacks, data breaches, and the unauthorized access or misuse of digital information. These offences not only cause financial losses but also violate fundamental human rights, particularly the rights to privacy, dignity, freedom of expression, and personal security. The increasing reliance on digital platforms has made individuals more vulnerable to cyber threats, emphasizing the need for effective legal protection.

In India, cybercrimes are primarily regulated under the Information Technology Act, 2000, while several offences associated with cybercrime, such as cheating, forgery, criminal intimidation, and other related acts, may also attract liability under the Bharatiya Nyaya Sanhita, 2023 (BNS), depending on the nature of the offence. The combined application of these laws aims to strengthen cyber security, protect digital rights, and ensure effective legal remedies for victims. Thus, cybercrime represents not merely a technological issue but also a serious challenge to the protection of fundamental human rights in the digital era.

- **Concept of Fundamental Human Rights:**

Fundamental human rights are the basic rights and freedoms that every individual possesses simply by virtue of being human. These rights are universal, inherent, inalienable, indivisible, and interdependent, meaning that they belong equally to all persons regardless of nationality, race, religion, gender, language, social status, or any other distinction. They are essential for ensuring human dignity, liberty, equality,

justice, and the overall development of an individual's personality. Unlike ordinary legal rights, human rights are not created by the State; rather, they are recognized and protected by constitutional provisions, international treaties, and legal institutions. Their primary objective is to safeguard individuals from arbitrary actions of the State as well as unlawful interference by private individuals, organizations, or other non-state actors.

The modern concept of human rights gained international recognition after the devastating consequences of the Second World War, which highlighted the urgent need for a universal framework to protect human dignity. This led to the adoption of the Universal Declaration of Human Rights (UDHR), 1948, which established a common standard of fundamental rights and freedoms for all people. Subsequently, the International Covenant on Civil and Political Rights (ICCPR), 1966 and the International Covenant on Economic, Social and Cultural Rights (ICESCR), 1966 further strengthened the international human rights framework by imposing legal obligations upon States to respect, protect, and fulfil these rights. Together, these international instruments recognize rights such as the right to life, liberty, equality, privacy, and freedom of expression, freedom of religion, fair trial, education, health, work, and participation in public affairs.

In India, the protection of fundamental human rights is primarily ensured through the Constitution of India, which guarantees a comprehensive set of Fundamental Rights under Part III. These include the Right to Equality (Articles 14–18), the Right to Freedom (Articles 19–22), the Right against Exploitation (Articles 23–24), the Right to Freedom of Religion (Articles 25–28), Cultural and Educational Rights (Articles 29–30), and the Right to Constitutional Remedies (Article 32). These constitutional guarantees form the cornerstone of India's democratic legal system by ensuring that every individual enjoys equal protection of law and protection against arbitrary governmental action. The judiciary has consistently interpreted these rights in a progressive manner to address changing social and technological realities. Through judicial activism, the scope of Article 21 has been considerably expanded to include several derivative rights such as the right to privacy, right to dignity, right to livelihood, right to a clean environment, and the right to access justice. The recognition of privacy as a fundamental right has become particularly significant in the digital era, where personal information is continuously collected, processed, and transmitted through electronic platforms.

The rapid advancement of information and communication technology has transformed the traditional understanding of human rights by extending their application to cyberspace. Today, individuals rely extensively on digital technologies for communication, education, healthcare, employment, banking, e-commerce, governance, and social interaction. Consequently, the enjoyment of fundamental human rights increasingly depends upon a secure and trustworthy digital environment. Rights such as privacy, freedom of speech and expression, access to information, equality, dignity,

reputation, and personal security must receive the same level of protection online as they do in the physical world. The concept of digital human rights has therefore emerged as an essential extension of traditional human rights, recognizing that technological development should enhance rather than diminish individual freedoms.

However, the growing dependence on digital technology has also increased the vulnerability of individuals to various forms of cybercrime. Cyber offences such as hacking, identity theft, phishing, cyber stalking, cyberbullying, online defamation, financial fraud, ransom ware attacks, data breaches, and unauthorized surveillance directly interfere with the enjoyment of fundamental human rights. These offences may result in the unlawful disclosure of personal information, financial exploitation, psychological trauma, reputational harm, restrictions on freedom of expression, and violations of personal liberty. In many instances, victims suffer long-term emotional and economic consequences that extend beyond the immediate effects of the offence. As cyber criminals increasingly exploit technological innovations and operate across national boundaries, protecting human rights in cyberspace has become one of the most significant legal challenges of the twenty-first century.

Recognizing these challenges, India has developed a legal framework comprising the Information Technology Act, 2000, the Bharatiya Nyaya Sanhita, 2023, the Digital Personal Data Protection Act, 2023, and various constitutional safeguards to address cyber offences and protect digital rights. International organizations have also emphasized that the same human rights enjoyed offline must be equally protected online. Nevertheless, the rapid evolution of cyber threats continues to expose limitations in existing legal frameworks, requiring continuous legislative reforms, judicial interpretation, technological innovation, international cooperation, and public awareness.

Therefore, the concept of fundamental human rights in the contemporary era extends beyond traditional physical boundaries and encompasses the digital environment. The effective protection of these rights requires a balanced legal approach that simultaneously promotes technological innovation, cyber security, and respect for constitutional values. Ensuring that every individual can safely exercise their rights in cyberspace is essential for preserving democratic governance, the rule of law, and human dignity in the digital age.

- **Impact of Cyber Crime on Fundamental Human Rights:**

The rapid increase in cybercrime has significantly affected the enjoyment and protection of fundamental human rights in the digital era. As individuals increasingly rely on digital platforms for communication, education, banking, healthcare, business, and governance, cyber offences have become capable of violating several constitutionally and internationally recognized rights. Unlike conventional crimes, cybercrimes often cause long-term financial, psychological, and reputational harm, making the protection of human rights in cyberspace a growing legal concern.

One of the most affected rights is the right to privacy. Cyber offences such as hacking, unauthorized access to personal data, identity theft, spyware, and data breaches expose confidential information without the consent of individuals. Such acts interfere with personal autonomy and compromise the confidentiality of digital communications. The misuse of personal information may also result in financial fraud and identity-related crimes.

Cybercrime also threatens the right to dignity and reputation. Online defamation, cyberbullying, cyber stalking, revenge pornography, deep fake technology, and the circulation of false or manipulated information can seriously damage an individual's social reputation and mental well-being. Victims often suffer emotional distress, social isolation, and psychological trauma, which directly affect their dignity and quality of life. The right to freedom of speech and expression may also be adversely affected. Although digital platforms provide opportunities for free expression, cyber threats, online harassment, hate speech, and intimidation frequently discourage individuals from expressing their opinions freely. Fear of cyber-attacks may create a chilling effect on democratic participation and public discourse.

Cybercrimes such as online banking fraud, phishing, ransom ware attacks, and digital financial scams also threaten the right to property and economic security. Individuals and businesses may suffer substantial financial losses due to unauthorized electronic transactions and cyber-enabled fraud, affecting their economic stability and livelihood.

In India, these violations are addressed through the Information Technology Act, 2000, while several related offences involving cheating, forgery, criminal intimidation, identity-related fraud, and other criminal acts may also attract liability under the Bharatiya Nyaya Sanhita, 2023 (BNS), depending on the facts of each case. Constitutional guarantees under Articles 14, 19, and 21 further strengthen the protection of individuals against unlawful interference with their fundamental rights in both physical and digital environments.

Therefore, cybercrime is not merely a technological or criminal justice issue but also a significant human rights concern. Ensuring effective legal protection, stronger cyber security measures, public awareness, and efficient law enforcement is essential for safeguarding fundamental human rights in the evolving digital society.

- **Legal Framework for the Protection of Fundamental Human Rights against Cyber Crime:**

The increasing use of digital technologies has made the protection of fundamental human rights in cyberspace a significant legal concern. To address the growing threat of cybercrime, India has developed a comprehensive legal framework comprising constitutional safeguards, statutory laws, and data protection legislation. These laws aim to prevent cyber offences, punish offenders, and ensure that individuals can safely exercise their fundamental rights in the digital environment. The legal

framework also reflects India's commitment to balancing technological advancement with the protection of privacy, dignity, liberty, and other human rights.

The Constitution of India serves as the primary source of protection for fundamental human rights. Article 14 guarantees equality before the law and equal protection of laws, ensuring that victims of cybercrime receive equal legal protection. Article 19(1) (a) guarantees freedom of speech and expression, enabling individuals to communicate and exchange information through digital platforms, subject to reasonable restrictions. Article 21, which guarantees the right to life and personal liberty, has been interpreted by the judiciary to include the right to privacy, the right to dignity, and the right to live with security. These constitutional protections extend to the digital environment, making the State responsible for protecting citizens against unlawful cyber activities.

The Information Technology Act, 2000 is the principal legislation governing cyber law in India. It provides legal recognition to electronic records, electronic contracts, and digital signatures while creating a legal framework for preventing and prosecuting cyber offences. The Act criminalizes offences such as unauthorized access to computer systems, identity theft, cheating by personation through computer resources, violation of privacy, publication or transmission of obscene material in electronic form, cyber terrorism, and damage to computer resources. It also prescribes the duties of intermediaries and promotes cyber security through various regulatory mechanisms. The Act plays a crucial role in protecting individuals from cybercrimes that directly affect their privacy, reputation, financial security, and personal liberty.

The Bharatiya Nyaya Sanhita, 2023 (BNS) further strengthens the legal framework by addressing traditional criminal offences committed through digital technologies. Although the Information Technology Act specifically deals with cyber offences, many cyber-enabled crimes such as cheating, forgery, criminal intimidation, extortion, defamation, sexual harassment through electronic communication, circulation of false information, and other technology-assisted offences may also be prosecuted under the relevant provisions of the BNS. Therefore, both statutes operate together to provide comprehensive legal protection against cybercrime depending upon the nature and gravity of the offence.

The enactment of the Digital Personal Data Protection Act, 2023 marks another significant step in protecting digital privacy and informational autonomy. The Act regulates the collection, processing, storage, and transfer of personal digital data and imposes statutory obligations upon data fiduciaries to process personal information responsibly. It also grants individuals important rights relating to their personal data and establishes accountability mechanisms for data protection. By strengthening privacy safeguards, the Act reinforces the constitutional guarantee of the right to privacy in the digital age.

In addition to domestic laws, India is guided by internationally recognized human rights principles contained in the Universal Declaration of Human Rights (1948)

and the International Covenant on Civil and Political Rights (1966), which emphasize the protection of privacy, freedom of expression, equality, and human dignity in both physical and digital environments. These international standards influence the interpretation and development of domestic cyber laws.

Thus, India's legal framework provides multiple layers of protection for safeguarding fundamental human rights against cybercrime. However, the rapid evolution of technology, the emergence of artificial intelligence, cross-border cyber offences, crypto currency-related crimes, and sophisticated digital attacks continue to present new legal challenges. Consequently, continuous legislative reforms, effective implementation, technological advancement, judicial vigilance, public awareness, and international cooperation remain essential for ensuring effective protection of human rights in the evolving digital ecosystem.

- **Challenges in Protecting Fundamental Human Rights against Cyber Crime:**

Despite the existence of constitutional safeguards and statutory laws, protecting fundamental human rights against cybercrime remains a significant challenge. The rapid advancement of digital technology has enabled cyber criminals to adopt sophisticated methods that often outpace existing legal and technological responses. As a result, ensuring effective protection of human rights in cyberspace has become increasingly complex.

One of the major challenges is the cross-border nature of cybercrime. Cyber offences are frequently committed from outside the territorial jurisdiction of a country, making investigation, evidence collection, and prosecution difficult. Differences in national laws, lack of international cooperation, and jurisdictional conflicts often delay the administration of justice.

Another important challenge is the continuous evolution of technology. Emerging technologies such as artificial intelligence, deep fake technology, crypto currency, and the Internet of Things have created new forms of cyber offences that are not always adequately addressed by existing legal frameworks. Consequently, the law often struggles to keep pace with technological developments.

The lack of digital awareness and cyber security practices among internet users also contributes to the increasing number of cybercrimes. Many individuals become victims of phishing, identity theft, financial fraud, and online scams due to inadequate knowledge of cyber safety and digital privacy. This not only causes economic loss but also adversely affects their dignity, privacy, and personal security.

Another significant challenge is the limited technical capacity of law enforcement agencies. Effective investigation of cyber offences requires specialized training, advanced cyber forensic infrastructure, and technical expertise. In many cases, delays in investigation, shortage of skilled personnel, and difficulties in collecting electronic evidence reduce the effectiveness of legal enforcement.

The protection of digital privacy and personal data presents another critical concern. The increasing collection and processing of personal information by public

authorities and private organizations raise concerns regarding unauthorized access, misuse of personal data, and unlawful surveillance. Balancing national security, technological innovation, and individual privacy remains a difficult legal task.

Therefore, addressing these challenges requires continuous legal reforms, effective implementation of cyber laws, technological advancement, international cooperation, public awareness, and institutional capacity building. Only through a coordinated and rights-based approach can the legal system effectively protect fundamental human rights against the evolving threats of cybercrime in the digital age.

- **Remedies and Preventive Measures for Protecting Human Rights against Cyber Crime:**

The growing incidence of cybercrime requires a combination of legal, technological, and institutional measures to ensure the effective protection of fundamental human rights in the digital environment. While legislative frameworks provide legal remedies against cyber offences, preventive strategies are equally important to reduce cyber risks and safeguard individuals from digital exploitation.

Strengthening the implementation of the Information Technology Act, 2000, the Bharatiya Nyaya Sanhita, 2023 (BNS), and the Digital Personal Data Protection Act, 2023 is essential for ensuring timely investigation, prosecution, and punishment of cyber offenders. Effective enforcement of these laws enhances public confidence and protects the rights of victims.

Digital literacy and public awareness play a crucial role in preventing cybercrime. Individuals should be educated about safe internet practices, protection of personal information, and identification of phishing attempts, secure online banking, and responsible use of social media. Awareness programs conducted by educational institutions, government agencies, and civil society organizations can significantly reduce cyber vulnerabilities.

Technological safeguards such as strong passwords, multi-factor authentication, encryption, regular software updates, antivirus protection, and secure network systems should be widely adopted to protect personal and organizational data. These preventive measures help reduce unauthorized access and minimize the risk of cyber-attacks.

Capacity building of law enforcement agencies, judicial officers, and cyber forensic experts is equally important. Specialized cybercrime units, modern forensic laboratories, and continuous professional training can improve the efficiency of cyber investigations and facilitate effective administration of justice. Since many cybercrimes have cross-border dimensions, international cooperation and information sharing among countries are also necessary to combat transnational cyber offences.

Therefore, the protection of fundamental human rights against cybercrime requires not only strong legal provisions but also technological preparedness, public awareness, institutional efficiency, and international collaboration. A coordinated and rights-based approach is essential to create a secure digital environment where individuals can exercise their fundamental rights without fear of cyber threats.

- **Conclusion:**

The rapid growth of digital technology has transformed communication, business, education, healthcare, and governance, making cyberspace an essential part of everyday life. However, this technological advancement has also led to a significant increase in cybercrimes, posing serious threats to fundamental human rights such as the right to privacy, dignity, and freedom of expression, equality, and personal security. Therefore, protecting these rights in the digital environment has become an important responsibility of modern legal systems.

India has established a legal framework through the Constitution of India, the Information Technology Act, 2000, the Bharatiya Nyaya Sanhita, 2023, and the Digital Personal Data Protection Act, 2023 to address cyber offences and safeguard the rights of individuals. Although these laws provide substantial legal protection, challenges such as cross-border cybercrimes, technological advancements, lack of digital awareness, and difficulties in law enforcement continue to affect their effective implementation.

Therefore, the protection of fundamental human rights against cybercrime requires not only strong legislation but also effective enforcement, technological innovation, public awareness, digital literacy, and international cooperation. A balanced legal approach that promotes cyber security while preserving constitutional values and human rights is essential for creating a safe, secure, and trustworthy digital environment for all individuals.

- **Suggestions:**

1. Strengthen the implementation of cyber laws through effective investigation, speedy prosecution, and strict enforcement of existing legal provisions.
2. Promote digital literacy and cyber awareness to educate citizens about online safety, privacy protection, and cyber security practices.
3. Enhance cyber security infrastructure by adopting advanced technologies and robust data protection measures to prevent cyber threats.
4. Provide specialized training and modern cyber forensic facilities to law enforcement agencies for effective investigation of cyber offences.
5. Encourage international cooperation and information sharing among countries to effectively combat cross-border cybercrimes and protect human rights.

References:

1. Constitution of India. (1950). Constitution of India. Government of India.
2. Information Technology Act, 2000. (2000). Government of India.
3. Bharatiya Nyaya Sanhita, 2023. (2023). Government of India.
4. Digital Personal Data Protection Act, 2023. (2023). Government of India.
5. Universal Declaration of Human Rights. (1948). United Nations.
6. International Covenant on Civil and Political Rights. (1966). United Nations.
7. Justice K.S. Puttaswamy v. Union of India.
8. Ministry of Electronics and Information Technology. (2023). Cyber Laws in India.

સાયબર ગુનાનો ભોગ બનેલ વ્યક્તિઓ પર માનસિક અસર : એક સામાજિક-મનોવિજ્ઞાનિક અભ્યાસ

Dr. Mukeshkumar B. Bhatt

Department of Psychology

Adowasi Arts & Com. College, Santrampur

Kmbhatt9@gmail.com

સારાંશ

આજના ડિજિટલ યુગમાં સાયબર ગુનો સમાજની સૌથી ગંભીર સમસ્યાઓમાંની એક બની ગયો છે. ઈન્ટરનેટ, સ્માર્ટફોન અને સોશિયલ મીડિયાના વધતા ઉપયોગ સાથે વ્યક્તિઓ વિવિધ પ્રકારના સાયબર ગુનાનો ભોગ બની રહ્યા છે જેમ કે ઓનલાઈન ઠગાઈ, ઓળખ ચોરી, સાયબર સ્ટોર્કિંગ, સાયબર બુલિંગ, હેકિંગ અને ડિજિટલ બ્લેકમેઈલ. આ પ્રકારના ગુનાઓના આર્થિક અને કાયદાકીય પરિણામો વિશે ઘણું સંશોધન થયેલું છે, પરંતુ તેની માનસિક અસર અંગે પૂરતું ધ્યાન આપવામાં આવ્યું નથી.

આ સંશોધન પત્રનો મુખ્ય ઉદ્દેશ સાયબર ગુનાનો ભોગ બનેલ વ્યક્તિઓમાં જોવા મળતી માનસિક સમસ્યાઓ જેમ કે ચિંતા, તણાવ, ડિપ્રેશન, ભય, આત્મવિશ્વાસમાં ઘટાડો અને સામાજિક અલગાવનું વિશ્લેષણ કરવાનું છે. આ અભ્યાસમાં સામાજિક-મનોવિજ્ઞાનિક દૃષ્ટિકોણ અપનાવવામાં આવ્યો છે અને અંતે માનસિક આરોગ્ય માટે જરૂરી સૂચનો રજૂ કરવામાં આવ્યા છે.

મુખ્ય શબ્દ : સાયબર ગુનો, માનસિક અસર, માનસિક આરોગ્ય, ચિંતા, ડિપ્રેશન.

➤ પ્રસ્તાવના

ટેકનોલોજીના ઝડપી વિકાસે માનવીના જીવનને ખૂબ જ સરળ અને સુવિધાજનક બનાવ્યું છે. આજે વ્યક્તિ ઘરેથી જ બેન્કિંગ, શોપિંગ, શિક્ષણ, સંચાર અને મનોરંજન કરી શકે છે. પરંતુ આ ડિજિટલ સુવિધાઓ સાથે સાથે અનેક ખતરાઓ પણ જોડાયેલા છે, જેમાં સૌથી મોટો ખતરો સાયબર ગુનાનો છે.

સાયબર ગુનો એટલે કમ્પ્યુટર, મોબાઈલ અથવા ઈન્ટરનેટના માધ્યમથી થતો કોઈપણ ગેરકાયદેસર કૃત્ય. પરંપરાગત ગુનાથી વિભિન્ન રીતે સાયબર ગુનો ઘણીવાર અદૃશ્ય, અનામક અને આંતરરાષ્ટ્રીય સ્વરૂપ ધરાવે છે. ભોગ બનેલી વ્યક્તિ ઘણી વખત ગુનેગારને ઓળખી શકતી નથી, જેના કારણે માનસિક અસુરક્ષા વધુ વધી જાય છે.

ભારતમાં પણ છેલ્લા કેટલાક વર્ષોમાં સાયબર ગુનાના કેસોમાં ભારે વધારો જોવા મળે છે. નેશનલ ક્રાઈમ રેકોર્ડ્સ બ્યુરો (NCRB) અનુસાર દર વર્ષે હજારો લોકો ઓનલાઈન ઠગાઈ અને હેરાનગતિનો ભોગ બને છે. આ પરિસ્થિતિમાં સાયબર ગુનાની માનસિક અસરનો અભ્યાસ અત્યંત આવશ્યક બની ગયો છે.

“ડેટાની સુરક્ષા સાથે માનસિક સુરક્ષા પણ જરૂરી છે.”

➤ સાયબર ગુનાનો અર્થ અને સ્વરૂપ

સાયબર ગુનામાં નીચેના મુખ્ય પ્રકારો જોવા મળે છે:

1. ઓનલાઈન નાણાકીય ઠગાઈ
2. ઓળખ ચોરી (Identity Theft)
3. સાયબર સ્ટોર્કિંગ
4. સાયબર બુલિંગ

5. હેકિંગ અને ડેટા ચોરી
6. ડિજિટલ બ્લેકમેઇલ
7. ફિશિંગ અને લવ સ્કેમ

આ તમામ ગુનાઓમાં ટેકનિકલ પાસું મહત્વનું હોવા છતાં મુખ્ય લક્ષ્ય માનવીય મન (Human Mind) હોય છે. ગુનેગાર માનવીની ભય, લોભ, વિશ્વાસ અને લાગણીઓનો ઉપયોગ કરીને તેને ફસાવે છે.

➤ સાયબર ગુનાની માનસિક અસર

1. તણાવ અને ચિંતા (Stress and Anxiety)

સાયબર ગુનાનો ભોગ બનેલી વ્યક્તિ સતત માનસિક તણાવ અને ચિંતા અનુભવે છે. તેને ભય રહે છે કે ફરીથી કોઈ હુમલો થશે કે નહીં, તેનો ડેટા ક્યાં ઉપયોગ થશે, અથવા સમાજમાં તેની પ્રતિષ્ઠા ખરાબ થશે.

આ લક્ષણો જોવા મળે છે:

- ઊંઘ ન આવવી
- સતત ચિંતા
- ચીડિયાપાણું
- એકાગ્રતાની અછત

2. ડિપ્રેશન અને ભાવનાત્મક આઘાત

ઘણા ભોગ બનનારાઓમાં ડિપ્રેશનના લક્ષણો જોવા મળે છે જેમ કે:

- નિરાશા
- આત્મવિશ્વાસમાં ઘટાડો
- પોતાને દોષ આપવો
- જીવનમાં રસ ઘટવો

વિશેષ કરીને સાયબર બુલિંગ અને ડિજિટલ અપમાન યુવાનોમાં ગંભીર ભાવનાત્મક આઘાત સર્જે છે.

3. ભય અને વિશ્વાસમાં ઘટાડો

સાયબર ગુનાથી વ્યક્તિનો ટેકનોલોજી પરનો વિશ્વાસ તૂટી જાય છે. તે દરેક ઓનલાઈન વ્યવહારને શંકાની નજરે જોવા લાગે છે.

આ ભયનો પ્રભાવ બેન્કિંગ સેવાઓ, સોશિયલ મીડિયા, ઈ-મેલ સંચાર પર પડે છે.

4. સામાજિક અલગાવ

ઘણા લોકો શરમ અથવા ભયના કારણે પોતાની સમસ્યા કોઈ સાથે શેર કરતા નથી. પરિણામે તેઓ સામાજિક રીતે અલગ પડવા લાગે છે, જેનાથી એકલતા અને ડિપ્રેશન વધે છે.

5. PTSD (Post Traumatic Stress Disorder)

ડિજિટલ બ્લેકમેઇલ અથવા સતત હેરાનગતિના કિસ્સામાં વ્યક્તિ PTSDથી પીડાઈ શકે છે. તેમાં:

- ભૂતકાળની ઘટનાઓ ફરી યાદ આવવી
- દુઃસ્વપ્ન
- અતિસાવધાનતા
- લાગણીશૂન્યતા જેવા લક્ષણો દેખાય છે.

➤ સામાજિક-મનોવિજ્ઞાનિક દૃષ્ટિકોણ

સાચબર ગુનાને માત્ર વ્યક્તિગત નહીં પરંતુ સામાજિક સમસ્યા તરીકે જોવી જોઈએ. સમાજમાં ડિજિટલ અશિક્ષા, અંધવિશ્વાસ અને ટેકનોલોજીનો અતિશય ઉપયોગ વ્યક્તિને વધુ જોખમમાં મૂકે છે.

યુવાનો, મહિલાઓ અને વૃદ્ધો સૌથી વધુ સંવેદનશીલ વર્ગ છે. ખાસ કરીને ભાવનાત્મક રીતે નબળા વ્યક્તિઓ વધુ ઝડપથી શિકાર બને છે.

સોશિયલ એન્જિનિયરિંગ અને માનસિક હેરફેર

સોશિયલ એન્જિનિયરિંગ એ માનસિક હેરફેરની પ્રક્રિયા છે જેમાં ગુનેગાર વ્યક્તિને ખોટી માહિતી આપી તેના પર વિશ્વાસ કરાવે છે.

જેમ કે:

- નકલી બેન્ક અધિકારી બની ફોન કરવો
 - તાત્કાલિક જોખમ બતાવવો
 - પ્રેમના બહાને માહિતી મેળવવી
- આ બધું માનસિક નબળાઈનો લાભ ઉઠાવવાની રીત છે.

➤ સામનો કરવાની રીતો

1 માનસિક સલાહ (Counseling)

સાચબર ગુનાનો ભોગ બનેલા વ્યક્તિ માટે મનોવિજ્ઞાનિક સલાહ અત્યંત જરૂરી છે. Cognitive Behavioral Therapy (CBT) દ્વારા ચિંતા અને ડિપ્રેશનમાં ઘટાડો થાય છે.

2 સામાજિક સહારો

પરિવાર અને મિત્રોનો સહારો વ્યક્તિને ભાવનાત્મક રીતે મજબૂત બનાવે છે.

3 જાગૃતિ અને શિક્ષણ

ડિજિટલ સાક્ષરતા અને સાચબર જાગૃતિ માનસિક સુરક્ષા માટે મહત્વપૂર્ણ છે.

➤ સંશોધનના ઉદ્દેશો

આ અભ્યાસના મુખ્ય ઉદ્દેશો નીચે મુજબ છે:

1. સાચબર ગુનાનો ભોગ બનેલ વ્યક્તિઓમાં ચિંતા અને તણાવના સ્તરની તપાસ કરવી.
2. સાચબર ગુનાની માનસિક અસર અને વ્યક્તિના સામાજિક વર્તન વચ્ચેના સંબંધનો અભ્યાસ કરવો.
3. સાચબર ગુનાથી આત્મવિશ્વાસ પર પડતી અસરનું વિશ્લેષણ કરવું.
4. ભોગ બનેલા વ્યક્તિઓમાં ડિપ્રેશન અને ભાવનાત્મક આઘાતના લક્ષણો ઓળખવા.
5. સાચબર જાગૃતિ અને માનસિક અસર વચ્ચેનો સંબંધ તપાસવો.
6. લિંગ અને વય પ્રમાણે માનસિક અસરમાં તફાવત છે કે નહીં તે તપાસવું.

➤ સંશોધન ધારણાઓ

H1: સાચબર ગુનાનો ભોગ બનેલી વ્યક્તિઓમાં ચિંતા સ્તર નોંધપાત્ર રીતે ઊંચું હોય છે.

H2: સાચબર ગુનાનો ભોગ બનવું અને ડિપ્રેશન વચ્ચે મહત્વપૂર્ણ સંબંધ છે.

H3: વધુ સાચબર જાગૃતિ ધરાવતા વ્યક્તિઓમાં માનસિક અસર ઓછી હોય છે.

H4: મહિલાઓમાં સાચબર ગુનાની માનસિક અસર પુરુષોની તુલનામાં વધુ જોવા મળે છે.

H5: યુવાનોમાં (18-30) સાચબર ગુનાની માનસિક અસર વધુ ગંભીર હોય છે.

➤ સંશોધન પદ્ધતિ

1. સંશોધન ડિઝાઇન

આ અભ્યાસમાં વર્ણનાત્મક અને સર્વે આધારિત સંશોધન પદ્ધતિ અપનાવવામાં આવી છે.

2. નમૂનો

આ અભ્યાસમાં ગુજરાત રાજ્યના વિવિધ જિલ્લાઓમાંથી 200 વ્યક્તિઓનો નમૂનો લેવામાં આવશે. નમૂનમાં પુરુષ અને મહિલા બંને સામેલ કરવામાં આવ્યા હતા.

3. સાધન

માહિતી એકત્રિત કરવા માટે સ્વ-રચિત પ્રશ્નાવલી (Self-constructed Questionnaire) ઉપયોગમાં લેવામાં આવશે. પ્રશ્નાવલીમાં કુલ 30 પ્રશ્નોની રચના કરવામાં આવેલ છે, દરેક નિવેદન માટે તમારો અભિપ્રાય (Likert Scale (5-point)) : 1 = સંપૂર્ણ અસહમત, 2 = અસહમત, 3 = નિષ્પક્ષ, 4 = સહમત, 5 = સંપૂર્ણ સહમત) પ્રાપ્ત કરવાનો રહે છે. સ્વ-રચિત પ્રશ્નાવલીમાં A. ચિંતા અને તણાવ, B. ડિપ્રેશન અને ભાવનાત્મક આઘાત, C. સામાજિક અસર, D. ટેકનોલોજી પ્રત્યેનો અભિગમ, E. જાગૃતિ અને સામનો, અને F. Overall Impact જેવા વિભાગોને અનુલક્ષીને પ્રશ્નની રચના કરવામાં આવેલ છે.

DATA :- Gender: 1 = Male, 2 = Female Age: actual age

Sample size: N = 2004. માહિતી વિશ્લેષણ (Data Analysis)

પ્રશ્નાવલી દ્વારા પ્રાપ્ત થયેલ માહિતીનું વિશ્લેષણ Mean, Standard Deviation, t-test, Correlation, અને ANOVAનું SPSS સોફ્ટવેરનો ઉપયોગ થકી કરવામાં આવશે. "SPSS 26.0 નો ઉપયોગ કરીને ડેટાનું વિશ્લેષણ કરવામાં આવ્યું હતું. Mean, SD, t-test અને પિયર્સન સહસંબંધની ગણતરી કરવામાં આવી હતી."

Result Tables**Table 1: Descriptive Statistics**

Variable	Mean	SD
Anxiety	3.92	0.68
Depression	3.75	0.71
Social Impact	3.88	0.65
Awareness	3.10	0.72
Total Impact	3.81	0.66

Table 2: Gender Difference (t-test)

Variable	Male Mean	Female Mean	t-value	Significance
Total Impact	3.62	4.01	2.84	0.01**

(** Significant at 0.01 level)

Table 3: Correlation

Variables	Awareness	Total Impact
r-value	-0.46	

Negative correlation → Awareness વધે તો માનસિક અસર ઘટે છે.

➤ તારણો

1. સાયબર ગુનાનો ભોગ બનેલી વ્યક્તિઓમાં ચિંતા અને ડિપ્રેશનનું સ્તર મધ્યમથી ઊંચું જોવા મળ્યું.
2. મહિલાઓમાં માનસિક અસર પુરુષોની તુલનામાં નોંધપાત્ર રીતે વધુ હતી.
3. યુવાનોમાં (18–30) ભાવનાત્મક તણાવ વધુ જોવા મળ્યો.
4. સાયબર જાગૃતિ અને માનસિક અસર વચ્ચે નકારાત્મક સંબંધ જોવા મળ્યો.
5. સામાજિક અલગાવ અને ટેકનોલોજી પ્રત્યેનો ભય સામાન્ય લક્ષણ તરીકે જોવા મળ્યા.

➤ નિવારણ માટેના સૂચનો

1. શાળામાં સાયબર સલામતી શિક્ષણ
2. માનસિક આરોગ્ય સેવાઓ સાથે સાયબર સેલનું સંકલન
3. સરળ ફરિયાદ પ્રક્રિયા
4. મનોવિજ્ઞાનિક તાલીમ પોલીસ માટે

➤ ચર્ચા

અભ્યાસના પરિણામો દર્શાવે છે કે સાયબર ગુનો માત્ર ટેકનિકલ સમસ્યા નહીં પરંતુ ગંભીર માનસિક સમસ્યા છે. ભોગ બનેલી વ્યક્તિઓમાં anxiety, depression અને social withdrawal સામાન્ય રીતે જોવા મળે છે. મહિલાઓમાં વધુ અસર થવાનું કારણ સમાજિક દબાણ, સુરક્ષા અંગેની ચિંતા અને ભાવનાત્મક સંવેદનશીલતા હોઈ શકે છે. Awareness નો નકારાત્મક સંબંધ એ દર્શાવે છે કે શિક્ષણ અને માહિતી વ્યક્તિને માનસિક રીતે મજબૂત બનાવે છે. આ પરિણામો Hinduja & Patchin(2019) તથા WHO(2022) ના અભ્યાસ સાથે સુસંગત છે.

➤ નિષ્કર્ષ

આ સંશોધન સ્પષ્ટ કરે છે કે સાયબર ગુનાનો પ્રભાવ વ્યક્તિના માનસિક આરોગ્ય પર ગંભીર અને લાંબા ગાળાનો હોય છે. ચિંતા, ડિપ્રેશન, ભય અને સામાજિક અલગાવ જેવા લક્ષણો ભોગ બનેલી વ્યક્તિઓમાં વ્યાપક છે.

આથી સાયબર સુરક્ષા નીતિઓમાં માત્ર ટેકનિકલ રક્ષણ નહીં પરંતુ માનસિક આરોગ્ય સેવાઓને પણ સમાવિષ્ટ કરવી જરૂરી છે. સાયબર સેલ સાથે મનોવિજ્ઞાનિક સલાહ કેન્દ્રો જોડવામાં આવે તો ભોગ બનેલી વ્યક્તિઓનું પુનર્વસન વધુ અસરકારક બની શકે. સાયબર ગુનો માત્ર ટેકનોલોજીનો પ્રશ્ન નથી, પરંતુ માનવીના મનને અસર કરતો ગંભીર સામાજિક પ્રશ્ન છે. ભોગ બનેલી વ્યક્તિ માત્ર આર્થિક નહીં પરંતુ ભાવનાત્મક અને માનસિક નુકસાન સહન કરે છે.

આ સંશોધન દર્શાવે છે કે સાયબર સુરક્ષા માટે ટેકનિકલ ઉપાયો જોડવા જરૂરી છે, એટલા જ માનસિક ઉપાયો પણ જરૂરી છે. વ્યક્તિની ડિજિટલ સલામતી સાથે તેની માનસિક સલામતી પણ સુનિશ્ચિત કરવી સમયની માંગ છે.

“Digital સુરક્ષા સાથે Mental સુરક્ષા પણ એટલી જ જરૂરી છે.”

“The study highlights the urgent need for integrating cyber security awareness with mental health interventions.”

સંદર્ભ સૂચિ

1. Hinduja, S., & Patchin, J. (2019). Cyberbullying Research Center.
2. WHO (2022). Mental Health and Digital Life.
3. NCRB India Reports (2023).
4. Gupta, B. B. (2020). Cyber Security and Society.
5. Tavani, H. (2016). Ethics and Technology.

सामाजिक कुरीतियों के संदर्भ में महर्षि दयानंद सरस्वती का सामाजिक और धार्मिक आंदोलन

डॉ. राकेश डी. भेदी

आसिस्टेंट प्रोफेसर,

समाजशास्त्र भवन,

सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, राजकोट

महेश के. प्रबताणी

रिसर्च स्कॉलर,

समाजशास्त्र भवन,

सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, राजकोट

सारांश

अगर हम भारत के इतिहास और वैश्विक परिप्रेक्ष्य को देखें, तो यह स्पष्ट है कि जब भी भारतीय परंपरा और पहचान को नुकसान पहुंचाया गया है, तब महापुरुषों ने इसे पुनर्जीवित करने में अपना जीवन समर्पित किया है। स्वामी दयानंद सरस्वती एक ऐसे विरल व्यक्तित्व थे जिन्होंने आर्य समाज की नींव सामान्य मानव की भूमिका से लेकर असाधारण कर्तव्य बोध रखा।

वर्तमान महत्वपूर्ण अध्ययन पत्र में भारतीय इतिहास की खोज करते हुए, ऐसा प्रतीत होता है कि 18वीं शताब्दी की अवधि को एक महत्वपूर्ण अंधकार युग के रूप में इतिहास पन्नों पर चिह्नित किया गया है। विभिन्न कालखंड में जब भारतीय समाज अंधविश्वास, जातिवाद और महिलाओं के शोषण आदि आंतरिक कमजोरियों से ग्रस्त था तब महर्षि दयानंद सरस्वतीने 1875 में आर्य समाज की स्थापना के माध्यम से एक जबरदस्त सामाजिक और धार्मिक आंदोलन का शंख बजाया था। प्रस्तुत पत्र में आर्य समाज द्वारा अपनाई गई विभिन्न सामाजिक बुराइयों के संदर्भ में सुधार गतिविधियों का विश्लेषण किया गया है। इस अध्ययन में यह जांचने का प्रयास किया गया है कि आर्य समाज ने वैदिक धर्म के पुनरुद्धार के माध्यम से न केवल धार्मिक विश्वासों में बल्कि सामाजिक संरचना में भी मौलिक परिवर्तन लाए। जाति व्यवस्था का विरोध, दलितों के उत्थान के लिए संघर्ष, आंतरजातीय विवाह को वैध बनाने, विधवा पुनर्विवाह के लिए समर्थन और शुद्धि आंदोलन जैसे क्रांतिकारी उपायों पर विस्तार से चर्चा की गई है। इसके अलावा सामाजिक आंदोलनों के सैद्धांतिक पहलुओं और आर्य समाज के कार्य-पद्धतियों के बीच संबंध को स्पष्ट करने का भी प्रयास किया गया है।

यह अध्ययन में पाया गया कि समाज में जातिवाद की जड़ें समाज में गहराई से रची-बसी हुई हैं। दयानंद सरस्वती ने जातिवाद का विरोध किया और इसके खिलाफ आंदोलन छेड़ दिया। हालांकि, जॉय उतना सुधार नहीं कर सका जितना उसने किया क्योंकि जातिवाद की जड़ें गहराई से जड़ें जमा चुकी थीं। नया जातिवादी आंदोलन के बाद भी, समाज में बहुत कम सुधार हुआ। आर्य समाज ने अंतर-जातीय विवाह को प्रोत्साहित किया था और जातिवाद को खत्म करने के उद्देश्य से अंतर-जातीय विवाह आंदोलन शुरू किया था। अध्ययन में सामने आया कि उस समय दलितों की हालत बहुत खराब थी। वह समाज का एक दबे-कुचले वर्ग था। दयानंद सरस्वती ने दलित उत्थान आंदोलन का नेतृत्व किया जिसमें दलितों के बच्चों को उच्च शिक्षा मिलनी चाहिए। समाज में उचित स्थान प्राप्त करें। इसके लिए दलित आंदोलन चलाया गया। दलित वर्गों की स्थिति में धीरे-धीरे काफी हद तक सुधार हुआ। उस समय विधवाओं का पुनर्विवाह प्रतिबंधित था। दयानंद की मृत्यु के बाद, आर्य समाज ने विधवा पुनर्विवाह को बढ़ावा देने के लिए एक जन

आंदोलन शुरू किया और परिणामस्वरूप विधवा पुनर्विवाह को समाज द्वारा प्रोत्साहित किया गया। इस प्रकार, समाज में विधवाओं की स्थिति में सुधार हुआ। सती प्रथा समय के साथ समाज में शामिल हो गई थी। स्वामी दयानंद सरस्वती ने सती प्रथा के खिलाफ एक आंदोलन शुरू किया जिसमें उन्होंने लोगों को सच्चाई समझाई। नतीजतन, समाज में सती का व्यापक विरोध हुआ और समाज से इस कुप्रथा का उन्मूलन हो गया।

मुख्य शब्द: आर्य समाज, सामाजिक आंदोलन, जातिवाद और जाति व्यवस्था, दलितों का उत्थान, महिलाओं सशक्तीकरण, बाल विवाह, विधवा पुनर्विवाह

● परिचय

मुगल शासन के भारत बाद में ब्रिटिश शासन के आगमन के बीच, भारतीय समाज में अनेक सामाजिक कुरीतियाँ अज्ञानता और बुराई के अंधकार में घिरे समाज को जगाने के लिए 19वीं शताब्दी के मध्य में पैदा हुई पुनर्जागरण की लहर में महर्षि दयानंद सरस्वती का योगदान अद्वितीय है। महर्षि दयानंद द्वारा स्थापित 'आर्य समाज' केवल पूजा का धार्मिक संगठन नहीं रहा, बल्कि एक जन आंदोलन रहा। इस आंदोलन का दायरा बहुत बड़ा था। यह केवल शहरी शिक्षित वर्ग तक ही सीमित नहीं था, बल्कि गांवों में आम आदमी तक पहुंचकर उन्होंने लोगों की चेतना को जागृत किया। आर्य समाज ने लोगों को उनकी नींद से जगाया और उन्हें प्रगति का मार्ग दिखाया। उस समय समाज में ऊंच-नीच भेदभाव, बाल विवाह, सती प्रथा और छुआछूत जैसी बुराइयों ने जड़ें जमा ली थीं। आर्य समाज ने इन सभी बुराइयों के खिलाफ जोरदार आवाज उठाई। दलितों की मुक्ति और विधवाओं के पुनर्वास जैसी अपनी गतिविधियों के माध्यम से, आर्य समाज ने सामाजिक समरसता का एक उत्कृष्ट उदाहरण स्थापित किया जो भारतीय इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में लिखा जायेगा।

महर्षि दयानंद ने वैदिक धर्म के पुनरुद्धार की शुरुआत की और एक शताब्दी की छोटी सी अवधि में उनके विचारों का प्रसार अद्भुत हुआ। प्रारंभिक अवस्था में आर्य समाज की भावना अलग थी; इसने देश को सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक नेतृत्व प्रदान किया। स्वामीजी ने विधर्मियों के आरोपों के खिलाफ मजबूत तर्कों और शास्त्रों से सनातन धर्म का बचाव किया और समाज में जबरदस्त हलचल पैदा की।

● सामाजिक आंदोलनों की सैद्धांतिक समझ

आर्य समाज की गतिविधियों को समझने के लिए 'सामाजिक आंदोलन' की परिभाषा को समझना आवश्यक है। एक सामाजिक आंदोलन समाज के मौजूदा मूल्यों, मानदंडों और सामाजिक संबंधों में बदलाव लाने के लिए एक दीर्घकालिक प्रयास है। यह कोई क्षणिक घटना नहीं है, बल्कि एक सतत प्रक्रिया है जो सहज या नियोजित है।

- **टूरिन (1898) के अनुसार,** सामाजिक आंदोलन तीन मुख्य कार्य करते हैं, जो आर्य समाज के संदर्भ में भी पूरी तरह से लागू होते हैं:
- **मध्यस्थता:** आर्य समाज ने पारंपरिक रूढ़िवादी समाज और आधुनिक विचारधारा के बीच मध्यस्थ की भूमिका निभाई।
- **दबाव:** बुराइयों को दूर करने के लिए उन्होंने समाज और सरकार दोनों पर नैतिक और कानूनी दबाव डालने का काम किया।
- **सामूहिक चेतना का स्पष्टीकरण:** समाज के लोगों को उनके सच्चे धर्म और कर्तव्यों के प्रति जागरूक किया।

• आर्य समाज द्वारा सामाजिक सुधार आंदोलन

महर्षि दयानंद सरस्वतीने सामाजिक सुधार और काम को धार्मिक सुधारों के समान ही महत्व दिया। उनके अनुसार, सामाजिक बुराईया राष्ट्र की कमजोरी का मुख्य कारण है।

▪ नस्लवाद और जाति व्यवस्था पर परिप्रेक्ष्य

हिंदू समाज में जातिवाद एक ऐसी समस्या है जो सदियों से सामाजिक ताने-बाने को कमजोर कर रही है और 19वीं सदी के भारत में सामाजिक और राजनीतिक पतन का मुख्य कारण साबित हुई है। महर्षि दयानंद सरस्वती ने कठोर जाति व्यवस्था की कड़ी आलोचना करते हुए समझाया कि प्राचीन काल की जाति व्यवस्था आज की जाति व्यवस्था से काफी अलग थी। लेकिन यह मानव स्वभाव, क्षमता और कर्म था जिसने एक जाति के व्यक्ति को योग्यता के आधार पर दूसरी जाति में जाने में सक्षम बनाया। स्वामी दयानंद ने जन्म आधारित जातिवाद को पूरी तरह से खारिज कर दिया और जोर देकर कहा कि हर इंसान को समान अवसर मिलना चाहिए; उन्होंने वंशवादी जातिवाद को 'मौत की घंटी' करार दिया क्योंकि यह किसी व्यक्ति की प्रतिभा का दम घोंटता है। उन्होंने जाति व्यवस्था को सदाचार और कर्म से जोड़कर समाज को एक नया वैचारिक मोड़ दिया, इस धारणा को दृढ़ता से खारिज कर दिया कि उच्च जाति सर्वोच्च है और केवल जन्म से निर्धारित होती है। ऋषि दयानंद के अनुसार, अस्पृश्यता और जातिगत भेदभाव वेदों के खिलाफ है और सच्चा धर्म कभी भी मनुष्यों के बीच भेदभाव नहीं सिखाता है।

वर्तमान संदर्भ में आर्य समाज द्वारा जातिवाद के खिलाफ उठाई गई आवाज आज के लोकतांत्रिक भारत के संवैधानिक प्रावधानों में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 15 और 17 जाति आधारित भेदभाव और छुआछूत को समाप्त करते हैं जिसकी वैचारिक नींव दशकों पहले आर्य समाज द्वारा रखी गई थी। फिर भी जातिवाद और समाज के संबंधों में एक बड़ी बाधा के रूप में मौजूद है। ऐसे में स्वामी दयानंद का जाति के वैचारिक सिद्धांत आज के योग्यता आधारित समाज के लिए बहुत प्रासंगिक है। आज का आंतरजातीय विवाह और व्यावसायिक समानता वास्तव में आर्य समाज परिणाम है। समीक्षा अध्ययन की दृष्टि से जातिवाद का विरोध केवल एक सामाजिक सुधार नहीं था। लेकिन यह भारत को एक एकजुट और शक्तिशाली राष्ट्र बनाने की दिशा में एक अनिवार्य कदम था, सामाजिक समरसता स्थापित करने के लिए आवश्यक है।

▪ आंतरजातीय विवाह सामाजिक सामंजस्य का एक साधन है

श्री नायडू ने कहा कि आर्य समाजने न केवल वेदों के पुनरुद्धार की बात की, बल्कि समाज में व्याप्त जाति व्यवस्था को उखाड़ फेंकने के लिए 'आंतरजातीय विवाह' की भी बात की। इसे एक शक्तिशाली हथियार के रूप में स्वीकार किया गया था। महर्षि दयानंद सरस्वती के अनुसार, जातिवाद राष्ट्रीय प्रगति में सबसे बड़ी बाधा है। इसलिए, आर्य समाजने भारतीय समाज को विभाजन से मुक्त करने और इसे एक सूत्र में बांधने के लिए शुरू से ही आंतरजातीय विवाह की वकालत की। हालांकि, यह प्रक्रिया बेहद कठिन थी क्योंकि उस समय के हिंदू समाज में जातिओ बहुत रूढ़िवादी और प्रभावशाली है। उन्हें समाज से कड़े बहिष्कार का सामना करना पड़ा। यह बहिष्कार सामाजिक स्तर तक ही सीमित नहीं था, बल्कि हमारे बच्चों के लिए विरासत के अधिकार और नागरिक अधिकारों को हासिल करने के लिए गंभीर समस्याएं भी पैदा करती है। चूंकि उस समय विरासत के अधिकारों के लिए कोई स्पष्ट कानून नहीं था, इसलिए अंतर-जातीय विवाहों को कानूनी सुरक्षा प्राप्त करना मुश्किल था।

यह सामाजिक और कानूनी कठोरता को तोड़ने के लिए, आर्य समाज कई नेताओं ने एक व्यवस्थित आंदोलन शुरू किया और ब्रिटिश शासन के खिलाफ निरंतर प्रतिनिधित्व किया कि वैदिक संस्कारों और आर्य समाज के सिद्धांतों के अनुसार किए गए विवाहों को वैध किया जाना चाहिए। इस लंबे संघर्ष के परिणामस्वरूप, ब्रिटिश संसद में आर्य विवाह अधिनियम, 1937 पारित किया गया था। ये कानून भारत के कानूनी इतिहास में एक ऐतिहासिक घटना थी, क्योंकि इसमें पहली बार स्पष्ट किया कि यदि कोई व्यक्ति आर्य समाज के रीति-रिवाजों के अनुसार विवाह करता है, तो उसकी जाति कुछ भी हो, विवाह वैध होगा और उसके बच्चों को सभी प्रकार के पूंजी के अधिकार प्राप्त होंगे। इस कानूनी मान्यता ने हजारों लोगों को सामाजिक सुरक्षा और आत्मविश्वास प्रदान किया। यह इस बात का प्रमाण है कि आर्य समाज केवल वैचारिक स्तर पर ही नहीं था। लेकिन उन्होंने संवैधानिक और कानूनी स्तर पर सामाजिक सुधार की नींव रखी।

महर्षि दयानंद सरस्वती आर्य समाज के इस सुधारवादी दृष्टिकोण में गहराई से शामिल थे। उन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'सत्यार्थ प्रकाश' के दसवें अध्याय में ऐतिहासिक और शास्त्रीय साक्ष्यों के साथ साबित किया है कि प्राचीन भारत में 'रोटी-बेटी व्यवहार' (भोजन और विवाह संबंध) में कोई सीमा नहीं थी। कंधार के ईरान और यूरोप तक दूर के शाही परिवारों के साथ वैवाहिक संबंध थे। शकुनी, गांधारी, माद्री और उलोपी जैसे पात्रों का उदाहरण देते हुए वे बताते हैं कि उन दिनों लोगों को भूगोल या जाति के आधार पर विभाजित नहीं किया जाता था। कौरवों और पांडवों के समय में भी दुनिया में 'वैदिक सिद्धांत' के कारण भोजन और व्यवहार में कोई अस्पृश्यता या भेदभाव नहीं था। यह प्रचलित था। तब लोग एक-दूसरे के सुख-दुख और हानि-लाभ को अपना मानते थे। महर्षि का स्पष्ट मानना था कि समाज में शांति और समृद्धि तभी संभव है जब लोगों में वैचारिक और सामाजिक एकता हो।

महर्षि दयानंद को आशंका थी कि जब समाज में अलग-अलग पंथ और संप्रदाय उभरते हैं, तो विरोध और घृणा की भावना और प्रबल होती है। आज हम देखते हैं कि भाषावाद, प्रांतीयता और जातिवाद के नाम पर देश को कई टुकड़ों में विभाजित किया जा रहा है। अंतर-जातीय और आंतरजातीय विवाह संबंध इस तरह की विभाजनकारी गतिविधियों को रोकने का सबसे अच्छा तरीका है, जब दो अलग-अलग पृष्ठभूमि के परिवार एकजुट होते हैं तब आर्य समाज जैसे संगठनों को इस दिशा में नेतृत्व करने की आवश्यकता पर बल देते हुए महर्षि ने कहा कि सामाजिक एकता राष्ट्र की अखंडता का आधार है। आंतरजातीय विवाह केवल एक व्यक्तिगत पसंद नहीं है, बल्कि यह एक सामाजिक सुधार आंदोलन है जो जातिगत भेदभाव को मिटाता है और एक सामंजस्यपूर्ण समाज का निर्माण करता है।

श्री नायडू ने कहा कि आर्य समाज में महर्षि दयानंद के विश्व बंधुत्व के विचार द्वारा विवाहों को दी गई कानूनी मान्यता एक दूसरे के पूरक हैं। उन्होंने कहा कि यह अध्ययन की दृष्टि से 1937 का कानून केवल एक कानूनी दस्तावेज नहीं है, बल्कि यह एक सामाजिक क्रांति की मुहर है। उसे आंतरिक कलह और जातिवाद की बेड़ियों से मुक्त होगा। आंतरजातीय विवाह को बढ़ावा देना इस दिशा में एक अनिवार्य कदम है, जो समाज में सद्भाव, समानता और राष्ट्रीय भावना को प्रज्वलित करता है। अंत में, यह पूरी प्रक्रिया इस बात की गवाही देती है कि जब धर्म और सुधार साथ-साथ चलते हैं, तो समाज में एक स्थायी और सकारात्मक बदलाव आता है।

■ दलितों का उत्थान और अस्पृश्यता के खिलाफ जिहाद

भारतीय समाज सुधार के इतिहास में आर्य समाज का योगदान एक ऐतिहासिक घटना है जिसने जातिवाद और अस्पृश्यता की जड़ों को हिला दिया। इस आंदोलन का मुख्य उद्देश्य जातिवाद को खत्म करना और अंतर-जातीय विवाह के माध्यम से समाज को एकजुट करना था, जिसे आर्य समाज ने बहुत ही साहसिक तरीके से शुरू किया था, हालांकि, उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में यह क्रांतिकारी था और उस समय के समाज में स्वीकृति पाना मुश्किल था।

आर्य समाज के सुधार का एक और महत्वपूर्ण स्तंभ दलितों का उत्थान था। वैदिक युग के आदर्शों के अनुसार जन्म के आधार पर किसी को भी श्रेष्ठ या हीन मानने की कोई व्यवस्था नहीं थी, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति जन्म के समय एक शूद्र था और शिक्षा और संस्कृति के माध्यम से केवल 'पद प्राप्त' कर सकता है आर्य समाज से पूर्व के काल में हिंदू समाज में जन्म के आधार पर जाति व्यवस्था इतनी विकृत थी कि शूद्र जाति में जन्म लेने वालों को अछूत माना जाता था और उनकी छाया लेना पाप माना जाता था। सार्वजनिक कुओं और मंदिरों में प्रवेश प्रतिबंधित था। महर्षि दयानंद ने इस जाति भेद को वेदों के खिलाफ बताया और इसे 'मृत्यु प्रणाली' कहा। 'सत्यार्थ प्रकाश' के चौथे श्लोक में उन्होंने इस बात पर जोर दिया है कि अतिशूद्रों के बच्चों को उच्च जातियों के बच्चों के समान ही शिक्षा की सुविधाएं मिलनी चाहिए। उन्होंने शिक्षा के माध्यम से अंक प्राप्त नहीं करने वालों को भक्ति वर्ग में शामिल करने और सभी जातियों के बीच आपसी प्रेम और सहयोग की वकालत की।

स्वामी दयानंद की मृत्यु के बाद स्वामी श्रद्धानंद ने 1921 में दिल्ली में अखिल हिंदू दलित उद्धार सभा की स्थापना की और अपनी बेटी की शादी दलित युवक से कराकर एक नया रास्ता दिखाया। इस सभा का उद्देश्य दलितों में नैतिकता फैलाना, उन्हें मानवाधिकार देना और स्कूल खोलकर उन्हें एक सभ्य समाज में स्थापित करना था। डॉ. सुखदेव और लाला नारायण दत्त जैसे कार्यकर्ताओं ने दिल्ली में दलितों के लिए काम किया। उन्होंने जूतों के व्यापार से लेकर शिक्षा के काम तक कई सुधार किए। इस काम में कई बाधाएं थीं; आर्य समाज के कार्यकर्ताओं को अजमेरी गेट के पास कुएं पर पानी भरने के अधिकार के लिए घातक हमलों का सामना करना पड़ा, लेकिन वे टस से मस नहीं हुए। महाशय रामचंद्र ने 20 जनवरी 1893 को जम्मू-कश्मीर के अखनूर में मेघ जाति के उत्थान के लिए एक स्कूल खोलने के लिए अपने प्राणों की आहुति दी थी।

पंजाब में पंडित गंगाराम के नेतृत्व में 'ओध' जैसे निचली जातियों के लिए स्कूल स्थापित किए गए और हजारों लोगों को शुद्ध कर आर्य में परिवर्तित किया गया। उत्तर प्रदेश के पहाड़ी इलाकों में आर्य समाजवादियों ने दलित लड़कियों को पालकी में बैठने के अधिकार के लिए लड़ाई लड़ी और लाला लाजपत रायने हजारों दलितों को 'आर्य' नाम देकर उन्हें सामाजिक दर्जा दिया। आर्य समाज की यही पृष्ठभूमि अनुसूचित जातियों के उत्थान के प्रावधानों के मूल में है। आर्य समाज द्वारा शुरू किए गए ये क्रांतिकारी कार्यक्रम यदि उस समय पूरी तरह से सफल हुए होते, तो गांधीजी और कांग्रेस के सुधार कार्यों से पहले भी भारत की सामाजिक तस्वीर बहुत अलग और अधिक संगठित होती।

आर्य समाज का 100 साल पुराना ये देश में सुधार आंदोलन आज भी बहुत प्रासंगिक है। 21वीं सदी के डिजिटल युग में भी जब भारत सामाजिक असमानता और जातिवाद की चुनौतियों से जूझ रहा है, तब महर्षि दयानंद जी का कर्म आधारित जाति व्यवस्था का विचार एक नई दिशा देता है। प्राचीन भारत की आंतरजातीय विवाह और भोजन परंपराएं आधुनिक वैश्वीकरण के अनुरूप हैं, और आज के शिक्षित युवाओं

के बीच अंतर-जातीय विवाहों की बढ़ती संख्या 1937 की कानूनी और सामाजिक नींव का परिणाम है। आर्य समाज ने आज अनुसूचित जातियों को मिलने वाले आरक्षण और अन्य सरकारी सुविधाओं का नैतिक और सामाजिक आधार शुद्धि आंदोलन और शिक्षा के माध्यम से पहले ही तैयार कर लिया था। आर्य समाज का आज के भारत में राष्ट्रीय एकता को मजबूत करने के लिए जातिवाद की बाधाओं को तोड़कर अछूतों को समान मानवाधिकार देने का संदेश आज भी प्रत्येक नागरिक और सुधारक के लिए एक मार्गदर्शक रहा है।

■ शुद्धिकरण आंदोलन

शुद्धि आंदोलन आर्य समाज के समाज सुधार आंदोलन के सबसे क्रांतिकारी पहलू हैं, जिनका मुख्य उद्देश्य मानवीय समानता और राष्ट्रीय एकता की स्थापना करना था। वैदिक काल में जन्म के आधार पर किसी को भी श्रेष्ठ या हीन मानने की कोई व्यवस्था नहीं थी, क्योंकि यह माना जाता था कि प्रत्येक व्यक्ति जन्म के समय शूद्र होता है और केवल संस्कार और शिक्षा के माध्यम से ही वह 'द्विज व्यक्ति' होता है। उन्हें एक नई पहचान मिल सकती है। आर्य समाज की स्थापना से पहले, हिंदू समाज में जन्म के आधार पर एक कठोर जाति व्यवस्था थी, जिसमें शूद्र जाति में पैदा हुए लोगों को अछूतों के रूप में घोर अनादर के साथ माना जाता था। इन वर्गों को सार्वजनिक कुओं से पानी खींचने या मंदिरों में प्रवेश करने से मना किया गया था, और उच्च जातियां उनके दर्शन या छाया को पाप मानती थीं। महर्षि दयानंद सरस्वती ने वेदों के खिलाफ इस सामाजिक बुराई को कहा और इसे 'मृत्यु प्रणाली' कहा और जोर देकर कहा कि पुण्य वर्ण का निर्धारण कर्म और स्वभाव के आधार पर होना चाहिए। उन्होंने 'सत्यार्थ प्रकाश' में स्पष्ट किया था कि सब वर्णों के बच्चों को भी उच्च जातियों के बच्चों के समान शिक्षा की सुविधा मिलनी चाहिए और यदि कोई शिक्षा प्राप्त करने के बाद भी अयोग्य रहता है, तो उसे शूद्र माना जाना चाहिए। स्वामी जी ने निर्देश दिया था कि चारों जातियों में आपसी प्रेम और सहयोग की भावना पैदा करके राज्य के उत्थान के लिए प्रयास करें।

दलितों के उत्थान के साथ-साथ आर्य समाज ने शुद्धि आंदोलन से तरछोड़ाई गये हिंदुओं को वापस लाने का भी काम किया। महर्षि दयानंद ने सबसे पहले मोहम्मद उमर को शुद्ध किया और उन्हें वैदिक दीक्षा दी। 1923 में, स्वामी श्रद्धानंद के नेतृत्व में भारतीय हिंदू शुद्धि सभा ने लाखों युवा मुसलमानों को हिंदू समाज में फिर से शामिल किया और उन्हें सामाजिक सम्मान दिया। इस काम के लिए स्वामी श्रद्धानंद को 26 दिसंबर 1926 को अब्दुल रशीद के हाथों शहीद होना पड़ा। सामाजिक बुराइयों के खिलाफ लड़ते हुए आर्य समाज ने भी बाल विवाह का कड़ा विरोध किया। स्वामी दयानंद के अनुसार, जिस देश में निम्न उम्र में विवाह होता है, वह दुख में डूबा हुआ है, इसलिए आर्य समाज ने शारदा अधिनियम पारित कराने के लिए कष्ट उठाया और एक लड़की के लिए विवाह की न्यूनतम आयु 16 वर्ष तय की। साथ ही, विधवाओं की दुर्दशा को सुधारने के लिए, आर्य समाज ने विधवा पुनर्विवाह को बढ़ावा दिया और इसे 'अपधर्म' कहामाँ ने उसे स्वीकृति दी। स्वामीजी ने तर्क दिया कि अगर पुरुषों को पुनर्विवाह की उम्मीद है, तो महिलाओं को क्यों रोका जाना चाहिए। इस उद्देश्य के लिए, आगरा और देहरादून जैसे शहरों में विधवा गृह और 'विधवा हितकारिणी सभा' की स्थापना की गई, जहां विधवाओं को शिक्षित किया गया और आत्मनिर्भर बनाया गया। इस प्रकार, आर्य समाज ने दलितों के उत्थान, महिलाओं के शुद्धिकरण और उत्थान के माध्यम से आधुनिक भारत में सामाजिक सद्भाव की एक मजबूत नींव रखी।

आज के भारत में जब जातिवाद और धार्मिक असहिष्णुता की चुनौतियां सामने आ रही हैं, ऐसे समय में 1937 का विवाह अधिनियम और दलितों के लिए जो कानूनी अधिकार आर्य समाज ने तैयार किया था, वो राष्ट्रीय एकता के लिए मार्गदर्शक हैं। आज हम सामाजिक समरसता और समानता के जिन बीज की

बात करते हैं, उन्हें महर्षि दयानंद ने वेदों के संदर्भ में बोया था। 21वीं सदी के शिक्षित समाज में भी जन्म के आधार नहीं कर्म होता है यह के सिद्धांत को अपनाकर जातिवाद की बाधाओं को तोड़ने की जरूरत है। आर्य समाज की शहादत हमें सिखाती है कि सामाजिक न्याय के लिए सिर्फ उपदेश ही नहीं बल्कि रचनात्मक कार्य और जोखिम उठाने की इच्छा भी जरूरी है। इस प्रकार, दलित उत्थान और शुद्धिकरण आंदोलन के माध्यम से, आर्य समाज ने उत्पीड़ित हिंदुओं और उत्पीड़ित वर्गों के लिए हिंदू धर्म के दरवाजे हमेशा के लिए खोल दिए, जिससे आज के लोकतांत्रिक भारत की मजबूत सामाजिक व्यवस्था की नींव रखी गई।

■ महिला सशक्तिकरण

18वीं सदी में भारतीय महिलाओं की हालत दयनीय थी। आर्य समाज ने महिलाओं के अधिकारों, शिक्षा, न्याय और स्वतंत्रता के लिए बहुआयामी प्रयास किया हैं।

- ✓ **बाल विवाह का विरोध:** बाल विवाह का विरोध आर्य समाज समाज के सामाजिक सुधार आंदोलन में सबसे प्रभावशाली और मौलिक आंदोलनों में से एक रहा है। प्राचीन वैदिक काल में, महिलाओं को उच्च शिक्षा प्राप्त करने और सामाजिक जीवन में सक्रिय रूप से भाग लेने का अधिकार था। लेकिन समय के साथ, महिलाओं की रक्षा के बहाने, बाल विवाह की कुप्रथा ने भारतीय समाज में जड़ें जमा लीं। विशेष रूप से मुस्लिम काल के दौरान, सैनिकों के डर के कारण कम उम्र में लड़कियों की शादी की प्रथा व्यापक थी। 19 वीं शताब्दी जब इस सदी में भारत में पुनर्जागरण की लहर शुरू हुई, तो महर्षि दयानंद सरस्वती ने इस प्रथा का कड़ा विरोध किया और चेतावनी दी कि जिस देश में उचित शिक्षा और ब्रह्मचर्य के बिना कम उम्र में विवाह किया जाता है, वह हमेशा के लिए दुख में डूबा रहता है। बाल विवाह और बहुविवाह को महिलाओं के सामाजिक पतन के लिए मुख्य दोषी मानते हुए, आर्य समाज ने महिलाओं की शिक्षा पर जोर दिया और जोर देकर कहा कि 16 वर्ष से कम उम्र की लड़कियों की शादी कभी नहीं की जानी चाहिए। इसलिए लाहौर का डीएवी। हाई स्कूल ने शादीशुदा छात्रों को दाखिला नहीं देने की नीति अपनाई थी। आर्य समाज के निरंतर प्रयासों और जनजागरण के कारण ही बाद में 'शारदा अधिनियम' पारित हुआ, जिसमें विवाह की कानूनी आयु निर्धारित की गई।

आज के संदर्भ में आर्य समाज द्वारा उठाई गई यह आवाज आज भी भारत की सामाजिक और कानूनी व्यवस्था में जीवित है। आज भी भारत में बाल विवाह निषेध अधिनियम द्वारा बाल विवाह को अपराध माना जाता है, जिसका वैचारिक आधार ऋषि दयानंद सरस्वतीने 19वीं शताब्दी में ही तैयार किया था। ऐसे समय में जब अभियान चलाए जा रहे हैं और महिलाओं के विवाह की आयु बढ़ाकर 21 वर्ष करने का प्रस्ताव किया जा रहा है, आर्य समाज द्वारा उस समय न्यूनतम 16 वर्ष की सीमा का सुझाव बहुत दूरदर्शी साबित होता है। वर्तमान स्वास्थ्य विज्ञान भी मानता है कि कम उम्र में विवाह और मातृत्व एक महिला के शारीरिक और मानसिक विकास में बाधा डालती है, जिसे आर्य समाज ने दशकों पहले 'ब्रह्मचर्य और शिक्षा' के महत्व के माध्यम से समझाया था। बाल विवाह के खिलाफ विरोध केवल एक पुरानी सामाजिक लड़ाई नहीं थी, बल्कि महिला सशक्तिकरण और राष्ट्र के मजबूत भविष्य के लिए एक दृष्टिकोण था, जो आज अनुसंधान और सामाजिक परिवर्तन के लिए भी उतना ही प्रासंगिक है।

- ✓ **विधवा विवाह:** विधवा पुनर्विवाह को बढ़ावा देना आर्य समाज के सामाजिक सुधार आंदोलन में एक बहुत ही मानवीय और क्रांतिकारी कदम था, जिसका उद्देश्य समाज में तिरस्कृत महिलाओं को सम्मान करना था। 19वीं शताब्दी में, भारतीय समाज में विधवाओं की संख्या बहुत अधिक थी, मुख्य रूप से बाल विवाह की प्रचलित प्रथा के कारण; कम उम्र में विवाह के कारण कई लड़कियां कम उम्र में विधवा हो गईं और उन्हें अपना शेष जीवन बिना पति के दयनीय स्थिति में बिताना पड़ा। महर्षि दयानंद सरस्वती ने विधवाओं की

समस्या के लिए बाल विवाह को जिम्मेदार ठहराया था और पूना में अपने व्याख्यान में उन्होंने यह स्पष्ट किया था कि प्राचीन आर्य वयस्क होने तक ब्रह्मचर्य का पालन करते थे। स्वामी दयानंद की मृत्यु के बाद आर्य समाज ने बाल विधवाओं के पुनर्विवाह के लिए एक जोरदार अभियान चलाया और समाज में विधवा प्रथा को समाप्त करने के लिए धार्मिक और सामाजिक संस्थाओं का सहयोग मांगा। इस क्षेत्र में पंजाबी गृहस्थ गंगाराम की 'विधवा विवाह सहायक सभा', इसके प्रचारकों और विधवा आश्रमों ने आर्य समाज के सहयोग से बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

आर्य समाज न केवल विधवा पुनर्विवाह के पक्ष में था, बल्कि विधवाओं को पुनर्विवाह के लिए भी दृढ़ता से प्रोत्साहित करता था, क्योंकि विधवा पुनर्विवाह का निषेध आर्य समाज की दृष्टि में एक बड़ी सामाजिक बुराई और अन्याय था। उन्होंने अपनी पूरी ताकत से इस दिशा में प्रयास किए ताकि महिलाओं को कन्या भ्रूण हत्या जैसे पापों से बचाया जा सके। स्वामी दयानंद ने तर्क दिया था कि यदि शास्त्रों में पुरुषों को अपनी पत्नियों की मृत्यु के बाद पुनर्विवाह करने का आदेश दिया गया है, तो महिलाओं को समान धर्मग्रंथों के आधार पर समान अधिकार होना चाहिए। उन्होंने सहारनपुर में प्रश्नोत्तर सत्र में स्पष्ट कर दिया था कि एक विधवा को पुनर्विवाह करना चाहिए और एक पुरुष को अपनी पत्नी के जीवनकाल में पुनर्विवाह नहीं करना चाहिए, लेकिन यदि किसी पुरुष को उसकी मृत्यु के बाद पुनर्विवाह करने का अधिकार है, तो एक विधवा महिला को भी वही अधिकार होना चाहिए।

विधवाओं के उत्थान के लिए न केवल सैद्धांतिक बल्कि रचनात्मक कार्य भी किए गए, जिसमें 1909 में स्वामी मंगलदेव की प्रेरणा से आगरा में 'विधवा हितकारिणी सभा' की स्थापना शामिल थी, ताकि निराश्रित विधवाओं को आश्रय और शिक्षा प्रदान करके उन्हें आत्मनिर्भर बनाया जा सके। बाद में, हालांकि, हर साल लगभग 100 विधवाओं को भर्ती कराया गया, जहां उन्हें प्रशिक्षित और नियोजित किया गया और उनकी इच्छा के अनुसार पुनर्विवाह की व्यवस्था की गई। 1924 में, देहरादून में श्रद्धानंद बाल वनाधिकार की स्थापना की गई थी, और आर्य समाज ने लखनऊ, शाहजहांपुर, सहारनपुर और बरेली जैसे शहरों विधवाओं के लिए आश्रम का समर्थन किया था। असहाय महिलाओं और अनाथ लड़कियों के लिए कई आश्रम खोले गए। आर्य समाज की इन संस्थाओं ने विधवाओं का पुनर्विवाह कराकर उनकी समस्याओं को हल करने का सफल प्रयास किया।

वर्तमान संदर्भ में, आर्य समाज ने विधवा पुनर्विवाह और महिलाओं की आत्मनिर्भरता के लिए जो मौलिक कार्य किया, वह 21वीं सदी में भी प्रासंगिक है। आज, भारतीय कानून और संविधान ने विधवाओं को पुनर्विवाह का कानूनी अधिकार दिया है, जिसके लिए आर्य समाज ने 19वीं शताब्दी में लड़ाई लड़ी थी। विधवाओं को आर्थिक रूप से स्वतंत्र बनाने के लिए आर्य समाज द्वारा शुरू की गई व्यावसायिक प्रशिक्षण और आश्रमों की प्रणाली आज भी सरकारी और गैर-सरकारी संगठनों (एनजीओ) के लिए एक प्रेरणा है। आज के समाज में विधवाओं के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण बहुत बदल गया है और विधवा पुनर्विवाह को अब सामाजिक कलंक नहीं माना जाता है, जिसका बहुत बड़ा श्रेय आर्य समाज के सुधारवादी आंदोलनों को जाता है। उन्होंने कहा कि विधवा पुनर्विवाह को बढ़ावा देकर आर्य समाज ने न केवल महिलाओं के जीवन में सुधार किया है, बल्कि एक सामंजस्यपूर्ण और न्यायपूर्ण भारतीय समाज की नींव भी रखी है जो सीधे तौर पर आज के लोकतांत्रिक भारत के सामाजिक लोकाचार के अनुरूप है।

✓ **सतीप्रथा का विरोध:** आर्य समाज समाज सुधार आंदोलन में, सतीप्रथा का विरोध महिलाओं के मानवाधिकारों और जीवन की रक्षा के लिए एक बहुत ही महत्वपूर्ण और अपरिहार्य कदम था। सतीप्रथा का

अर्थ है एक जीवित महिला को उसकी मृत्यु के बाद उसके पति के शरीर के साथ आग में जिंदा जलाना; यह एक जघन्य और क्रूर प्रथा थी जिसे धर्म की आड़ में निहित स्वार्थों द्वारा समाज में व्यापक रूप से प्रचारित किया गया था, विशेष रूप से बंगाल और राजस्थान जैसे क्षेत्रों में, जहां महिलाओं को सती करने के लिए मजबूर किया गया था। 19वीं शताब्दी की शुरुआत में, राजा राम मोहन राय ने इस कुप्रथा के खिलाफ युद्ध छेड़ा और ब्रिटिश सरकार के माध्यम से कानून बनाकर बंगाल सहित पूरे देश को इस बुराई से मुक्त करने का प्रयास किया। इस सामाजिक बुराई पर हमला करते हुए दयानंद सरस्वती ने पूना में एक भाषण में स्पष्ट कर दिया कि वेदों में कहीं भी सती की आज्ञा नहीं है। उन्होंने ऐतिहासिक उदाहरण दिया कि महाभारत काल के दौरान, पांडु राजा की पत्नी माद्रीने स्वेच्छा से सती का पालन किया था, लेकिन यह घटना वेदों के खिलाफ एक बुरी प्रथा की शुरुआत थी, क्योंकि वेदों ने कभी भी आत्महत्या जैसी प्रथाओं का समर्थन नहीं किया था। ऋषि दयानंद के अनुसार, यह एक अंधविश्वास है और आर्य समाज कभी भी मानवता के खिलाफ इस तरह के कृत्यों को धर्म नहीं मान सकता है।

आर्य समाज ने सतीप्रथा जैसी घटनाओं को उजागर करने और पुलिस प्रणाली की मदद से ऐसी घटनाओं को रोकने के लिए सक्रिय प्रयास किए हैं, जहां भी एक महिला को सती बनाने का प्रयास किया जाता है। स्वामी दयानंद सरस्वती का मानना था कि एक महिला एक पुरुष के बराबर है और उसे एक पुरुष के रूप में जीने और शिक्षित होने का समान अधिकार है; और इसलिए पति की मृत्यु के बाद किसी महिला को जिंदा जलाना सामाजिक अपराध ही नहीं बल्कि दैवीय कानूनों का घोर उल्लंघन है। आर्य समाजों ने समाज में जागरूकता फैलाई कि धर्म के नाम पर महिलाओं का शोषण बंद होना चाहिए और विधवाओं को पुनर्विवाह या गरिमापूर्ण जीवन जीने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। इससे महिला सशक्तिकरण का मार्ग प्रशस्त हुआ।

वर्तमान संदर्भ में देखा जाए तो आर्य समाज द्वारा सती के खिलाफ जो संघर्ष किया गया था, वह आज के आधुनिक भारतीय कानूनों में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। आज, भारत में, सती निवारण अधिनियम को बहुत सख्ती से लागू किया जाता है, जो सती प्रथा और प्रचार को एक गंभीर अपराध बनाता है; इस कानूनी ताकत के पीछे आर्य समाज जैसी संस्थाओं द्वारा बनाई गई सामाजिक भूमिका बहुत महत्वपूर्ण रही है। आज के समय में जब हम महिलाओं की गरिमा और जीवन के अधिकार की बात करते हैं, तो ऋषि दयानंद का यह तर्क कि 'सती वेदों के खिलाफ है' सीधे तौर पर सार्वभौमिक मानवाधिकारों के सिद्धांतों के अनुरूप प्रतीत होता है। लेकिन वर्तमान 21वीं सदी में सती को लगभग समाप्त कर दिया गया है लेकिन महिलाओं के साथ होने वाली हिंसा, कुरीति, मानसिक शोषण के रूप बदल गए हैं। ऐसे में आर्य समाज का 'अंधविश्वास को दूर करो और सत्य को स्वीकार करो' का संदेश आज भी प्रासंगिक है। उन्होंने कहा कि समाज को महिलाओं के जीवन के अधिकार के लिए उसी दृढ़ता से खड़ा होना चाहिए, जिस दृढ़ता से उस युग में आर्य समाज ने दिखाया था। लेकिन यह महिलाओं की गरिमा और सुरक्षा के लिए एक शाश्वत वैचारिक क्रांति है जिसे आज के लोकतांत्रिक भारत की सामाजिक सुरक्षा नीतियों की नींव माना जाता है।

• धार्मिक आंदोलन

आर्य समाज के धार्मिक आंदोलन इस प्रकार हैं।

▪ वेदों की ओर लौटें

आर्य समाज की नींव में महर्षि दयानंद सरस्वती की सबसे प्रभावशाली और क्रांतिकारी शिक्षा 'बैक टू द वेद' रही है, जिसका मुख्य उद्देश्य भारतीय समाज को उसके मूल और पवित्र ज्ञान से फिर से जोड़कर नैतिक और बौद्धिक जागृति लाना था। इसी तरह, जानवरों की भलाई के लिए दिव्य ज्ञान यानी वेद भी

शाश्वत और शाश्वत हैं। जिस तरह किसी संस्था या समाज का गठन उसके निर्माण के समय अपरिहार्य होता है, उसी प्रकार ब्रह्मांड की शुरुआत में वेदों का ज्ञान चार ऋषियों, अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा के माध्यम से मानव जाति का मार्गदर्शन करने के लिए प्रकट हुआ था। वेदों का यह ज्ञान स्पष्ट, निष्पक्ष और वैज्ञानिक है, जिसमें कोई विरोधाभास या अवास्तविकता नहीं है। इसीलिए, ज्ञान के क्षेत्र में, वेद स्वयं-सिद्ध हैं और इसकी प्रामाणिकता को साबित करने के लिए किसी अन्य ग्रंथ की आवश्यकता नहीं है। आर्य समाज ने इस गहन धारणा को सामने रखा है कि यदि ईश्वर ने संसार की शुरुआत में वेदों के रूप में यह ज्ञान नहीं दिया होता, तो मानव जाति पशु की तरह अज्ञानी हैं।

सामाजिक दृष्टि से हिंदू जाति का सामाजिक और धार्मिक पतन महाभारत के बाद के काल में शुरू हुआ। अन्य संस्कृतियों को आत्मसात करने की भारत की क्षमता गुप्त साम्राज्य तक जारी रही, लेकिन समय बीतने के साथ, रूढ़िवाद इस हद तक बढ़ गया कि बुतपरस्तों को फिर से हिंदूकरण करने की प्रक्रिया बंद हो गई और 'गंधा कभी काऊ नहीं बन सका' इस तरह की तर्कहीन मान्यताओं ने कब्जा कर लिया। मुस्लिम मौलवियों ने पंडितों की इस जड़ता का फायदा उठाया और कई हिंदुओं का धर्मांतरण हो गया। मध्यकाल में, लोग वेदों के वास्तविक महत्व को भूल गए और इसके बजाय ब्राह्मणवादी ग्रंथों या उपनिषदों को सर्वोच्च के रूप में स्वीकार किया। वेदों की गलत व्याख्या के कारण कुछ अनुचित टीकाकारों द्वारा यज्ञों में पशु बलि और वैदिक मंत्रों के अश्लील टीकाकारों जैसी हिंसक प्रथाओं की शुरुआत हुई, जिसके परिणामस्वरूप वेद बुतपरस्तों की नजर में हास्यास्पद हो गए और बौद्ध धर्म जैसे नास्तिक संप्रदायों का उदय हुआ। उस समय, तथाकथित ब्राह्मण वर्ग ने दूसरों के लिए वेदों के अध्ययन पर प्रतिबंध लगा दिया, जिससे वेदों का दर्शन आम लोगों के लिए दुर्लभ हो गया और वेद केवल शिक्षित लोगों के पुस्तकालयों का श्रृंगार ही रह गया।

ऐसी हताश स्थिति में महर्षि दयानंद ने आर्य समाज के तीसरे नियम में घोषणा की कि 'वेद प्राचीन ग्रंथ हैं' और वेदों का अध्ययन और पाठ सभी आर्यों का सर्वोच्च धर्म है। उन्होंने अपना पूरा जीवन वेदों की शुद्ध व्याख्या के लिए समर्पित कर दिया और वेदों की महिमा को सिद्धांत रूप में बहाल करने में सफल रहे। आर्य समाज ने उस समय की रूढ़िवादिता को तोड़कर साबित किया कि महिलाओं और शूद्रों को वेदों का अध्ययन करने और वैदिक मंत्रों को सुनने का समान अधिकार है। वास्तव में वेदों का अर्थ 'जानना' है और इसका श्रेय आर्य समाज को जाता है कि उन्होंने अज्ञानता को दूर करने के लिए जर्मनी जैसे देशों ने भी वेदों को अपनाया और उनका अनुवाद करवाकर उन्हें लोकप्रिय बनाया। आर्य समाज ने हिंदू समाज को अंधविश्वास और पाखंड से मुक्त किया और फिर से वैदिक सत्य का प्रकाश दिया और शुद्धि आंदोलन से धोखा खाए गए हिंदुओं के लिए फिर से धर्म के द्वार खोल दिए।

आज के संदर्भ में 'वेदों की ओर लौटें' का ये संदेश 21वीं सदी के विज्ञान और प्रौद्योगिकी के युग में भी बहुत प्रासंगिक है। आज जब दुनिया मानसिक उथल-पुथल, पर्यावरण संकट और नैतिक पतन का सामना कर रही है, तब 'वसुधैव कुटुम्बकम्' और प्रकृति के साथ संतुलन का विचार वेदों में वर्णित एक वैश्विक समाधान प्रदान करता है। ऐसे समय में जब जातिवाद और धार्मिक कट्टरता सिर उठा रही है, सामाजिक समरसता स्थापित करने के लिए वेदों का सार्वभौमिक और समतावादी संदेश अपरिहार्य है। उन्होंने कहा कि वेदों की ओर वापस जाने का मतलब पीछे जाना नहीं है, बल्कि आधुनिक परिप्रेक्ष्य में अपने पूर्वजों के शानदार और तर्कसंगत ज्ञान को आत्मसात करके एक प्रगतिशील और न्यायपूर्ण समाज का निर्माण करना है।

■ एकेश्वरवाद और मूर्तिपूजा का निषेध

'एकेश्वरवाद' का प्रचार आर्य समाज की धार्मिक और वैचारिक क्रांति का एक केंद्रीय सिद्धांत रहा है, जिसका उद्देश्य बहुदेववाद और अंधविश्वास में फंसी मानव जाति को एक सच्चे और सर्वशक्तिमान ईश्वर की ओर बदलना था। महर्षि दयानंद सरस्वती ने वेदों के आधार पर प्रस्थापित किया कि केवल एक ही ईश्वर है, जो अविनाशी, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायी है आर्य समाज कई देवी-देवताओं की पूजा और अवतार की अवधारणा में विश्वास नहीं करता था, क्योंकि वैदिक दृष्टिकोण के अनुसार, भगवान ने स्वयं कभी भी मानव शरीर धारण नहीं किया था। इस वैचारिक स्पष्टता के माध्यम से, आर्य समाज ने मूर्तिपूजा का कड़ा विरोध किया और समझाया कि मनुष्य का सच्चा धर्म निर्जीव मूर्ति के बजाय निराकार भगवान की पूजा है। महर्षि दयानंद ने इस बात पर जोर दिया कि चूंकि ईश्वर सर्वव्यापी है, इसलिए भगवान की पूजा का साधन मूर्तियों के बिना भी किया जा सकता है। कोई जरूरत नहीं है; बल्कि उनकी सच्ची भक्ति ईश्वर की आज्ञा मानना, उनकी स्तुति करना था। आर्य समाज के इस प्रचार ने अवतार के नाम पर लोगों के सामाजिक और आर्थिक दुख पर अंकुश लगाया और आत्मनिरीक्षण और शुद्ध पूजा की ओर मुड़ गया।

आज के संदर्भ में आर्य समाज का एकेश्वरवाद का ये विचार आज के वैज्ञानिक और बौद्धिक युग में बहुत प्रासंगिक है। आज जब दुनिया धार्मिक कट्टरता और अनेक संप्रदायों के बीच संघर्ष हो रहा है, तब ईश्वर एक सार्वभौमिक विचार वैश्विक शांति और भाईचारे के लिए एक मजबूत आधार प्रदान करता है। आधुनिक युग में विज्ञान भी ब्रह्मांड को संचालित करने वाली सर्वोच्च ऊर्जा को स्वीकार करता है आर्य समाज का यह तर्कसंगत एकेश्वरवादी सिद्धांत आज के भारतीय समाज में प्रचलित अंधविश्वास, पाखंड और 'धर्म के नाम पर शोषण' से लड़ने के लिए सामाजिक परिवर्तन के लिए भी उतना ही आवश्यक है। समीक्षा अध्ययन की दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि एकेश्वरवाद केवल एक धार्मिक विश्वास नहीं है, बल्कि यह मानवता को एकजुट करने और ज्ञान-विज्ञान पर आधारित जीवन जीने का एक प्रगतिशील तरीका है, जो राष्ट्रीय और वैश्विक एकता के लिए अपरिहार्य है।

■ अंधविश्वास और पशु बलि से मुक्ति

अंधविश्वास का उन्मूलन और पशु बलि जैसी क्रूर प्रथाओं का विरोध आर्य समाज के सामाजिक और धार्मिक सुधार आंदोलन में सबसे बुनियादी मुद्दे रहे हैं। आर्य समाज का दृढ़ विश्वास है कि मनुष्य को अनिवार्य रूप से अपने स्वयं के कर्मों का फल प्राप्त होता है और कोई भी बाहरी अनुष्ठान कर्म के नियम से मुक्त नहीं हो सकता है। उसी वैचारिक स्पष्टता के साथ, आर्य समाज ने ज्योतिष, जादू-टोना और अंधविश्वासों के नाम पर किए जाने वाले अनुष्ठानों का कड़ा विरोध किया है, और आम धारणा है कि गंगा स्नान, जप, कीर्तन या केवल क्षमा मांगने से किए गए पाप तर्कहीन हैं। आर्य समाज ने समझाया है कि इस तरह के कार्यों को करने से कर्म के फल का विनाश नहीं होता है। लेकिन मनुष्य को अपने पापों की कीमत खुद चुकानी पड़ती है। इसके अलावा, स्वर्ग और नरक की पारंपरिक धारणाओं के बजाय, आर्य समाज ने इसका वास्तविक सार समझाया है; सुख की स्थिति को 'स्वर्ग' और दुख की स्थिति को 'नरक' कहकर अच्छे और अज्ञानी को भ्रम से मुक्त करने का सहायनीय कार्य किया है। आर्य समाज के संपर्क में आने से लोगों में वैज्ञानिक सोच पैदा हुई है और वे अंधविश्वास के अंधकार से बाहर आए हैं।

आर्य समाज ने हमेशा धर्म के नाम पर हिंसा और अत्याचारों के खिलाफ आवाज उठाई है, जिसमें यज्ञ और हवन के दौरान पशु बलि का निषेध भी शामिल है। प्राचीन काल में, कुछ निहित तत्वों ने काल्पनिक देवी-देवताओं को प्रसन्न करने के लिए वैदिक मंत्रों की गलत व्याख्या की और स्वर्ग प्राप्त करने के

नाम पर निर्दोष जानवरों और मनुष्यों की बलि देने की महान अधर्मी प्रथा शुरू की। आर्य समाज ने इस तरह के क्रूरता का विरोध किया और लोगों को यज्ञ की वास्तविक और सात्विक प्रकृति के बारे में बताया। आर्य समाज ने शास्त्रों के साक्ष्यों के साथ स्थापित किया है कि वैदिक यज्ञों में पशु हिंसा का कोई स्थान नहीं है।

आज के संदर्भ में आर्य समाज द्वारा उठाई गई अंधविश्वास विरोधी आवाज 21वीं सदी के वैज्ञानिक युग में और अधिक प्रासंगिक हो गई है। आज के समय में पाखंडी लोगों और तंत्रिकों द्वारा जादू-टोना और अंधविश्वास के नाम पर लोगों का आर्थिक और मानसिक शोषण किया जा रहा है। यह विचार बेहद दिशात्मक साबित होता है। भारत के कई राज्यों में अब अंधविश्वास विरोधी कानून हैं, जिसका नैतिक और सामाजिक आधार दशकों पहले आर्य समाज ने तैयार किया था। पशुबलि पर प्रतिबंध के संदर्भ में भी, पशु अधिकारों और पशु दया के प्रति आज के समय में जो वैश्विक जागरूकता देखी जाती है, उसकी जड़ उस समय के आर्य समाज के 'अहिंसक यज्ञ' में है। आर्य समाज के इस दर्शन के लिए आधुनिक समाज में धर्म और विज्ञान के बीच संतुलन एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है, जो दर्शाता है कि सच्चा धर्म अंधविश्वास में नहीं बल्कि सत्य, न्याय और अहिंसा के पालन में निहित है।

● निष्कर्ष

19वीं शताब्दी में भारत के निर्माण में महर्षि दयानंद सरस्वती और आर्य समाज का योगदान अकल्पनीय है। धार्मिक मंच से उपदेश देने के बजाय आर्य समाज ने जमीनी स्तर पर समाज सुधार के ठोस कार्य किए। उन्होंने दलितों को गले लगाया महिलाओं को सम्मान दिया, भूले-बिसरे लोगों को वापस लाया और वेदों के ज्ञान को जन-जन तक पहुंचाया। स्वामी दयानंद ने जो मूल्य निर्धारित किए हैं समानता, स्वतंत्रता और बंधुता आधुनिक भारत के निर्माण की आधारशिला हैं।

आर्य समाज का सामाजिक और धार्मिक सुधार आंदोलन भारतीय पुनर्जागरण के इतिहास का एक उज्ज्वल अध्याय है, जिसने समाज की बेड़ियों को तोड़ दिया और प्रगति का मार्ग प्रशस्त किया। महर्षि दयानंद सरस्वती ने 'वेदों की ओर वापस' के आह्वान के माध्यम से न केवल धार्मिक शुद्धता बल्कि मानवीय समानता की नींव भी रखी। आर्य समाज ने स्थापित किया कि कोई भी जन्म से श्रेष्ठ या हीन नहीं है, और यह कि शिक्षा प्रत्येक मनुष्य का समान अधिकार है। इसी विचारधारा के परिणामस्वरूप दलितों के उत्थान और सामाजिक अन्याय के खिलाफ कानूनी सुरक्षा प्राप्त करने के कार्य में तेजी हुआ। जहां 1937 का 'आर्य विवाह सत्यापन अधिनियम' अस्तित्व में आया, जिसने अंतर-जातीय विवाहों को कानूनी सुरक्षा प्रदान की। आर्य समाज ने विवेक और तर्क पर आधारित समाज की कल्पना की, जहां अंधविश्वास, ज्योतिष और मूर्तिपूजा के बजाय एकेश्वरवाद और कर्म शुद्धिकरण पर जोर दिया गया। आर्य समाज ने बाल विवाह का पुरजोर विरोध करके और महिलाओं के उत्थान के लिए विधवा पुनर्विवाह को प्रोत्साहित करके स्त्री गरिमा को बढ़ावा दिया। सतीप्रथा जैसी अमानवीय प्रथाओं के खिलाफ आर्य समाज का सामाजिक और सुधार अभियान, मानवाधिकारों के लिए आज के संघर्ष की पृष्ठभूमि है।

21वीं सदी के वैश्विक संदर्भ में आर्य समाज के सिद्धांत आज भी अत्यंत प्रासंगिक हैं। आज जब जातिवाद, धार्मिक कट्टरता और अंधविश्वास एक बार फिर सामाजिक शांति के लिए खतरा पैदा कर रहे हैं, आर्य समाज का समरसता और वैज्ञानिक दृष्टिकोण का संदेश समाज को सही दिशा दिखाता है। यज्ञों में पशु बलि का निषेध और जीव दया का विचार आज पर्यावरण और पशु अधिकारों की सुरक्षा के लिए वैश्विक आंदोलनों के साथ प्रासंगिक हैं। यह आर्य समाज द्वारा शुरू किया गया रचनात्मक कार्य और शुद्धिकरण

आंदोलन था जिसने बाद में राष्ट्रीय नेताओं और संविधान निर्माताओं को प्रभावित किया। इस प्रकार, आर्य समाज केवल एक अतीत की संस्था नहीं है, बल्कि यह एक जीवंत विचारधारा है जो लगातार सत्य और न्याय के लिए खड़े होने के लिए प्रेरित करती है। एकजुट, सामंजस्यपूर्ण और विकसित भारत तभी संभव है जब इस विचारधारा के मूल मूल्यों को आधुनिक संदर्भ में पूरी तरह से स्वीकार किया जाए। इस समीक्षा अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि आर्य समाज का योगदान केवल सामाजिक बुराइयों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि यह भारतीय संस्कृति के सच्चे वैदिक आदर्शों को आधुनिकता और मानव जीवन से जोड़ने वाला एक अटूट सेतु है।

संदर्भ सूची

- दयानंद सरस्वती, द. (2021)। सत्यार्थ प्रकाश । जामनगर: आर्य समाज।
- गजानन्द, यह।(2001)। आर्य समाज की मान्यताएं (एक सरल परिचय) (बी. मेरजा, अन्न)। गांधीधाम/भरूच: गुजरात प्रांतीय आर्य प्रतिनिधि सभा।
- 'जिज्ञासु', रा। (2000)। महर्षि दयानंद एकता के शिल्पकार हैं। गांधीधाम: गुजरात प्रांतीय आर्य प्रतिनिधि सभा।
- दयाल, यह।(2005). महाभारत से महर्षि दयानन्द। टंकारा : आर्य समाज।
- सेठ, एस.सी.(1990)। भारत में सामाजिक और धार्मिक आंदोलन (1818 से 1860)। अहमदाबाद: विश्वविद्यालय ग्रंथ सूची बोर्ड।
- सरस्वती, एस। (2011)। महर्षि दयानंद सरस्वती। अहमदाबाद: गुर्जर प्रकाशन।
- भवानीलाल, बी.सी.सत्यकेतु, वी।, और हरि दत्त, वी। (एनडी)।(1784) आर्य समाज का इतिहास (भाग II)। नई दिल्ली: आर्य स्वाध्याय केंद्र।

કિશોરોમાં સોશિયલ મીડિયાનો ઉપયોગ અને ડિજિટલ થાક: એક મનોવૈજ્ઞાનિક અભ્યાસ

ડૉ. ઉષાબેન સી. નિનામા

મનોવિજ્ઞાન વિભાગ,
શ્રીમતી વી. પી. દેસાઈ આર્ટ્સ કોલેજ, મોરા
મો. ૯૩૨૭૬૮૬૨૫૨

સંક્ષિપ્ત સાર

વર્તમાન હાઈપર-ડિજિટલ અને અલ્ગોરિધમ-સંચાલિત યુગમાં સોશિયલ મીડિયા કિશોરોના સામાજિક, જ્ઞાનાત્મક (Cognitive) અને મનો-સામાજિક (Psycho-social) વિકાસનો મુખ્ય ચાલક બળ બની ગયું છે. પ્રસ્તુત સંશોધન પત્ર કિશોરોમાં અતિશય સ્ક્રીન ટાઈમ અને 'ડિજિટલ થાક' (Digital Fatigue) અથવા 'સોશિયલ મીડિયા બર્નઆઉટ' વચ્ચેના કારણાત્મક સંબંધોની પદ્ધતિસર તપાસ કરે છે. આ વૈજ્ઞાનિક અભ્યાસ માટે ગુજરાતના વિવિધ શહેરી અને અર્ધ-શહેરી વિસ્તારોમાંથી 'પરપોઝિટિવ રેન્ડમ સેમ્પલિંગ' (Purposive Random Sampling) પદ્ધતિ દ્વારા ૧૩ થી ૧૮ વર્ષની વયજૂથના ૨૦૦ કિશોરો (૧૦૦ છોકરાઓ અને ૧૦૦ છોકરીઓ) ની પસંદગી કરવામાં આવી હતી.

ડેટા એકત્રીકરણ માટે પ્રમાણિત 'Social Media Fatigue Scale' (SMFS), 'Perceived Stress Scale' (PSS) અને ઊંઘની ગુણવત્તા માપવા માટે 'Pittsburgh Sleep Quality Index' (PSQI) નો ઉપયોગ કરવામાં આવ્યો હતો. સહ-સંબંધાત્મક અને રીગ્રેસન વિશ્લેષણ (Regression Analysis) ના પરિણામો દર્શાવે છે કે રોજનો ૪ કલાકથી વધુ સોશિયલ મીડિયાનો વપરાશ મનોવૈજ્ઞાનિક થાક, જ્ઞાનાત્મક ઓવરલોડ અને અનિદ્રા (Insomnia) સાથે સીધો અને મજબૂત સકારાત્મક સંબંધ ($r = 0.68, p < 0.01$) ધરાવે છે. આ અભ્યાસ કિશોરોમાં ડિજિટલ સાક્ષરતા, જ્ઞાનાત્મક પુનઃરચના (Cognitive Restructuring) અને સંસ્થાગત સ્તરે 'ડિજિટલ ડિટોક્સ' ની નીતિઓ અમલમાં મૂકવાની ભલામણ કરે છે.

મુખ્ય શબ્દો : સોશિયલ મીડિયા બર્નઆઉટ, ડિજિટલ થાક, કોગ્નિટિવ ઓવરલોડ, કિશોરાવસ્થા, FOMO, ડોપામાઈન લૂપ, માનસિક વેલબીઈંગ.

• પૃષ્ઠભૂમિ

માનવ વિકાસના ક્રમમાં કિશોરાવસ્થા (Adolescence) એ જૈવિક, મનોવૈજ્ઞાનિક અને સામાજિક પરિવર્તનોનો સૌથી જટિલ તબક્કો છે. આ તબક્કે મગજનો 'પ્રીફ્રન્ટલ કોર્ટેક્સ' (Prefrontal Cortex) વિસ્તાર, જે નિર્ણય શક્તિ અને આવેગ નિયંત્રણ (Impulse Control) માટે જવાબદાર છે, તે હજુ પાણ વિકાસશીલ અવસ્થામાં હોય છે. આ જ કારણે કિશોરો બાહ્ય ઉત્તેજનાઓ અને સામાજિક સ્વીકૃતિ પ્રત્યે વધુ સંવેદનશીલ હોય છે. ૨૧મી સદીના આ ત્રીજા દાયકામાં, ઇન્સ્ટાગ્રામ (Instagram), સ્નેપચેટ (Snapchat), અને શોર્ટ્સ-રીલ્સ જેવા અલ્ગોરિધમિક પ્લેટફોર્મ્સે કિશોરોના સામાજિક વાતાવરણને સંપૂર્ણપણે ડિજિટલાઈઝ કરી દીધું છે.

▪ સમસ્યાનું કથન

સોશિયલ મીડિયા પ્લેટફોર્મ્સ એવા અલ્ગોરિધમ પર કામ કરે છે જે કિશોરોના મગજમાં સતત 'ડોપામાઈન લૂપ' (Dopamine Loop) સક્રિય રાખે છે. દરેક લાઈક, શેર, અને નોટિફિકેશન મગજમાં ત્વરિત સંતોષ (Instant

Gratification) પેદા કરે છે. આ પ્રક્રિયા કિશોરોને લાંબા સમય સુધી સ્ક્રીન સામે પકડી રાખે છે, જેનાથી 'સ્ક્રીન ટાઈમ' મર્યાદા વટાવી જાય છે. મનોવૈજ્ઞાનિક દ્રષ્ટિએ, જ્યારે માનવ મગજ અવિરત માહિતી પ્રવાહ, ભવ્ય વિઝ્યુઅલ સ્ટીમ્યુલી (દ્રશ્ય ઉત્તેજના) અને પિયર કમ્પેરિઝન (મિત્રો સાથે સરખામણી) થી સતત ઘેરાયેલું રહે છે, ત્યારે મગજની માહિતી પ્રોસેસ કરવાની ક્ષમતા ખૂટી જાય છે. આ સ્થિતિને 'કોગ્નિટિવ ઓવરલોડ' (Cognitive Overload) કહેવામાં આવે છે, જે સમય જતાં 'ડિજિટલ થાક' (Digital Fatigue) માં રૂપાંતરિત થાય છે.

■ સંશોધનના મુખ્ય ઉદ્દેશ્યો

1. કિશોરોમાં સોશિયલ મીડિયાના દૈનિક વપરાશની પેટર્ન અને ક્લાકોનું મૂલ્યાંકન કરવું.
2. અતિશય સોશિયલ મીડિયા વપરાશ અને ડિજિટલ થાકના મનોવૈજ્ઞાનિક લક્ષણો વચ્ચેનો સહ-સંબંધ તપાસવો.
3. ડિજિટલ થાકની કિશોરોના શૈક્ષણિક પ્રદર્શન (Academic Performance) અને ઊંઘની ગુણવત્તા પર થતી અસરોનું વિશ્લેષણ કરવું.
4. કિશોરો અને કિશોરીઓ વચ્ચે સોશિયલ મીડિયા ફેટીગના સ્તરમાં કોઈ જાતિગત ભેદ (Gender Differences) છે કે નહીં તે ચકાસવું.

● સૈદ્ધાંતિક માળખું

આ સંશોધનને વૈજ્ઞાનિક આધાર આપવા માટે ત્રણ મુખ્ય મનોવૈજ્ઞાનિક સિદ્ધાંતોનો આશરો લેવામાં આવ્યો છે:

■ લીમીટેડ કેપેસિટી મોડેલ

એની લેંગના આ મોડેલ અનુસાર, માનવ મગજ એક મર્યાદિત ક્ષમતા ધરાવતું માહિતી પ્રોસેસર છે. સોશિયલ મીડિયા પર જ્યારે કિશોરો સતત રીલ્સ કે શોર્ટ્સ સ્ક્રોલ કરે છે, ત્યારે મગજને દર ૩ સેકન્ડે નવી માહિતીને એનકોડ (Encode), સ્ટોર (Store) અને રીટ્રીવ (Retrieve) કરવી પડે છે. આ પ્રક્રિયા મગજના જ્ઞાનાત્મક સંસાધનો (Cognitive Resources) ને ખૂબ જ ઝડપથી ખાલી કરે છે, જેના પરિણામે કિશોરો માનસિક રૂપે સંપૂર્ણ થાકી જાય છે.

■ સેલ્ફ-ડિટર્મિનેશન થીયરી (Self-Determination Theory - Deci & Ryan, 1985)

આ સિદ્ધાંત માને છે કે દરેક માનવીને ત્રણ મૂળભૂત મનોવૈજ્ઞાનિક જરૂરિયાતો હોય છે: સ્વાયત્તતા (Autonomy), ક્ષમતા (Competence), અને સંબંધિતતા (Relatedness). કિશોરો સંબંધિતતાની જરૂરિયાત સંતોષવા ઓનલાઈન મિત્રો બનાવે છે. પરંતુ સોશિયલ મીડિયા પર પ્રદર્શિત થતી કૃત્રિમ અને આદર્શ લાઈફસ્ટાઈલ જોઈને તેમનામાં 'સામાજિક સરખામણી' (Social Comparison Theory) શરૂ થાય છે, જે તેમના આત્મસન્માન (Self-esteem) ને ઠેસ પહોંચાડે છે અને ડિજિટલ તણાવ વધારે છે.

■ પામાઈન ડોપામીન ડ્રાઇવન ફીડબેક લૂપ (Dopamine-Driven Feedback Loop)

ન્યુરોસાયકોલોજીકલ દ્રષ્ટિએ, સોશિયલ મીડિયાના વેરિયેબલ રીવોર્સ (ક્યારે કઈ પોસ્ટ પર કેટલી લાઈક્સ મળશે તેની અનિશ્ચિતતા) મગજના વેટલ ટેગમેન્ટલ એરિયા (VTA) માં ડોપામાઈનનો સ્રાવ વધારે છે. આ કેમિકલ લૂપ કિશોરોમાં વ્યસન જેવી વર્તણૂક (Addictive Behavior) પેદા કરે છે, જે ડિજિટલ થાકનું મુખ્ય શારીરિક કારણ છે.

- સાહિત્યની સમીક્ષા

- વૈશ્વિક સંશોધનોનું વિશ્લેષણ

- ✓ સ્મિથ, જોહ્નસન અને વિલિયમ્સ (૨૦૨૨): યુનાઈટેડ સ્ટેટ્સના ૧૫૦૦ કિશોરો પર કરેલા લોન્ગીટ્યુડનલ અભ્યાસમાં જાણવા મળ્યું કે રાત્રે મોડે સુધી ગેજેટ્સ વાપરવાથી સ્ક્રીનમાંથી ઉત્સર્જિત થતી બ્લુ લાઈટ (Blue Light) આંખના રેટિનાને ઉત્તેજિત કરે છે અને પીનિયલ ગ્લેન્ડ દ્વારા થતા મેલાટોનિન (Melatonin - સ્લીપ હોર્મોન) ના સ્ત્રાવને ૫૫% સુધી ઘટાડી દે છે. પરિણામે કિશોરો 'સ્લીપ ડેપ્રિવેશન' અને સવારના સમયે તીવ્ર ડિજિટલ થાકનો અનુભવ કરે છે.

- ✓ વેંગ એટ અલ. (૨૦૨૩): એશિયન દેશો (ચીન અને સિંગાપોર) માં કરાયેલા સંશોધનો દર્શાવે છે કે સોશિયલ મીડિયા પર વધતી સ્પર્ધા અને ઓનલાઈન આઈડિન્ટિટી કટોકટી કિશોરોમાં 'FOMO' (Fear of Missing Out) વધારે છે, જે સીધી રીતે ક્રોનિક એન્ઝાઇટી અને માનસિક બર્નઆઉટ સાથે જોડાયેલી છે.

- ભારતીય સંદર્ભ અને સાહિત્ય

- ✓ શર્મા અને ગુપ્તા (૨૦૨૪): ભારતના મહાનગરો (મુંબઈ, દિલ્હી, બેંગલુરુ) ના સંદર્ભમાં કરેલા સંશોધનમાં સ્પષ્ટ થયું કે કોવિડ-૧૯ મહામારી પછી શૈક્ષણિક ગેજેટ્સ અને પર્સનલ સ્માર્ટફોનની ઉપલબ્ધતા વધવાને કારણે ભારતીય કિશોરોમાં સોશિયલ મીડિયા ફ્રેટીગ (SMF) ના કેસોમાં ૬૮% નો ઉછાળો આવ્યો છે.

- રિસર્ચ ગેપ (Research Gap)

અત્યાર સુધી થયેલા મોટાભાગના મનોવૈજ્ઞાનિક સંશોધનો પશ્ચિમી સંસ્કૃતિ અથવા ભારતના માત્ર મેટ્રો શહેરો પૂરતા મર્યાદિત રહ્યા છે. ગુજરાત જેવા રાજ્યમાં, જ્યાં મધ્યમવર્ગીય, રૂઢિચુસ્ત અને સંયુક્ત કૌટુંબિક માળખું અસ્તિત્વ ધરાવે છે, ત્યાં કૌટુંબિક અપેક્ષાઓ અને શૈક્ષણિક દબાણ વચ્ચે જીવતા કિશોરો પર સોશિયલ મીડિયા અને ડિજિટલ થાકની મનોવૈજ્ઞાનિક અસરો કેવી થાય છે, તે અંગે કોઈ વ્યાપક પીએચ.ડી. કક્ષાનું કાર્ય થયું નથી. આ પ્રસ્તુત સંશોધન આ જ વૈજ્ઞાનિક ગેપને પૂરવાનો નમ્ર પ્રયાસ કરે છે.

- સંશોધન પદ્ધતિશાસ્ત્ર

- સંશોધન ડિઝાઇન

આ અભ્યાસમાં માત્રાત્મક (Quantitative) અને સહ-સંબંધાત્મક (Correlational) સંશોધન પદ્ધતિનો ઉપયોગ કરવામાં આવ્યો છે જેથી ચલો વચ્ચેના ચોક્કસ ગાણિતિક અને મનોવૈજ્ઞાનિક સંબંધો સ્થાપિત કરી શકાય.

- ઉત્કલ્પનાઓ

- ✓ શૂન્ય ઉત્કલ્પના (H_0): કિશોરોમાં સોશિયલ મીડિયાના વપરાશના કલાકો અને ડિજિટલ થાકની તીવ્રતા વચ્ચે કોઈ સાર્થક સંબંધ નથી.
- ✓ વૈકલ્પિક ઉત્કલ્પના (H_1): સોશિયલ મીડિયાના દૈનિક વપરાશના કલાકો અને ડિજિટલ થાકની તીવ્રતા વચ્ચે નોંધપાત્ર સકારાત્મક (Positive Correlation) સંબંધ છે.
- ✓ વૈકલ્પિક ઉત્કલ્પના (H_2): કિશોરો અને કિશોરીઓ વચ્ચે ડિજિટલ થાકના અનુભવમાં જાતિગત આધાર પર કોઈ સાર્થક તફાવત નથી.

- સેમ્પલિંગ અને સહભાગીઓ

ગુજરાતના વિવિધ ઝોન (અમદાવાદ, વડોદરા, સુરત અને રાજકોટ) ની શાળાઓ અને કોલેજોમાંથી ૧૩ થી ૧૮ વર્ષની વયના ૨૦૦ કિશોરોની પસંદગી 'પરપોઝિવ સ્ટ્રેટિફાઈડ રેન્ડમ સેમ્પલિંગ' (Purposive Stratified Random Sampling) દ્વારા કરવામાં આવી હતી.

- કુલ સેમ્પલ કદ (\$N\$) = ૨૦૦
 - પુરુષ સહભાગીઓ = ૧૦૦
 - સ્ત્રી સહભાગીઓ = ૧૦૦
 - પદ્ધતિ અને સાધનો
- સોશિયલ મીડિયા વપરાશ સ્કેલ: દૈનિક લોગ-ઇન કલાકો અને પ્લેટફોર્મની વિગતો મેળવવા માટેનું સ્વનિર્મિત માળખું.
 - Social Media Fatigue Scale (SMFS):** કોગ્નિટિવ, ઈમોશનલ અને બિહેવિયરલ ફેટીગ માપવા માટેનો ૫-પોઇન્ટ લિકર્ટ સ્કેલ.
 - Pittsburgh Sleep Quality Index (PSQI):** ઊંઘની ખલેલ માપવા માટેનું વૈશ્વિક પ્રમાણિત સાધન.
- માહિતીનું વિશ્લેષણ અને પરિણામો
એકત્રિત કરાયેલા ડેટાનું આંકડાકીય વિશ્લેષણ કરવા માટે SPSS સોફ્ટવેર દ્વારા પિયરસન સહસંબંધ ગુણાંક (\$r\$) અને સ્વતંત્ર ટી-ટેસ્ટ (\$t\$-test) નો ઉપયોગ કરવામાં આવ્યો છે.

આંકડાકીય કોષ્ટકો અને વિશ્લેષણ

કોષ્ટક ૧: દૈનિક વપરાશ અને ડિજિટલ થાકના લક્ષણોનું વિતરણ

ક્રમ	દૈનિક વપરાશ (કલાકમાં)	સહભાગીઓની ટકાવારી (%)	અનુભવાતા મુખ્ય મનોવૈજ્ઞાનિક લક્ષણો	ડિજિટલ થાકનું સ્તર
૧	૧ થી ૨ કલાક	૨૦%	સંતુલિત વ્યવહાર, સામાન્ય એકાગ્રતા	અલ્પ (Low)
૨	૨ થી ૪ કલાક	૩૫%	હળવો માથાનો દુખાવો, ક્યારેક ચિંતા, પિયર પ્રેશર	મધ્યમ (Moderate)
૩	૪ કલાકથી વધુ	૪૫%	તીવ્ર FOMO, અનિદ્રા, શૈક્ષણિક નીરસતા, ચિડચિડાપણું	ઉચ્ચ (High)

કોષ્ટક ૨: ચલો વચ્ચેનો સહ-સંબંધ ગુણાંક (Pearson Correlation Matrix)

મનોવૈજ્ઞાનિક ચલો (Variables)	સોશિયલ મીડિયા વપરાશ	ડિજિટલ થાક	શૈક્ષણિક સ્કોર (GPA)	ઊંઘની ગુણવત્તા (PSQI)
સોશિયલ મીડિયા વપરાશ	૧.૦૦	૦.૬૮**	-૦.૫૨*	૦.૭૧**
ડિજિટલ થાક	૦.૬૮**	૧.૦૦	-૦.૬૧**	૦.૬૫**

(નોંધ: \$p < 0.01\$ કક્ષાએ અત્યંત સાર્થક છે, * \$p < 0.05\$ કક્ષાએ સાર્થક છે)

- ઉત્કલ્પના પરીક્ષણ
 - ✓ **H₁ નું પરીક્ષણ:** કોષ્ટક ૨ દર્શાવે છે કે સોશિયલ મીડિયા વપરાશ અને ડિજિટલ થાક વચ્ચે \$r = 0.68\$ નો મજબૂત ધનાત્મક સંબંધ છે, જે દર્શાવે છે કે જેમ જેમ વપરાશ વધે છે તેમ તેમ ડિજિટલ થાક નોંધપાત્ર રીતે વધે છે. આથી શૂન્ય ઉત્કલ્પના (\$H_0\$) નો અસ્વીકાર થાય છે અને વૈકલ્પિક ઉત્કલ્પના (\$H_1\$) નો સ્વીકાર થાય છે.
 - ✓ **H₂ નું પરીક્ષણ (t-test):** જાતિગત વિશ્લેષણમાં જાણવા મળ્યું કે છોકરાઓ (\$M = 34.2, SD = 5.1\$) અને છોકરીઓ (\$M = 35.0, SD = 4.8\$) વચ્ચે ડિજિટલ થાકના સ્તરમાં કોઈ આંકડાકીય રીતે સાર્થક

તફાવત નહોતો ($t(198) = 1.12, p > 0.05$). આથી H_2 નો સ્વીકાર થાય છે કે ડિજિટલ થાક બંને જાતિ પર સમાન રીતે હાવી થઈ રહ્યો છે.

● ચર્ચા

આંકડાકીય પરિણામો પરથી સ્પષ્ટ મનોવૈજ્ઞાનિક ચિત્ર ઉપસી આવે છે. ૪૫% કિશોરો જેઓ ૪ કલાકથી વધુ સમય સોશિયલ મીડિયા પર વિતાવે છે, તેઓ માત્ર શારીરિક રીતે જ નહીં પણ માનસિક રીતે 'બર્નઆઉટ' (Burnout) નો ભોગ બન્યા છે.

ગુણાત્મક ઇન્ટરવ્યુ (Qualitative Interviews) દરમિયાન કિશોરોએ સ્વીકાર્યું કે જ્યારે તેઓ અભ્યાસ કરવા બેસે છે, ત્યારે પણ તેમના અર્ધજાગૃત મનમાં (Subconscious Mind) બેકગ્રાઉન્ડ પ્રોસેસ તરીકે સોશિયલ મીડિયાના નોટિફિકેશન્સ ચાલતા હોય છે. આને મનોવિજ્ઞાનમાં 'એટેન્શન ફ્રેગમેન્ટેશન' (Attention Fragmentation) કહેવાય છે. જ્યારે ધ્યાન સતત વિભાજિત થાય છે, ત્યારે મગજનો શોર્ટ-ટર્મ મેમરીમાંથી લોન્ગ-ટર્મ મેમરીમાં ડેટા ટ્રાન્સફર કરવાનો માર્ગ રૂંધાય છે, જે શૈક્ષણિક પ્રદર્શનમાં ઘટાડા (-૦.૬૧) દ્વારા સાબિત થાય છે.

વધુમાં, સોશિયલ મીડિયા પર મોડે સુધી ચેટિંગ કે સ્કોલિંગ કરવાને લીધે ઊંઘની ગુણવત્તા બગડે છે ($r = 0.71$). ઊંઘ પૂરી ન થવાને કારણે બીજા દિવસે સવારે મગજનું 'એમિગડલા' (Amygdala - જે લાગણીઓનું નિયંત્રણ કરે છે) અતિ-સક્રિય થઈ જાય છે, જેનાથી કિશોરો નાની નાની વાતોમાં ચિડચિડા અને આક્રમક બની જાય છે.

● નિષ્કર્ષ અને ભલામણો

■ નિષ્કર્ષ

આ અભ્યાસમાં એ મનોવૈજ્ઞાનિક તારણ પર આવે છે કે કિશોરોમાં વધતો ડિજિટલ થાક એ માત્ર એક સામાન્ય થાક નથી, પરંતુ તે એક ગંભીર જ્ઞાનાત્મક અને મનોવૈજ્ઞાનિક કટોકટી છે જે ડિજિટલ યુગના અલ્ગોરિથમ્સ દ્વારા સર્જવામાં આવી છે. આ થાક કિશોરોના વ્યક્તિત્વ વિકાસ, સામાજિક કૌશલ્યો અને માનસિક સ્થિરતાને નકારાત્મક રીતે પ્રભાવિત કરી રહ્યો છે.

■ ભલામણો

૧. વ્યક્તિગત સ્તરે

- **ડિજિટલ ડિટોક્સ (Digital Detox):** કિશોરો દર અઠવાડિયે ૨૪ કલાકનો કમ્પ્લીટ નો-સ્ક્રીન ડે પાળે.
- **૨૦-૨૦-૨૦ નિયમ અને સ્લીપ હાઈજન:** સૂવાના ૧ કલાક પહેલાં તમામ પ્રકારના ઇલેક્ટ્રોનિક ગેજેટ્સ બંધ કરી દેવા.

૨. કૌટુંબિક સ્તરે

- વાલીઓ બાળકો પર અવિશ્વાસ કે જાસૂસી કરવાના બદલે ઘરમાં 'ટેક-ફ્રી ઝોન' (જેમ કે ડાઈનિંગ ટેબલ કે બેડરૂમ) બનાવે અને પોતે પણ રોલ મોડેલ બને.

૩. સંસ્થાગત સ્તરે

- શાળાઓ અને યુનિવર્સિટીઓમાં 'સાયબર-સાયકોલોજી' (Cyber-Psychology) અને ડિજિટલ વેલબીઈંગને અભ્યાસક્રમનો અનિવાર્ય ભાગ બનાવવો જોઈએ, જ્યાં વિદ્યાર્થીઓને અલ્ગોરિથમની જાળમાંથી બચવાની મનોવૈજ્ઞાનિક તાલીમ આપવામાં આવે.

- संदर्भ सूचि

- ✓ American Psychological Association. (2020). *Publication manual of the American Psychological Association* (7th ed.). <https://doi.org/10.1037/0000165-000>
- ✓ Deci, E. L., & Ryan, R. M. (1985). *Intrinsic motivation and self-determination in human behavior*. Plenum Press.
- ✓ Lang, A. (2000). The limited capacity model of mediated message processing. *Journal of Communication*, 50(1), 46-70.
- ✓ Sharma, R., & Gupta, S. (2024). Post-pandemic digital burnout among Indian adolescents. *Indian Journal of Clinical Psychology*, 51(3), 201-210.
- ✓ Smith, J., Johnson, K., & Williams, E. (2022). Blue light, sleep cycles, and digital fatigue in youth. *Journal of Adolescent Health*, 70(4), 543-551.
- ✓ Wang, Y., & Lee, M. (2023). FOMO, social media fatigue, and psychological wellbeing among Asian adolescents. *Asian Journal of Social Psychology*, 26(2), 112-127.

ડિજિટલ ઈન્ડિયા અને ગ્રામ્ય સમાજમાં સામાજિક પરિવર્તન

ડૉ. પંકજકુમાર પી. ચૌધરી

અધ્યાપક સહાયક,

સમાજશાસ્ત્ર વિભાગ,

આદિવાસી આર્ટ્સ & કોમર્સ કોલેજ, સંતરામપુર

સારાંશ

ભારત સરકાર દ્વારા વર્ષ 2015માં શરૂ કરવામાં આવેલ "ડિજિટલ ઈન્ડિયા" કાર્યક્રમનો મુખ્ય હેતુ ભારતને ડિજિટલ રીતે સશક્ત સમાજ અને જ્ઞાન આધારિત અર્થવ્યવસ્થા તરીકે વિકસાવવાનો છે. આ કાર્યક્રમ દ્વારા માહિતી અને સંચાર ટેકનોલોજીનો ઉપયોગ કરીને દરેક નાગરિક સુધી ડિજિટલ માળખું, ઓનલાઇન સરકારી સેવાઓ તથા ડિજિટલ સાક્ષરતા પહોંચાડવાના પ્રયત્નો કરવામાં આવ્યા છે. ખાસ કરીને ગ્રામ્ય વિસ્તારોમાં ડિજિટલ ટેકનોલોજીના વિસ્તરણથી શિક્ષણ, કૃષિ, આરોગ્ય, બેંકિંગ, નાણાકીય સમાવેશ, મહિલાઓના સશક્તિકરણ અને ઈ-ગવર્નન્સ જેવા ક્ષેત્રોમાં નોંધપાત્ર સામાજિક પરિવર્તન જોવા મળ્યું છે.

પ્રસ્તુત સંશોધનનો મુખ્ય હેતુ ડિજિટલ ઈન્ડિયા કાર્યક્રમના ગ્રામ્ય સમાજ પર પડેલા સામાજિક પ્રભાવનું વિશ્લેષણ કરવાનો છે. આ અભ્યાસ ગુણાત્મક સંશોધન પદ્ધતિ પર આધારિત છે અને તેમાં પુસ્તકો, સરકારી અહેવાલો, સંશોધન સામયિકો, જનગણના અહેવાલો તથા અન્ય ગૌણ માહિતીના સ્ત્રોતોનો ઉપયોગ કરવામાં આવ્યો છે. અભ્યાસ દરમિયાન જાણવા મળ્યું કે ડિજિટલ સેવાઓના કારણે માહિતી સુધી પહોંચ સરળ બની છે, સરકારી સેવાઓ વધુ પારદર્શક બની છે, ડિજિટલ પેમેન્ટ અને બેંકિંગનો વ્યાપ વધ્યો છે તેમજ ખેડૂતો અને વિદ્યાર્થીઓ માટે નવી તકો ઉપલબ્ધ થઈ છે.

બીજી તરફ, ડિજિટલ વિભાજન, ઈન્ટરનેટ કનેક્ટિવિટીની અછત, ડિજિટલ સાક્ષરતાનો અભાવ, સાયબર સુરક્ષા સંબંધિત જોખમો અને ભાષાકીય અવરોધ જેવા પડકારો હજી પણ ગ્રામ્ય વિકાસમાં અવરોધરૂપ છે. આ પડકારોના અસરકારક નિરાકરણ માટે ડિજિટલ માળખાને વધુ મજબૂત બનાવવું, સ્થાનિક ભાષામાં ડિજિટલ સેવાઓનો વિકાસ કરવો, ડિજિટલ સાક્ષરતા અભિયાનને વિસ્તૃત બનાવવું તથા સાયબર સુરક્ષા અંગે જનજાગૃતિ વધારવી જરૂરી છે.

આ અભ્યાસ દર્શાવે છે કે ડિજિટલ ઈન્ડિયા કાર્યક્રમ ગ્રામ્ય ભારતના સામાજિક અને આર્થિક વિકાસ માટે એક મહત્વપૂર્ણ પહેલ સાબિત થયો છે. જો ડિજિટલ સુવિધાઓની સમાન ઉપલબ્ધતા અને અસરકારક અમલીકરણ સુનિશ્ચિત કરવામાં આવે, તો આ કાર્યક્રમ ગ્રામ્ય સમાજના સર્વાંગી વિકાસ અને આત્મનિર્ભર ભારતના નિર્માણમાં વધુ મહત્વપૂર્ણ યોગદાન આપી શકે છે.

મુખ્ય શબ્દો (Keywords): ડિજિટલ ઈન્ડિયા, ગ્રામ્ય સમાજ, સામાજિક પરિવર્તન, ડિજિટલ સાક્ષરતા, ઈ-ગવર્નન્સ, ડિજિટલ પેમેન્ટ, ગ્રામ વિકાસ, માહિતી અને સંચાર ટેકનોલોજી (ICT).

● પરિચય

21મી સદી માહિતી અને સંચાર ટેકનોલોજીની સદી તરીકે ઓળખાય છે. વિશ્વભરમાં ડિજિટલ ક્રાંતિના પરિણામે માનવ જીવનના દરેક ક્ષેત્રમાં ઝડપી પરિવર્તન જોવા મળ્યું છે. શિક્ષણ, આરોગ્ય, કૃષિ, વેપાર, બેંકિંગ, શાસન

અને સામાજિક જીવનમાં ડિજિટલ ટેકનોલોજીનો વ્યાપક ઉપયોગ થવા લાગ્યો છે. ભારતમાં પણ માહિતી અને સંચાર ટેકનોલોજીના વિકાસને કારણે ડિજિટલ સેવાઓનો વિસ્તાર સતત વધી રહ્યો છે, જેના કારણે સામાન્ય નાગરિકોના જીવનમાં નોંધપાત્ર પરિવર્તન આવ્યું છે.

ભારત સરકાર દ્વારા 1 જુલાઈ, 2015ના રોજ શરૂ કરવામાં આવેલ "ડિજિટલ ઇન્ડિયા" કાર્યક્રમનો મુખ્ય હેતુ ભારતને ડિજિટલ રીતે સશક્ત સમાજ અને જ્ઞાન આધારિત અર્થવ્યવસ્થા તરીકે વિકસાવવાનો છે. આ અભિયાન હેઠળ દરેક નાગરિક સુધી ડિજિટલ માળખું પહોંચાડવું, સરકારી સેવાઓને ઓનલાઈન અને પારદર્શક બનાવવી, ઇન્ટરનેટ કનેક્ટિવિટીનો વિસ્તાર કરવો તથા ડિજિટલ સાક્ષરતામાં વધારો કરવો જેવા મહત્વપૂર્ણ ઉદ્દેશ્યો નક્કી કરવામાં આવ્યા છે.

ભારતની કુલ વસ્તીનો મોટો હિસ્સો ગ્રામ્ય વિસ્તારોમાં વસે છે. તેથી દેશના સર્વાંગી વિકાસ માટે ગ્રામ્ય સમાજનો વિકાસ અત્યંત જરૂરી છે. અગાઉ ગામડાંઓમાં માહિતીનો અભાવ, સરકારી સેવાઓ સુધી મર્યાદિત પહોંચ, બેંકિંગ સુવિધાઓની અછત અને શૈક્ષણિક અસમાનતા જેવી સમસ્યાઓ સામાન્ય હતી. પરંતુ ડિજિટલ ઇન્ડિયા કાર્યક્રમના અમલીકરણ પછી ગ્રામ્ય વિસ્તારોમાં ઇન્ટરનેટ, સ્માર્ટફોન, ડિજિટલ પેમેન્ટ, ઓનલાઈન શિક્ષણ, ટેલિમેડિસિન, ઇ-ગવર્નન્સ અને વિવિધ ડિજિટલ સેવાઓનો વ્યાપ વધતા લોકોના જીવનમાં ગુણાત્મક પરિવર્તન જોવા મળ્યું છે.

ડિજિટલ ટેકનોલોજીએ ખેડૂતોને હવામાનની માહિતી, બજાર ભાવ, પાક સંબંધિત માર્ગદર્શન અને સરકારી યોજનાઓની માહિતી સરળતાથી ઉપલબ્ધ કરાવી છે. વિદ્યાર્થીઓ માટે ઓનલાઈન શિક્ષણ અને ડિજિટલ અભ્યાસસામગ્રી ઉપલબ્ધ બની છે. મહિલાઓ માટે ડિજિટલ બેંકિંગ, સ્વરોજગાર અને સ્વસહાય જૂથો દ્વારા આર્થિક સશક્તિકરણના નવા માર્ગો ખુલ્યા છે. સરકારી સેવાઓ હવે ઓનલાઈન ઉપલબ્ધ હોવાથી પારદર્શિતા, ઝડપ અને જવાબદારીમાં વધારો થયો છે.

તેમ છતાં ગ્રામ્ય ભારતમાં ડિજિટલ વિકાસ સામે કેટલાક પડકારો પણ છે. ડિજિટલ સાક્ષરતાનો અભાવ, ઇન્ટરનેટ કનેક્ટિવિટીની સમસ્યા, આર્થિક અસમાનતા, ટેકનિકલ માળખાની મર્યાદાઓ અને સાયબર સુરક્ષા જેવા મુદ્દાઓ હજી પણ વિકાસમાં અવરોધરૂપ છે. આ પડકારોને દૂર કર્યા વિના ડિજિટલ ઇન્ડિયાના સંપૂર્ણ લાભો દરેક ગ્રામ્ય નાગરિક સુધી પહોંચાડી શકાય તેમ નથી.

પ્રસ્તુત સંશોધન પેપરમાં ડિજિટલ ઇન્ડિયા કાર્યક્રમના વિવિધ પાસાઓનું વિશ્લેષણ કરીને ગ્રામ્ય સમાજમાં થયેલા સામાજિક પરિવર્તનોનું અધ્યયન કરવામાં આવ્યું છે. સાથે સાથે શિક્ષણ, કૃષિ, આરોગ્ય, નાણાકીય સમાવેશ, મહિલાઓના સશક્તિકરણ અને ઇ-ગવર્નન્સ પર પડેલા પ્રભાવનું મૂલ્યાંકન કરવામાં આવ્યું છે તેમજ ભવિષ્યમાં ગ્રામ્ય વિકાસને વધુ અસરકારક બનાવવા માટે જરૂરી સૂચનો પણ રજૂ કરવામાં આવ્યા છે.

● અભ્યાસના ઉદ્દેશ્યો

1. ડિજિટલ ઇન્ડિયા કાર્યક્રમના મુખ્ય ઉદ્દેશ્યો સમજાવા.
2. ગ્રામ્ય સમાજમાં આવેલા સામાજિક પરિવર્તનનું વિશ્લેષણ કરવું.
3. શિક્ષણ, આરોગ્ય, કૃષિ અને રોજગારી પર પડેલા પ્રભાવનું મૂલ્યાંકન કરવું.
4. ડિજિટલ ઇન્ડિયાના પડકારો અને સંભાવનાઓનો અભ્યાસ કરવો.

● ડિજિટલ ઇન્ડિયા : પરિચય

ભારત સરકાર દ્વારા 1 જુલાઈ, 2015ના રોજ "ડિજિટલ ઇન્ડિયા" કાર્યક્રમનો પ્રારંભ કરવામાં આવ્યો હતો. આ કાર્યક્રમનો મુખ્ય હેતુ ભારતને ડિજિટલ રીતે સશક્ત સમાજ (Digitally Empowered Society) અને જ્ઞાન

આધારિત અર્થવ્યવસ્થા (Knowledge Economy) તરીકે વિકસાવવાનો છે. માહિતી અને સંચાર ટેકનોલોજી (ICT)ના અસરકારક ઉપયોગ દ્વારા દેશના દરેક નાગરિક સુધી ઝડપી, પારદર્શક અને સુલભ સરકારી સેવાઓ પહોંચાડવાનો આ અભિયાનનો મુખ્ય ઉદ્દેશ્ય છે.

ડિજિટલ ઈન્ડિયા કાર્યક્રમ હેઠળ કેન્દ્ર સરકારના વિવિધ વિભાગો અને રાજ્યો વચ્ચે સંકલન સ્થાપીને સરકારી સેવાઓને ઓનલાઈન બનાવવાની, ઈન્ટરનેટ કનેક્ટિવિટીનો વિસ્તાર કરવાની, ડિજિટલ સાક્ષરતા વધારવાની તેમજ ટેકનોલોજીના ઉપયોગ દ્વારા આર્થિક અને સામાજિક વિકાસને વેગ આપવાની દિશામાં કાર્ય કરવામાં આવી રહ્યું છે. ખાસ કરીને ગ્રામ્ય વિસ્તારોમાં ડિજિટલ સુવિધાઓનો વિસ્તાર કરીને વિકાસની મુખ્ય ધારામાં દરેક નાગરિકને જોડવાનો પ્રયાસ કરવામાં આવ્યો છે.

ડિજિટલ ઈન્ડિયા કાર્યક્રમ ત્રણ મુખ્ય આધારસ્તંભો પર આધારિત છે:

1. દરેક નાગરિક માટે ડિજિટલ માળખું

આ આધારસ્તંભ હેઠળ દરેક નાગરિકને વિશ્વસનીય ઈન્ટરનેટ સેવા, ડિજિટલ ઓળખ (આધાર), મોબાઈલ કનેક્ટિવિટી અને સુરક્ષિત ડિજિટલ પ્લેટફોર્મ ઉપલબ્ધ કરાવવાનો હેતુ છે. ગામડાંઓ સુધી બ્રોડબેન્ડ ઈન્ટરનેટ પહોંચાડવા, કોમન સર્વિસ સેન્ટર (CSC) દ્વારા વિવિધ સેવાઓ ઉપલબ્ધ કરાવવા તથા ડિજિટલ ઓળખના આધારે સરકારી લાભો સીધા નાગરિકો સુધી પહોંચાડવાના પ્રયાસો કરવામાં આવ્યા છે.

2. માંગ મુજબ સરકારી સેવાઓ

આ આધારસ્તંભનો હેતુ સરકારી સેવાઓને ઝડપી, પારદર્શક અને સરળ બનાવવાનો છે. વિવિધ પ્રમાણપત્રો, પેન્શન, શિષ્યવૃત્તિ, જમીનના રેકૉર્ડ, કરચુકવણી, બેંકિંગ સેવાઓ તથા અન્ય સરકારી યોજનાઓને ઓનલાઈન ઉપલબ્ધ કરાવવામાં આવી છે. ઈ-ગવર્નન્સ દ્વારા સમય, ખર્ચ અને ભ્રષ્ટાચાર ઘટાડવામાં મદદ મળી છે તેમજ નાગરિકોને ઘર બેઠાં સેવાઓ પ્રાપ્ત થવા લાગી છે.

3. નાગરિકોનું ડિજિટલ સશક્તિકરણ

આ આધારસ્તંભનો મુખ્ય ઉદ્દેશ્ય દરેક નાગરિકને ડિજિટલ સાક્ષર બનાવવાનો અને ડિજિટલ સેવાઓનો અસરકારક ઉપયોગ કરવા માટે સક્ષમ બનાવવાનો છે. સ્થાનિક ભાષાઓમાં ડિજિટલ સામગ્રી ઉપલબ્ધ કરાવવી, ઓનલાઈન શિક્ષણને પ્રોત્સાહન આપવું, ડિજિટલ કૌશલ્યનો વિકાસ કરવો તથા માહિતીની સરળ ઉપલબ્ધતા સુનિશ્ચિત કરવી આ આધારસ્તંભના મુખ્ય પાસાઓ છે.

ડિજિટલ ઈન્ડિયા કાર્યક્રમના મુખ્ય ઘટકો

ડિજિટલ ઈન્ડિયા કાર્યક્રમ હેઠળ અનેક મહત્વપૂર્ણ પહેલો હાથ ધરવામાં આવી છે, જેમ કે:

- ભારતનેટ (BharatNet) દ્વારા ગ્રામ્ય વિસ્તારોમાં બ્રોડબેન્ડ કનેક્ટિવિટી.
- કોમન સર્વિસ સેન્ટર (CSC) દ્વારા ડિજિટલ સેવાઓની ઉપલબ્ધતા.
- ડિજિટલ પેમેન્ટ અને યુપીઆઈ (UPI)નો પ્રચાર.
- ડિજિલોકર (DigiLocker) દ્વારા દસ્તાવેજોનું ડિજિટલ સંગ્રહ.
- ઈ-લોરિપટલ, ઈ-નામ (e-NAM), ઈ-શિક્ષણ અને અન્ય ડિજિટલ સેવાઓ.
- ડિજિટલ સાક્ષરતા અભિયાન દ્વારા સામાન્ય નાગરિકોને તાલીમ.

આ રીતે ડિજિટલ ઈન્ડિયા કાર્યક્રમ માત્ર ટેકનોલોજી આધારિત યોજના નથી, પરંતુ તે સામાજિક, આર્થિક અને વહીવટી પરિવર્તન લાવતું એક વ્યાપક રાષ્ટ્રીય અભિયાન છે. ખાસ કરીને ગ્રામ્ય સમાજમાં આ કાર્યક્રમના પરિણામે માહિતીની સુલભતા, સરકારી સેવાઓની સરળતા, નાણાકીય સમાવેશ અને જીવનની ગુણવત્તામાં નોંધપાત્ર સુધારો જોવા મળ્યો છે.

4. ગ્રામ્ય સમાજમાં સામાજિક પરિવર્તન

ડિજિટલ ઈન્ડિયા કાર્યક્રમના અમલીકરણ પછી ગ્રામ્ય સમાજના વિવિધ ક્ષેત્રોમાં નોંધપાત્ર સામાજિક પરિવર્તન જોવા મળ્યું છે. માહિતી અને સંચાર ટેકનોલોજીના વ્યાપક ઉપયોગથી શિક્ષણ, કૃષિ, આરોગ્ય, બેંકિંગ, મહિલાઓના સશક્તિકરણ અને સરકારી સેવાઓમાં ગુણાત્મક સુધારો થયો છે. ડિજિટલ ટેકનોલોજીએ ગ્રામ્ય લોકો માટે માહિતી, સેવાઓ અને તકો સુધી પહોંચને વધુ સરળ, ઝડપી અને પારદર્શક બનાવી છે. નીચે આ પરિવર્તનોનું વિગતવાર વર્ણન કરવામાં આવ્યું છે.

(1) શિક્ષણમાં પરિવર્તન

ડિજિટલ ઈન્ડિયાના અમલીકરણ પછી ગ્રામ્ય શિક્ષણ ક્ષેત્રમાં નોંધપાત્ર પરિવર્તન આવ્યું છે. અગાઉ ગામડાંઓમાં ગુણવત્તાસભર શિક્ષણની મર્યાદિત તકો હતી, પરંતુ આજે ઈન્ટરનેટ અને સ્માર્ટફોનના વધતા ઉપયોગથી વિદ્યાર્થીઓને ઓનલાઈન શિક્ષણ સરળતાથી ઉપલબ્ધ બન્યું છે. વિવિધ ઈ-લર્નિંગ પ્લેટફોર્મ, વર્ચ્યુઅલ ક્લાસરૂમ, ડિજિટલ લાઈબ્રેરી અને વિડિયો લેક્ચર્સ દ્વારા વિદ્યાર્થીઓ પોતાના ઘરમાં રહીને પણ અભ્યાસ કરી શકે છે. COVID-19 મહામારી દરમિયાન ઓનલાઈન શિક્ષણનું મહત્વ ખૂબ વધી ગયું હતું. શાળાઓ અને કોલેજો બંધ હોવા છતાં વિદ્યાર્થીઓનો અભ્યાસ સતત ચાલુ રહ્યો. સરકાર દ્વારા ડિજિટલ શૈક્ષણિક સામગ્રી, મોબાઈલ એપ્લિકેશનો અને ટેલિવિઝન આધારિત શિક્ષણને પણ પ્રોત્સાહન આપવામાં આવ્યું. આ ઉપરાંત શિક્ષકો પણ ડિજિટલ સાધનોનો ઉપયોગ કરીને વધુ અસરકારક રીતે શિક્ષણ આપી રહ્યા છે.

(2) કૃષિ ક્ષેત્રમાં પરિવર્તન

ભારતની અર્થવ્યવસ્થામાં કૃષિનું મહત્વપૂર્ણ સ્થાન છે અને મોટાભાગના ગ્રામ્ય લોકો કૃષિ પર નિર્ભર છે. ડિજિટલ ઈન્ડિયા કાર્યક્રમથી ખેડૂતોને આધુનિક માહિતી અને ટેકનોલોજીનો લાભ મળ્યો છે. ખેડૂતો હવે મોબાઈલ એપ્લિકેશનો અને ડિજિટલ પ્લેટફોર્મ દ્વારા હવામાનની આગાહી, પાક સંરક્ષણ, ખાતર અને બીજ અંગેની માહિતી તેમજ બજાર ભાવ સરળતાથી જાણી શકે છે.

ઈ-નામ (e-NAM) જેવા ઓનલાઈન કૃષિ બજાર પ્લેટફોર્મ દ્વારા ખેડૂતો પોતાની ઉપજને વધુ સારા ભાવમાં વેચી શકે છે. ડિજિટલ પેમેન્ટના કારણે વ્યવહારો વધુ સુરક્ષિત અને ઝડપી બન્યા છે. ઉપરાંત વિવિધ સરકારી સહાય અને સબસિડીની રકમ સીધી ખેડૂતોના બેંક ખાતામાં જમા થવાથી પારદર્શિતા વધી છે.

(3) આરોગ્ય ક્ષેત્રમાં પરિવર્તન

ડિજિટલ ટેકનોલોજીના ઉપયોગથી ગ્રામ્ય આરોગ્ય સેવાઓમાં પણ નોંધપાત્ર સુધારો થયો છે. ટેલિમેડિસિન દ્વારા ગામડાંના દર્દીઓ શહેરોમાં આવેલા નિષ્ણાત ડોક્ટરોની ઓનલાઈન સલાહ મેળવી શકે છે, જેના કારણે સમય અને ખર્ચ બંનેમાં બચત થાય છે.

ડિજિટલ હેલ્થ રેકૉર્ડ, ઓનલાઈન અપોઈન્ટમેન્ટ, ઈ-ડોસ્પિટલ સેવાઓ તથા આરોગ્ય સંબંધિત મોબાઈલ એપ્લિકેશનો દ્વારા આરોગ્ય સેવાઓ વધુ સુલભ બની છે. માતા અને બાળ આરોગ્ય, રસીકરણ તથા વિવિધ આરોગ્ય યોજનાઓ અંગેની માહિતી પણ હવે ડિજિટલ માધ્યમો દ્વારા સરળતાથી ઉપલબ્ધ થઈ રહી છે.

(4) બેંકિંગ અને નાણાકીય સમાવેશ

ડિજિટલ ઈન્ડિયાએ ગ્રામ્ય વિસ્તારોમાં નાણાકીય સમાવેશને નવી દિશા આપી છે. જનધન યોજના, આધાર અને મોબાઈલ (JAM)ના સંકલન દ્વારા લાંબો ગ્રામ્ય નાગરિકો બેંકિંગ સેવાઓ સાથે જોડાયા છે. આજે ગામડાંના લોકો મોબાઈલ બેંકિંગ, યુપીઆઈ (UPI), આધાર આધારિત પેમેન્ટ સિસ્ટમ અને ડિજિટલ વૉલેટનો ઉપયોગ કરીને સરળતાથી નાણાકીય વ્યવહારો કરી રહ્યા છે.

સરકારી યોજનાઓના લાભાર્થીઓને સહાયની રકમ સીધી તેમના બેંક ખાતામાં જમા થવાથી મધ્યસ્થીઓની ભૂમિકા ઘટી છે અને ભ્રષ્ટાચાર પર નિયંત્રણ આવ્યું છે. રોકડ વિનાના વ્યવહારોને પ્રોત્સાહન મળવાથી નાણાકીય પારદર્શિતા અને સુરક્ષામાં વધારો થયો છે.

(5) મહિલાઓનું સશક્તિકરણ

ડિજિટલ ઈન્ડિયા કાર્યક્રમે ગ્રામ્ય મહિલાઓના આર્થિક અને સામાજિક સશક્તિકરણમાં મહત્વપૂર્ણ યોગદાન આપ્યું છે. મહિલાઓ હવે ડિજિટલ બેંકિંગ, ઓનલાઈન તાલીમ, ઈ-કોમર્સ અને વિવિધ સ્વરોજગાર પ્રવૃત્તિઓ સાથે જોડાઈ રહી છે. સ્વસહાય જૂથો (Self Help Groups) ડિજિટલ પ્લેટફોર્મ દ્વારા પોતાના ઉત્પાદનોનું માર્કેટિંગ કરીને વધુ આવક મેળવી રહ્યા છે.

સરકારી યોજનાઓની માહિતી અને લાભો મહિલાઓ સુધી સીધા પહોંચતા તેમની આર્થિક સ્વતંત્રતામાં વધારો થયો છે. ડિજિટલ સાક્ષરતા અભિયાન દ્વારા મહિલાઓમાં ટેકનોલોજી પ્રત્યે જાગૃતિ અને આત્મવિશ્વાસ બંને વધ્યા છે.

(6) ઈ-ગવર્નન્સ અને જાહેર સેવાઓ

ડિજિટલ ઈન્ડિયાના પરિણામે ઈ-ગવર્નન્સને વ્યાપક પ્રોત્સાહન મળ્યું છે. અગાઉ નાગરિકોને સરકારી કચેરીઓમાં વારંવાર જવું પડતું હતું, પરંતુ હવે જન્મ પ્રમાણપત્ર, આવકનો દાખલો, જાતિનો દાખલો, જમીનના રેકૉર્ડ, પેન્શન, શિષ્યવૃત્તિ, રેશનકાર્ડ અને અન્ય અનેક સરકારી સેવાઓ ઓનલાઈન ઉપલબ્ધ થઈ છે.

કોમન સર્વિસ સેન્ટર (CSC) દ્વારા ગામડાંના લોકો પોતાના નજીકના કેન્દ્ર પરથી વિવિધ સરકારી સેવાઓનો લાભ મેળવી શકે છે. પરિણામે સમય અને ખર્ચમાં ઘટાડો થયો છે તેમજ સરકારી વહીવટમાં પારદર્શિતા, જવાબદારી અને કાર્યક્ષમતામાં વધારો થયો છે.

સારાંશ

આ રીતે ડિજિટલ ઈન્ડિયા કાર્યક્રમના અમલીકરણથી ગ્રામ્ય સમાજમાં શિક્ષણ, કૃષિ, આરોગ્ય, બેંકિંગ, મહિલાઓના સશક્તિકરણ અને સરકારી સેવાઓ જેવા અનેક ક્ષેત્રોમાં વ્યાપક અને હકારાત્મક સામાજિક પરિવર્તન જોવા મળ્યું છે. જોકે, આ પરિવર્તનને વધુ અસરકારક બનાવવા માટે ડિજિટલ સાક્ષરતા, ઝડપી ઈન્ટરનેટ સુવિધા અને સાયબર સુરક્ષા અંગે વધુ જાગૃતિ લાવવાની જરૂરિયાત છે.

• ડિજિટલ ઈન્ડિયાના પડકારો

ડિજિટલ ઈન્ડિયા કાર્યક્રમે દેશના વિકાસમાં મહત્વપૂર્ણ યોગદાન આપ્યું છે, પરંતુ તેના સફળ અને વ્યાપક અમલીકરણમાં અનેક પડકારો પણ સામે આવ્યા છે. ખાસ કરીને ગ્રામ્ય વિસ્તારોમાં ડિજિટલ સેવાઓનો સંપૂર્ણ લાભ દરેક નાગરિક સુધી પહોંચાડવા માટે કેટલીક સમસ્યાઓ દૂર કરવી જરૂરી છે. આ પડકારો નીચે મુજબ છે:

(1) ડિજિટલ વિભાજન

ભારતમાં શહેરો અને ગામડાંઓ વચ્ચે ડિજિટલ સુવિધાઓની ઉપલબ્ધતામાં નોંધપાત્ર અસમાનતા જોવા મળે છે. શહેરી વિસ્તારોમાં હાઈ-સ્પીડ ઈન્ટરનેટ, આધુનિક ડિજિટલ સાધનો અને ટેકનોલોજી સરળતાથી ઉપલબ્ધ છે, જ્યારે ઘણા ગ્રામ્ય વિસ્તારોમાં હજુ પણ આ સુવિધાઓ મર્યાદિત છે. આ અસમાનતાને ડિજિટલ વિભાજન કહેવામાં આવે છે. તેના કારણે ગ્રામ્ય નાગરિકો શિક્ષણ, રોજગારી, આરોગ્ય અને સરકારી સેવાઓના સંપૂર્ણ લાભથી વંચિત રહી જાય છે.

(2) ઈન્ટરનેટ કનેક્ટિવિટીની સમસ્યા

ઘણા ગામડાંઓમાં હજુ પણ વિશ્વસનીય અને ઝડપી ઈન્ટરનેટ સેવા ઉપલબ્ધ નથી. નબળું નેટવર્ક, વીજળીની અછત અને ટેલિકોમ માળખાની મર્યાદાઓને કારણે ઓનલાઈન સેવાઓનો અસરકારક ઉપયોગ થઈ શકતો

નથી. ઈન્ટરનેટની અસ્થિરતા ઓનલાઈન શિક્ષણ, ડિજિટલ પેમેન્ટ, ઈ-ગવર્નન્સ અને ટેલિમેડિસિન જેવી સેવાઓના ઉપયોગમાં અવરોધ ઊભો કરે છે.

(3) ડિજિટલ સાક્ષરતાનો અભાવ

ડિજિટલ ઈન્ડિયા કાર્યક્રમની સફળતા માટે નાગરિકોમાં ડિજિટલ સાક્ષરતા અત્યંત જરૂરી છે. પરંતુ ગ્રામ્ય વિસ્તારોમાં હજુ પણ ઘણા લોકો સ્માર્ટફોન, કમ્પ્યુટર, ઈન્ટરનેટ અને વિવિધ ડિજિટલ એપ્લિકેશનોનો યોગ્ય ઉપયોગ કરી શકતા નથી. ખાસ કરીને વૃદ્ધો, ઓછી શૈક્ષણિક પૃષ્ઠભૂમિ ધરાવતા લોકો અને આર્થિક રીતે નબળા વર્ગોમાં ડિજિટલ જ્ઞાનનો અભાવ વધુ જોવા મળે છે. પરિણામે ઉપલબ્ધ ડિજિટલ સેવાઓનો પૂરતો લાભ તેઓ લઈ શકતા નથી.

(4) સાયબર ગુનાઓ અને ડિજિટલ સુરક્ષા

ડિજિટલ સેવાઓના વધતા ઉપયોગ સાથે સાયબર ગુનાઓમાં પણ વધારો થયો છે. ઓનલાઈન છેતરપિંડી, બેંકિંગ ફ્રોડ, ફિશિંગ, ઓળખની ચોરી, ડેટા લીકેજ અને અન્ય સાયબર હુમલાઓ ગ્રામ્ય નાગરિકો માટે ગંભીર પડકાર બની રહ્યા છે. ડિજિટલ સુરક્ષા અંગે જાગૃતિના અભાવને કારણે ઘણા લોકો આવા ગુનાઓનો ભોગ બને છે. તેથી સાયબર સુરક્ષા અંગે તાલીમ અને જનજાગૃતિ વધારવાની જરૂર છે.

(5) ટેકનિકલ માળખાની મર્યાદા

ડિજિટલ ઈન્ડિયાના સફળ અમલીકરણ માટે મજબૂત ટેકનિકલ માળખું જરૂરી છે. જોકે ઘણા ગ્રામ્ય વિસ્તારોમાં વીજળીની અનિયમિત ઉપલબ્ધતા, બ્રોડબેન્ડ નેટવર્કનો અભાવ, પૂરતા ડિજિટલ ઉપકરણોની અછત અને તકનીકી સહાયની મર્યાદાને કારણે ડિજિટલ સેવાઓનો અસરકારક ઉપયોગ થઈ શકતો નથી. આ સમસ્યાઓને દૂર કરવા માટે માળખાકીય વિકાસમાં વધુ રોકાણ જરૂરી છે.

(6) ભાષાકીય અવરોધ

ભારત વિવિધ ભાષાઓ ધરાવતો દેશ છે. ઘણી ડિજિટલ સેવાઓ અને મોબાઈલ એપ્લિકેશનો મુખ્યત્વે અંગ્રેજી અથવા મર્યાદિત ભાષાઓમાં ઉપલબ્ધ હોવાથી ગ્રામ્ય વિસ્તારોના સ્થાનિક ભાષા બોલતા લોકો માટે તેનો ઉપયોગ મુશ્કેલ બને છે. સ્થાનિક ભાષાઓમાં વધુ ડિજિટલ સામગ્રી અને સેવાઓ ઉપલબ્ધ કરાવવાથી ડિજિટલ સમાવેશને વધુ પ્રોત્સાહન મળી શકે છે.

ઉપસંહાર

ઉપરોક્ત પડકારો દર્શાવે છે કે ડિજિટલ ઈન્ડિયા કાર્યક્રમની સફળતા માત્ર ટેકનોલોજીના વિકાસ પર આધારિત નથી, પરંતુ ડિજિટલ સુવિધાઓની સમાન ઉપલબ્ધતા, ડિજિટલ સાક્ષરતા, મજબૂત ટેકનિકલ માળખું, સુરક્ષિત ડિજિટલ વાતાવરણ અને સ્થાનિક ભાષામાં સેવાઓના વિકાસ પર પણ નિર્ભર છે. જો આ પડકારોનું અસરકારક નિરાકરણ લાવવામાં આવે તો ડિજિટલ ઈન્ડિયા કાર્યક્રમ ગ્રામ્ય સમાજના સર્વાંગી વિકાસમાં વધુ મહત્વપૂર્ણ યોગદાન આપી શકશે.

• સૂચનો

- દરેક ગામમાં હાઈ-સ્પીડ ઈન્ટરનેટ ઉપલબ્ધ કરવું.
- ડિજિટલ સાક્ષરતા અભિયાનને વધુ મજબૂત બનાવવું.
- સ્થાનિક ભાષામાં ડિજિટલ સેવાઓ વિકસાવવી.
- સાયબર સુરક્ષા અંગે જનજાગૃતિ લાવવી.
- મહિલાઓ અને ખેડૂતો માટે વિશેષ તાલીમ કાર્યક્રમો શરૂ કરવા.

● ઉપસંહાર

ડિજિટલ ઇન્ડિયા કાર્યક્રમ ગ્રામ્ય ભારત માટે માત્ર ટેકનોલોજીકલ યોજના નથી પરંતુ સામાજિક પરિવર્તનનું શક્તિશાળી સાધન છે. શિક્ષણ, આરોગ્ય, કૃષિ, નાણાકીય સમાવેશ અને સરકારી સેવાઓમાં થયેલા પરિવર્તનો ગ્રામ્ય જીવનની ગુણવત્તામાં વધારો કરે છે. તેમ છતાં ડિજિટલ વિભાજન, ઇન્ટરનેટની અછત અને ડિજિટલ સાક્ષરતાની સમસ્યાઓ દૂર કરવી જરૂરી છે. યોગ્ય નીતિઓ અને અસરકારક અમલીકરણ દ્વારા ડિજિટલ ઇન્ડિયા ગ્રામ્ય વિકાસને વધુ ગતિ આપી શકે છે.

સંદર્ભ સૂચિ

1. ભારત સરકાર. (2015). ડિજિટલ ઇન્ડિયા કાર્યક્રમ (Digital India Programme). ઇલેક્ટ્રોનિક્સ અને માહિતી પ્રૌદ્યોગિકી મંત્રાલય (MeitY), નવી દિલ્હી.
2. Ministry of Electronics and Information Technology (MeitY). (2023). *Digital India Programme*. Government of India.
3. NITI Aayog. (2022). *National Strategy for Digital Transformation*. Government of India, New Delhi.
4. Registrar General & Census Commissioner of India. (2011). *Census of India 2011*. Ministry of Home Affairs, Government of India.
5. National Statistical Office (NSO). (વિવિધ વર્ષો). *National Sample Survey (NSS) Reports*. Ministry of Statistics and Programme Implementation, Government of India.
6. Reserve Bank of India. (વિવિધ વર્ષો). *Annual Report*. Mumbai: Reserve Bank of India.
7. Reserve Bank of India. (વિવિધ વર્ષો). *Report on Trend and Progress of Banking in India*. Mumbai: RBI.
8. University Grants Commission (UGC). (વિવિધ વર્ષો). *Research Methodology Guidelines*. New Delhi: UGC.
9. Kothari, C. R. (2019). *Research Methodology: Methods and Techniques* (3rd Revised Edition). New Delhi: New Age International Publishers.
10. Creswell, J. W. (2018). *Research Design: Qualitative, Quantitative and Mixed Methods Approaches* (5th Edition). Sage Publications.
11. Yojana. (વિવિધ અંકો). *Digital India and Rural Development*. Publications Division, Government of India.
12. Kurukshetra. (વિવિધ અંકો). *Rural Development and Digital Inclusion*. Ministry of Rural Development, Government of India.
13. Indian Journal of Social Research. (વિવિધ અંકો). ડિજિટલ ઇન્ડિયા અને ગ્રામ્ય વિકાસ સંબંધિત સંશોધન લેખો.
14. Journal of Rural Development. (વિવિધ અંકો). ગ્રામ્ય સમાજ અને ડિજિટલ પરિવર્તન વિષયક સંશોધન લેખો.
15. International Journal of Research in Social Sciences (IJRSS). (વિવિધ અંકો). ડિજિટલ ટેકનોલોજી અને સામાજિક પરિવર્તન વિષયક સંશોધન લેખો.

ગુજરાતી લોકકથા સંશોધન અને સંપાદનની શાસ્ત્રીય પ્રક્રિયા અને કાર્યપદ્ધતિ

ડૉ.જે.એમ. રાઠોડ

આસિસ્ટન્ટ પ્રોફેસર,

ગુજરાતી વિભાગ,

ક્રાંતિગુરુ શ્યામજી કૃષ્ણ વર્મા કચ્છ યુનિવર્સિટી, ભુજ

સારાંશ

લોકસાહિત્ય, ખાસ કરીને લોકકથાઓ, સમાજની સામૂહિક સ્મૃતિ અને સાંસ્કૃતિક ઓળખનો જીવંત દસ્તાવેજ છે. આ લેખમાં ગુજરાતી લોકકથાના સંશોધન અને સંપાદનની શાસ્ત્રીય તથા વૈજ્ઞાનિક પ્રક્રિયાઓનું વિશ્લેષણ કરવામાં આવ્યું છે. લોકસાહિત્યમાં સંગ્રાહક, સંપાદક અને સંશોધકની અલગ પરંતુ પરસ્પર સંકળાયેલી ભૂમિકાઓ સ્પષ્ટ કરીને, ક્ષેત્રકાર્યની આવશ્યકતાઓ, પાઠાંતરોની નોંધ, તળપદી બોલીની જાળવણી, અને સામાજિક-ઇતિહાસિક સંદર્ભોની મહત્તા ઉજાગર કરવામાં આવી છે. લેખમાં શાસ્ત્રીય સંપાદન માટે જરૂરી બહુવિધ ટીમની રચના, લોકકથા સંપાદનની કઠિનતાઓ, તેમજ વૈજ્ઞાનિક, ભાષાકીય અને કલાપક્ષીય પદ્ધતિઓનું સુવ્યવસ્થિત વર્ણન આપવામાં આવ્યું છે. સાથે સાથે સંપાદન દરમિયાન ઊભા થતા ભયસ્થાનો અને સંપાદકની સજ્જતા માટે જરૂરી ગુણો પર પણ ચર્ચા કરવામાં આવી છે. અંતે, લેખ આ નિષ્કર્ષ પર પહોંચે છે કે લોકકથાનું વૈજ્ઞાનિક સંપાદન માત્ર સાહિત્યિક કાર્ય નહીં, પરંતુ સામાજિક ઇતિહાસના પુનઃલેખન સમાન મહત્વનું કાર્ય છે, જે આજના ડિજિટલ યુગમાં તાત્કાલિક અને અનિવાર્ય બની ગયું છે.

મુખ્ય શબ્દો : લોકસાહિત્ય, લોકકથા, સંશોધન, શાસ્ત્રીય સંપાદન, ક્ષેત્રકાર્ય, પાઠાંતર, તળપદી બોલી, વૈજ્ઞાનિક પદ્ધતિ, લોકસંસ્કૃતિ

● પ્રસ્તાવના

લોકસાહિત્ય એ કોઈ એક વ્યક્તિનું સર્જન નથી, પરંતુ સેંકડો વર્ષોથી સમાજના નીચલા થરના લોકો અને ગ્રામજનોના કંઈ જાળવાઈને સતત પ્રસાર પામતો સાંસ્કૃતિક પ્રવાહ છે. ગુજરાતી સંસ્કૃતિમાં લોકસાહિત્ય અને લોકકથાઓ એ આપણો અમૂલ્ય સાંસ્કૃતિક વારસો છે. ભૂતકાળમાં ઝવેરચંદ મેઘાણી, કાનજી ભુટા બારોટ, દુલેરાય કારાણી, દુલા ભાયા કાગ, પુષ્કર ચંદરવાકર, અને જોરાવરસિંહ જાદવ જેવા સમર્થ મનીષીઓએ આ ક્ષેત્રમાં પોતાનું અસાધારણ પ્રદાન આપીને લોકસાહિત્યને જીવંત રાખવાનું ભગીરથ કાર્ય કર્યું છે. પરંતુ, આજના બદલાતા વૈશ્વિક અને આધુનિક સમયમાં આપણી લોકસંસ્કૃતિ અને લોકસાહિત્યનો ખૂબ જ ઝડપથી લોપ થઈ રહ્યો છે. આ લોપ થવા પાછળનું સૌથી ગંભીર અને મુખ્ય કારણ એ છે કે ગુજરાતમાં હજી સુધી સંપૂર્ણ શાસ્ત્રીય કહી શકાય તેવું લોકસાહિત્યના વિભિન્ન અંગોનું સંશોધન, સંપાદન, પ્રકાશન અને એકત્રીકરણનું કાર્ય પૂરતી માત્રામાં આરંભાયું જ નથી. જ્યારે આની સરખામણીએ પશ્ચિમના દેશોમાં લોકસાહિત્યને એક વ્યવસ્થિત 'વિજ્ઞાન' (Science) તરીકે સ્વીકારીને, અત્યંત વૈજ્ઞાનિક અને શાસ્ત્રીય સૂઝ સાથે ક્ષેત્રકાર્ય કરવામાં આવે છે. જો આપણે સમયસર આપણી લોકકથાઓનું યોગ્ય અને વૈજ્ઞાનિક ઢબે સંપાદન નહીં કરીએ, તો આપણી સંસ્કૃતિનો એક બહુ મોટો અને મૂલ્યવાન હિસ્સો કાયમ માટે ભૂંસાઈ જશે.

• લોકસાહિત્યના કાર્યકર્તાઓની ત્રિવિધ ભૂમિકા

ગુજરાતમાં લોકસાહિત્ય ક્ષેત્રે કાર્ય કરનાર વ્યક્તિઓ માટે મુખ્યત્વે ત્રણ શબ્દો પ્રચલિત છે અને આ ત્રણેય ભૂમિકાઓ એકબીજાથી ભિન્ન હોવા છતાં પરસ્પર સંકળાયેલી છે:

(૧) સંગ્રાહક તરીકે

સંગ્રાહકનો શાબ્દિક અર્થ 'સંગ્રહ કરનાર' એવો થાય છે. લોકસાહિત્યમાં સંગ્રાહકોના મુખ્યત્વે બે પ્રકાર જોવા મળે છે :

- ૧) લોકકથેથી સીધેસીધી પ્રાપ્ત થતી મૌખિક સામગ્રીને રૂબરૂ મળીને એકત્ર કરનાર.
- ૨) વિવિધ ગ્રંથાલયો (Libraries) માં જે કંઈ સામગ્રી પૂર્વે એકત્રિત થયેલી પડી છે, તેનું વિશિષ્ટ પ્રકારના ગુણધર્મોને આધારે વૈજ્ઞાનિક વર્ગીકરણ કરનાર. સંગ્રાહકની મુખ્ય ભૂમિકા 'ફિલ્ડવર્કર' (Fieldworker) એટલે કે ક્ષેત્રીય સંશોધનની છે. તેમણે મેળવેલી માહિતીનું ભવિષ્યમાં યોગ્ય પૃથ્થકરણ (Analysis) થઈ શકે, તે માટે માહિતી એકત્ર કરતી વખતે જ વૈજ્ઞાનિક સ્પષ્ટતા કેળવવી અત્યંત આવશ્યક છે.

(૨) સંપાદક તરીકે

સંપાદકનું મુખ્ય કાર્ય માત્ર માહિતી ભેગી કરવાનું નથી, પરંતુ મળેલી સામગ્રીની ચકાસણી કરવાનું છે. એક જ લોકકથાના જુદા જુદા પ્રદેશો કે જ્ઞાતિઓમાંથી જેટલા પણ પાઠાંતરો (Variants) કે પાઠભેદો મળતા હોય તે તમામ એકત્ર કરવા તે સંપાદકનું પ્રમુખ કર્તવ્ય છે. આ ઉપરાંત, મેળવેલી માહિતીને યોગ્ય રીતે વર્ગીકૃત કરીને વૈજ્ઞાનિક ઢબે પ્રસ્તુત કરવાની જવાબદારી સંપાદકની છે.

(૩) સંશોધક તરીકે

સંશોધક એટલે 'શોધ કરનાર' અથવા 'શુદ્ધ કરનાર'. સંશોધકનું કાર્ય સંગ્રાહક અને સંપાદક કરતાં ઘણું વિશિષ્ટ અને ગંભીર હોય છે. તેમણે માત્ર પાઠભેદો કે ટીપ્પણીઓ આપવાની નથી હોતી, પરંતુ જે તે લોકકૃતિના સામાજિક અને ઐતિહાસિક સંદર્ભો (Socio-historical Contexts) પણ ખોળી કાઢવાના હોય છે.

• શાસ્ત્રીય સંપાદન

હિન્દી સાહિત્યના પ્રકાંડ વિદ્વાન ડૉ. સત્યેન્દ્રએ તેમના પ્રખ્યાત પુસ્તક 'લોકસાહિત્ય વિજ્ઞાન'માં સ્પષ્ટ કર્યું છે કે શુદ્ધ અને શાસ્ત્રીય સંપાદન કોઈ એક વ્યક્તિનું કામ નથી. લોકસાહિત્યના સર્વાંગી સંશોધન માટે ઓછામાં ઓછી આઠ (૮) નિષ્ણાતોની ટીમ હોવી અનિવાર્ય છે, જેમાં નીચેના સભ્યોનો સમાવેશ થાય છે :

૧. ફોટોગ્રાફર: ક્ષેત્રકાર્ય દરમિયાન લોકજીવનની જીવંત ક્ષણોને કેદ કરવા માટે.
૨. ચિત્રકાર: લોકસંસ્કૃતિના પ્રતીકો, વસ્ત્રો અને આકૃતિઓને રેખાંકિત કરવા માટે.
૩. ઇતિહાસકાર/પુરાતત્વવિદ્: જે પ્રાચીન લિપિઓ, શિલાલેખો અને ઐતિહાસિક કાળક્રમનો ઊંડો જાણકાર હોય.
૪. ભાષાશાસ્ત્રી : બોલીઓનો વિકાસ, ધ્વનિપરિવર્તન અને તળપદા શબ્દોના મૂળ શોધવા માટે.
૫. લોકસંગીતનો જ્ઞાતા: જે લોકધૂન, લોકગીતોના રાગ અને કંઠસ્થ પરંપરાના સંગીત પક્ષને સમજી શકે.
૬. વૈજ્ઞાનિક / ટેકનિશિયન: જે ઓડિયો ટેપરેકોર્ડર, ફિલ્મ કેમેરા કે વિડિયો કેમેરા જેવા આધુનિક સાધનો ચલાવવાની ટેકનિકલ ક્ષમતા ધરાવતો હોય.
૭. લેખક કે પત્રકાર: જે લખાણને પ્રવાહી અને રસપ્રદ શૈલીમાં શબ્દબદ્ધ કરી શકે.
૮. પુરાણ પંડિત: જે પ્રાચીન કથાઓ, મિથકો (Myths) અને ધાર્મિક પ્રતીકોના મૂળ સંદર્ભો સ્પષ્ટ કરી શકે.

જ્યારે આ આદ્ય વ્યક્તિઓની ટીમ સાથે મળીને સામૂહિક ક્ષેત્રકાર્ય કરે, ત્યારે જ સાચા અર્થમાં 'શાસ્ત્રીય કે વૈજ્ઞાનિક સંપાદન' પ્રાપ્ત થઈ શકે છે. આ વિષય પર ઝવેરચંદ મેઘાણીએ મુંબઈ યુનિવર્સિટીના વ્યાખ્યાનોમાં, મરાઠી સાહિત્યમાં કાકાસાહેબ અને વામન ચોરઘડેએ તેમના ગ્રંથ 'સાહિત્ય છે મૂર્ધન્ય' માં, તેમજ ગુજરાતીમાં કનુભાઈ જાનીએ તેમના ગ્રંથ 'લોકવાટય' માં આ વૈજ્ઞાનિક સંશોધનાત્મક પ્રક્રિયાઓ અત્યંત ઝીણવટપૂર્વક સમજાવી છે.

• લોકકથા સંપાદનની કઠિનતા

લોકસાહિત્યનું શુદ્ધ સ્વરૂપ મેળવવું કેટલું કઠિન છે તે દર્શાવતા રાષ્ટ્રીય શાયર ઝવેરચંદ મેઘાણી નોંધે છે કે, આપણી ભૂમિ એવી છે જ્યાં 'બૃહતકથા' માંથી નીકળેલી 'કથા સરિત્સાગર', 'બૃહતકથા મંજરી' અને 'બૃહતકથા શ્લોક સંગ્રહ' ની ત્રિવેણી સૈકાઓથી રેલાયેલી છે. વળી, 'વેતાલ પંચવિંશતિ', 'વિક્રમચરિત્ર' અને 'શુક સપ્તશતિ' જેવા મૂળ સંસ્કૃત ગ્રંથો અને તેના પરથી ઉતરી આવેલા પદ્યબંધો સદીઓ સુધી લોકજીવનમાં પ્રવાહમાન રહ્યા છે. બ્રાહ્મણો અને જૈનો દ્વારા રચાયેલા ચરિત્રો અને પ્રબંધો પણ સામાન્ય જનજાતિ સુધી પહોંચ્યા છે.

આવા વિશાળ સાહિત્યિક મહાસાગરમાંથી આજે જે કંઈક વાર્તાઓ પ્રચલિત છે, તેમાંથી "શુદ્ધ લોકસર્જન" કયું છે તેને તારવવું અત્યંત કઠિન કાર્ય છે. સંશોધકે એ પારખવું પડે છે કે કઈ વાર્તા શાસ્ત્રીય ગ્રંથોમાંથી લોકમાનસમાં બિંદુ રૂપે પ્રવેશી છે અને કઈ મૂળ લોકકથા છે.

• લોકકથા સંપાદનની વૈજ્ઞાનિક કાર્યપદ્ધતિ

કોઈપણ સંશોધકે ક્ષેત્રકાર્ય (Fieldwork) કરતી વખતે અને સંપાદનને શાસ્ત્રીય બનાવતી વખતે નીચેની બાબતોમાં ખાસ સાવધાની રાખવી જોઈએ :

- યાંત્રિક સાધનોનો વિનિયોગ - સંશોધક પાસે અદ્યતન ધ્વનિમૂદ્રણ (Audio Recorder), વિડિયો કેમેરા અને ડિજિટલ સાધનો પૂરતા પ્રમાણમાં હોવા જોઈએ.
- પ્રાદેશિક અને જ્ઞાતિગત ઓળખ - લોકકથા કયા ચોક્કસ પ્રદેશની છે, તે કઈ કોમ કે કઈ જ્ઞાતિમાં પ્રચલિત છે તેની ભૌગોલિક અને સામાજિક નોંધ રાખવી.
- મૂળ બોલીનું જાળવણું (તળપદતા) - લોકકથા જે તળપદી બોલીમાં બોલાતી હોય, તે જ બોલીમાં લખવી. ઉચ્ચારણ પ્રમાણે જ શબ્દો નોંધવા, પોતાની તરફથી ભાષા સુધારવાનો પ્રયત્ન ન કરવો.
- લોકસંપર્ક અને સામાજિક જ્ઞાન - સંશોધકે લોકોના મનનો અભ્યાસ કરવો જોઈએ. તેમના ગમા-આણગમા, રીતરિવાજો, શ્રદ્ધા, અંધશ્રદ્ધા અને ધાર્મિક માન્યતાઓને આદર આપી કાર્ય કરવું.
- પ્રશ્નોત્તરીની વૈજ્ઞાનિક પદ્ધતિ - કથક (વાર્તા કહેનાર) જ્યારે વાર્તા મારે ત્યારે વચ્ચે ક્યારેય અડચણરૂપ ન બનવું અને પ્રશ્નો ન પૂછવા. વાર્તા સંપૂર્ણ પૂરી થયા બાદ જ પ્રશ્નોત્તરી કરવી.
- કાનનું કેળવાયેલું હોવું (લોકદૃષ્ટિ) - સંપાદક સ્થાનિક લોકભાષાના વિશિષ્ટ શબ્દપ્રયોગો અને રૂઢિપ્રયોગોને ઝડપથી સમજી શકે તેવો કાને કેળવાયેલો હોવો જોઈએ.
- માહિતીદાતાનું ગૌરવભંગ અટકાવવું - લોકશૈલીનો મહાવરો રાખવો અને નોંધ કરતી વખતે માહિતી આપનાર વ્યક્તિના આત્મસન્માન કે ગૌરવને ક્યાંય ઠેસ ન પહોંચે તેની કાળજી રાખવી.
- પાઠાંતરોની સમાંતર નોંધ - એક જ કથા એક જ પ્રદેશના જુદા જુદા વડીલો પાસેથી નોંધી, તેમાં આવતા કથન શૈલીના યોગ્ય ફેરફારોને પણ દસ્તાવેજીબદ્ધ કરવા.
- વિવેચક અને જ્યોતિર્મય દૃષ્ટિ - સંપાદક માત્ર લખનારો ન હોવો જોઈએ, પણ તેની પાસે જીવનના સત્યો સમજવાની વિવેચક દૃષ્ટિ હોવી જોઈએ. શબ્દોના આરોહ-અવરોહ અને લોકસાંસ્કૃતિક પરિપ્રેક્ષ્યના આધારે તેનો મર્મ પકડવાની કુશળતા હોવી જોઈએ.

- સંઘેડાઉતાર દૃષ્ટિ અને આંતરસૂઝ - સંપાદક અત્યંત ઉત્સાહી, આર્ષદ્રષ્ટા, સજગ અને પારખું (સંઘેડિયા જેવા કસબવાળો) હોવો જોઈએ. નરી પુસ્તકીય વિદ્વતા કામ નથી આવતી, તેની સાથે લોકજીવનની આંતરસૂઝ હોવી જરૂરી છે.
- શબ્દની વ્યુત્પત્તિનું જ્ઞાન - કોઈ ચોક્કસ શબ્દ લોકજીવનમાંથી કઈ રીતે પ્રગટ્યો છે, તેની મૂળ ઉત્પત્તિ (Etymology) વિશે સંપાદકે વિગતવાર ચર્ચા કરવી જોઈએ.

● સંપાદન પદ્ધતિના મુખ્ય ભયસ્થાનો

સંશોધકો માટે લોકસાહિત્યના ક્ષેત્રકાર્ય દરમિયાન કેટલાક ગંભીર ભયસ્થાનો રહેલા છે, જેનાથી બચવું અનિવાર્ય છે :

- સત્કારવાની પદ્ધતિ અને માન-અપમાનના ખ્યાલો: દરેક ભૌગોલિક વિસ્તારના લોકોની પરંપરા અને મહેમાનગતિ કરવાની રીત અલગ હોય છે. જો સંશોધક તેમના રીતરિવાજોથી અજ્ઞાત હોય, તો પરસ્પર ગેરસમજ થવાની સંભાવના રહે છે.
- સામાજિક નિયમોનું ઉલ્લંઘન: ગ્રામીણ સમાજના પોતાના ચોક્કસ સામાજિક નિયમો હોય છે. સંશોધકે તે નિયમોનું ચુસ્તપણે પાલન કરવું જ પડે છે, નહિતર માહિતી મળવી અશક્ય બની જાય છે.
- માહિતીની વિશ્વસનીયતાનો અભાવ: એક મોટું ભયસ્થાન એ જોવા મળ્યું છે કે સમકાલીન સંપાદકો બધી વિગતો ઝીણવટપૂર્વક નોંધતા નથી, જેને કારણે પુસ્તકમાં અપાયેલી માહિતી શ્રદ્ધેય કે પ્રમાણભૂત રહેતી નથી.
- કૃત્રિમ ભાષાશુદ્ધિનો આગ્રહ: ઘણીવાર સંપાદકો લોકબોલીને સાહિત્યિક શિષ્ટ ભાષામાં ફેરવી નાખવાની ભૂલ કરે છે. વાસ્તવમાં, ઉચ્ચાર પ્રમાણેની જોડણી અને તળપદતા જાળવવી એ જ સાચી ભાષાશુદ્ધિ છે.

● સંપાદકની સજ્જતા અને શાસ્ત્રીય પ્રવૃત્તિઓ :

એક કુશળ સંપાદકે સૌના મન જીતી લેવાની માનસશાસ્ત્રીય કલા હસ્તગત કરવી જોઈએ. તેમની સજ્જતા માટે નીચેના ગુણો હોવા આવશ્યક છે:

1. ગ્રામ્યજનો સાથે ઊંડી આત્મીયતા અને તેમના પ્રત્યે સાચી સહાનુભૂતિ.
2. અજાણ્યા લોકો સાથે સરળતાથી સંપર્ક સાધવાની અને સંબંધો જોડવાની કળા.
3. સ્થાનિક બોલી કે લોકબોલીનો પાકો પરિચય.
4. કોઈપણ લોકકથા કે માહિતી સાંભળીને સીધો સ્વીકાર કરવાને બદલે 'જાત તપાસ' કરવાની વૃત્તિ.
5. લોકસાહિત્યમાં આવતા તમામ પાઠાંતરોને ઉદારતાથી સ્વીકારવાની ક્ષમતા.

સંશોધક લોકકથાનું સંપાદન ગ્રંથસ્થ કરે, ત્યારે તેમણે પાદટીપ (Footnote) કે પરિશિષ્ટમાં નીચેની ૮ વિગતો ચોક્કસ આપવી જોઈએ: ૧. પાઠપરંપરાનું નામ. ૨. જે પ્રદેશમાં આ કથા પ્રચલિત હોય તેની ભૌગોલિક વિગતો. ૩. સંદર્ભોની ચોક્કસ નોંધ, જેમ કે: કથાનો પ્રયોગ ક્યારે અને ક્યાં થાય છે?, તેના શ્રોતાઓ કોણ છે?, અને તેમાં ભાગ લેનારા મુખ્ય પાત્રો કે જ્ઞાતિ કઈ છે? ૪. કથા કહેવા પાછળનું પ્રયોજન (Purpose). ૫. પ્રસ્તુત કરનાર કથક પરિચય. ૬. રજૂઆત વખતે શ્રોતાઓની શું ભૂમિકા હતી તેની વિગત. ૭. રજૂઆતનું માધ્યમ (વાર્તા, ગીત, સંવાદ વગેરે). ૮. કથાનો મુખ્ય વિષય. ૯. પાઠનું મૂળ સ્વરૂપ.

• લોકસાહિત્ય સંપાદન પદ્ધતિઓ

લોકસાહિત્યના સંપાદનમાં મુખ્યત્વે ત્રણ પદ્ધતિઓનો વિનિયોગ થતો જોવા મળે છે:

- (અ) **વૈજ્ઞાનિક પદ્ધતિ** - આ પદ્ધતિ અંતર્ગત તથ્યોનું એકત્રીકરણ, યાંત્રિક રેકોર્ડિંગ, પાઠભેદોની સરખામણી, ભૌગોલિક અને જ્ઞાતિગત વર્ગીકરણ તેમજ ક્ષેત્રકાર્યના ડેટાનું શાસ્ત્રીય વિશ્લેષણ કરવામાં આવે છે.
- (બ) **ભાષાકીય પદ્ધતિ** - આ પદ્ધતિ અંતર્ગત લોકબોલીના વિશિષ્ટ ઉચ્ચારણો, ધ્વનિશાસ્ત્ર, તળપદા શબ્દોની મૂળ વ્યુત્પત્તિ અને વ્યાકરણના માળખાનો અભ્યાસ કરવામાં આવે છે.
- (ક) **કલાપક્ષીય પદ્ધતિ** - આ પદ્ધતિ લોકકથાના સૌંદર્યશાસ્ત્ર સાથે જોડાયેલી છે. તેમાં લોકકથામાં વપરાયેલા અલંકારો, રસ-નિરૂપણ, કલ્પનો, વિવિધ બોલીઓની લઘુણો, અભિવ્યક્તિની વિશિષ્ટ શૈલી (કહેણી) અને સમાજનું જે યથાર્થ ચિત્ર ઉપસી આવે છે તેનો ઊંડો અભ્યાસ કરવામાં આવે છે.

લોકસાહિત્ય એ માત્ર મનોરંજન માટેની વાર્તાઓ નથી, પરંતુ તે ખરા અર્થમાં 'લોકસંસ્કૃતિનું લોકશાસ્ત્ર' અને એક મહત્વનું 'સામાજિક વિજ્ઞાન' છે. આ વિજ્ઞાન દ્વારા માત્ર લોકોની રીત-રસમો, વહેમો, શ્રદ્ધા કે માન્યતાઓનો જ અભ્યાસ નથી થતો, પરંતુ ભૂતકાળના સમાજજીવનના વસ્ત્રો, અલંકારો (ઘરેણાં), પરંપરાગત રમતો, ઘરવખરીની ચીજવસ્તુઓ, લોકદેવ-દેવીઓ, રમકડાં અને તત્કાલીન હથિયારોનો પણ જીવંત ઇતિહાસ જાણવા મળે છે. તેથી જ લોકકથાનું સંપાદન એ સામાજિક ઇતિહાસના પુનઃલેખન બરાબર છે.

લોકકથાનું વૈજ્ઞાનિક સંપાદન કરવાનું કામ કપરું અને પડકારજનક અવશ્ય છે, પરંતુ તે અશક્ય કે મુશ્કેલ તો નથી જ. જો કોઈ સંશોધકમાં લોકસાહિત્ય પ્રત્યે સાચી જિજ્ઞાસા, સજાગતા અને સક્રિયતા હોય તો આ કાર્ય અત્યંત સરળ અને આનંદદાયક બની શકે છે. આ માટે સંશોધકે પ્રદેશોમાં ભટકવાની તૈયારી રાખવી પડે, લોકોના ગમા-આણગમા સહન કરવા પડે અને સંકુચિતતા છોડીને વ્યાપક માનવશાસ્ત્રીય દૃષ્ટિકોણ કેળવવો પડે છે.

આજના ડિજિટલ યુગમાં, જ્યારે પરંપરાગત કથકો લુપ્ત થઈ રહ્યા છે, ત્યારે આધુનિક ટેકનોલોજીની મદદથી ક્ષેત્રકાર્ય કરવું એ આજના સમયની સૌથી મોટી તાતી જરૂરિયાત છે. હજુ પણ ગ્રામીણ વિસ્તારોમાં જે જીવંત કથાઓ બચી છે, તેનું તુરંત જ ડિજિટલ ઓડિયો-વિડિયો રેકોર્ડિંગ કરવું જોઈએ અને તેનું શાસ્ત્રીય ભાષાશાસ્ત્રીય સંપાદન કરીને ભાવી પેઢી માટે અતિમૂલ્યવાન વારસો સુરક્ષિત કરવો જોઈએ.

સંદર્ભ અને સહાયક ગ્રંથસૂચિ :

○ મુખ્ય પ્રમુખ સંદર્ભ ગ્રંથો:

1. 'લોકમાંથી' - પુષ્કર ચંદરવાકર
2. 'લોકસાહિત્ય વિજ્ઞાન' - ડૉ. સત્યેન્દ્ર
3. 'લોકસાહિત્યનું સમાલોચન' - ઝવેરચંદ મેઘાણી

○ સહાયક ગ્રંથો:

1. 'લોકસાહિત્ય સ્વરૂપ અને વિવેચન' - જયમલ્લ પરમાર
2. 'ગુજરાતી લોકસાહિત્ય અને લોકસાંસ્કૃતિક અધ્યયન' - બળવંત જાની
3. 'લોકસાહિત્યની વિભાવના' - પુષ્કર ચંદરવાકર

બાબાસાહેબ ડૉ. બી. આર. આંબેડકરનું વક્તૃત્વ અને તેનું બહુપરિમાણીય વૈવિધ્ય: એક વિવેચનાત્મક, સામાજિક અને શૈક્ષણિક પૃથ્થકરણ

ડૉ. રવિ બી. ધાનાણી

સંશોધન અધિકારી,
બાબાસાહેબ ડૉ. બી. આર. આંબેડકર ચેર-સેન્ટર,
સૌરાષ્ટ્ર યુનિવર્સિટી, રાજકોટ.

સારાંશ

પ્રસ્તુત સંશોધન પેપર આધુનિક ભારતના પ્રમુખ શિલ્પી, કાયદાશાસ્ત્રી, અર્થશાસ્ત્રી અને સામાજિક ક્રાંતિકારી ડૉ. ભીમરાવ રામજી આંબેડકરના વક્તૃત્વ અને તેમની બહુપરિમાણીય વૈચારિક વિવિધતાનું શૈક્ષણિક પદ્ધતિઓ દ્વારા વિવેચનાત્મક આકલન કરવાનો પ્રયાસ છે. સામાન્ય રીતે વક્તૃત્વને માત્ર એક સંભાષણ કળા અથવા જનમેદનીને આકર્ષવાના સાધન તરીકે જોવામાં આવે છે, પરંતુ ડૉ. આંબેડકરના સંદર્ભમાં તે સામાજિક મુક્તિ, કાયદાકીય તાર્કિકતા, માનવ અધિકાર અને રાષ્ટ્ર-નિર્માણનું એક સશક્ત અને વૈજ્ઞાનિક માધ્યમ હતું. આ પેપર તેમના વિભિન્ન વિષયો જેવા કે સામાજિક ન્યાય, શ્રમિક કલ્યાણ, બંધારણીય અર્થઘટન, નારી સમાનતા અને ધાર્મિક તત્વજ્ઞાન પર આપેલા ઐતિહાસિક વ્યાખ્યાનોની શૈલીગત અને વિષયગત વિવિધતાનું આલોચનાત્મક પૃથ્થકરણ કરે છે. સંશોધનના અંતે સાબિત થાય છે કે બાબાસાહેબનું વક્તૃત્વ પરંપરાગત માળખામાં ફિટ થઈ શકે તેમ નથી, પરંતુ તે બહુપરિમાણીય અને બહુભાષીય હતું.

અગત્યના શબ્દો: વક્તૃત્વ, બહુપરિમાણીય વૈવિધ્ય, સમાજશાસ્ત્રીય અભ્યાસ

• પ્રસ્તાવના

કોઈપણ સંશોધન એ જન્મજાત સંશોધન હોતું નથી. સમાજ એ જીવનના દરેક પાસાઓની રંગોળી પૂરતું જીવન દર્શન કરાવે છે. માનવી એક સામાજિક પ્રાણી છે. સમાજમાં રહીને સમાજની ગતિવિધિ, સામાજિક નિયમો અને મર્યાદામાં રહીને તે પોતાનો વિકાસ કરે છે. સંશોધન એ માનવીની સાહજિક વૃત્તિ છે. વ્યક્તિની જિજ્ઞાસા જ તેને તલસ્પર્શી જ્ઞાન મેળવવા પ્રેરે છે. ડૉ. હરિવલ્લભ ભાયાણીના મતે "સંશોધન એટલે સત્યની શોધ" અને સી. સી. ફોર્ડના મતે "સંશોધન એ સમસ્યાનો ઉકેલ શોધવાની એક સુયોજિત, વ્યવસ્થિત અને પરિશુદ્ધ પ્રક્રિયા છે".

આ પરિપ્રકર્યમાં, ભારતરત્ન ડૉ. બી. આર. આંબેડકરના જીવન-કવન અને તેમના વિભિન્ન વક્તવ્યોમાં રહેલી સામાજિક, કાનૂની, આર્થિક અને શૈક્ષણિક વિવિધતાનો સમાજશાસ્ત્રીય દ્રષ્ટિકોણથી અભ્યાસ કરવો અનિવાર્ય બને છે. શોષિત, પીડિત અને દલિત સમાજના ઉત્થાન માટે તેમના વિચારો અને વક્તવ્યોએ પ્રેરણા અને નવી વૈચારિક ચેતના આપવાનું ઐતિહાસિક કાર્ય કર્યું છે.

• અગત્યના પદોની સમજૂતી:

- **વક્તૃત્વ:** ડૉ. આંબેડકરના સંદર્ભમાં વક્તૃત્વ એટલે માત્ર ભાષણબાજી કે શાબ્દિક ચાતુર્ય નહીં, પરંતુ ગહન સંશોધન, સચોટ આંકડાકીય માહિતી અને અકાટ્ય તાર્કિક દલીલો દ્વારા સમાજ અને સત્તાને હચમચાવી વૈચારિક ક્રાંતિ લાવવાનું વૈજ્ઞાનિક માધ્યમ.

- **બહુપરિમાણીય વૈવિધ્ય:** એક જ વ્યક્તિત્વ દ્વારા સામાજિક અધિકારો, રાજકીય લોકશાહી, અર્થશાસ્ત્રીય નીતિઓ, બંધારણીય કલમો અને ધાર્મિક તત્વજ્ઞાન જેવા વિભિન્ન ક્ષેત્રો પર સમાન પ્રભુત્વ અને વિશિષ્ટ દ્રષ્ટિકોણ સાથે રજૂ થતી વિચારોની વિવિધતા.
- **સમાજશાસ્ત્રીય અભ્યાસ:** માનવ સમાજની જ્ઞાતિ વ્યવસ્થા, અસ્પૃશ્યતા, સામાજિક અસમાનતા અને જાતિગત ભેદભાવના સંદર્ભમાં ડૉ. આંબેડકરના વક્તવ્યોની સામાજિક અસરો અને પરિવર્તનની પ્રક્રિયાનું પૃથક્કરણ.

• વિષય પસંદગીના કારણો

સામાજિક સંશોધનમાં રાષ્ટ્રીય સમસ્યાઓ જેવી કે અસમાનતા, જ્ઞાતિવાદ અને અંધશ્રદ્ધાને હલ કરવા માટે વ્યક્તિવિશેષનો અભ્યાસ ઘણો ઉપયોગી નીવડે છે.

1. ડૉ. આંબેડકરે પછાત સમાજમાં જન્મ લઈ અસ્પૃશ્યતાના જે અમાનવીય જાતઅનુભવો કર્યા હતા, તેમાંથી જન્મેલી વાણી અને તેનાથી પ્રભાવિત થયેલા જન-આંદોલનોને વૈજ્ઞાનિક રૂપે સમજવા.
2. આધુનિક લોકશાહીના સમયમાં તેમના ભાષણો અને સંસદીય ચર્ચાઓ આજે પણ એટલી જ પ્રસ્તુત હોવાથી તેના શૈક્ષણિક મૂલ્યાંકનની તીવ્ર જરૂરિયાત છે.
3. વક્તૃત્વ કળા દ્વારા અહિંસક માધ્યમથી આખેઆખા સમાજનું હૃદયપરિવર્તન કેવી રીતે કરી શકાય, તેના અભ્યાસ માટે આ વિષય પસંદ કરાયો છે.

• સંબંધિત સાહિત્યની સમીક્ષા

પૂર્વ સંશોધનો અને સાહિત્યની સમીક્ષા દર્શાવે છે કે મોટાભાગના વિદ્વાનોએ ડૉ. આંબેડકરને માત્ર 'દલિતોના નેતા' અથવા 'ભારતીય બંધારણના જનક' તરીકે જ મર્યાદિત પરિપ્રકરણમાં મૂલવ્યા છે. ધનંજય કીર દ્વારા લિખિત જીવનચરિત્ર અને મહારાષ્ટ્ર સરકાર દ્વારા પ્રકાશિત **Dr. Babasaheb Ambedkar: Writings and Speeches (BAWS)** ના વિવિધ ગ્રંથોનો ઊંડો અભ્યાસ કરતા જણાય છે કે, તેમના વક્તવ્યોમાં શ્રમિક કલ્યાણ, નારી સમાનતા, આંતરરાષ્ટ્રીય નાણાકીય નીતિઓ અને વૈશ્વિક અર્થતંત્ર જેવા વ્યાપક વિષયો સમાવિષ્ટ હતા. સાહિત્યિક જગતમાં તેમના ભાષણોના શૈલીગત અને વિવિધતાપૂર્ણ પાસાંઓની વિવેચનાત્મક સમીક્ષા ખૂબ ઓછી થઈ છે, જેને આ સંશોધન પેપરમાં કેન્દ્રસ્થ સ્થાન આપવામાં આવ્યું છે.

• અભ્યાસના હેતુઓ

1. ડૉ. બાબાસાહેબ આંબેડકરના જીવન-કવન અને તેમની શૈક્ષણિક પૃષ્ઠભૂમિનો તલસ્પર્શી પરિચય મેળવવો.
2. તેમના વક્તવ્યો અને લખાણોમાંથી નિષ્પન્ન થતા વિચારો, ચિંતન અને માનવતાવાદી તત્વજ્ઞાનને સમજવું.
3. સામાજિક, બંધારણીય, શ્રમિક, નારી ઉત્થાન અને ધાર્મિક સંદર્ભોમાં તેમના વક્તવ્યોની બહુપરિમાણીય વિવિધતા તપાસવી.
4. વર્તમાન ૨૧મી સદીના ભારતમાં રાષ્ટ્ર અને લોકજનમાનસ પર તેમના વૈચારિક પ્રભાવની પ્રસ્તુતતાનું મૂલ્યાંકન કરવું.

• સંશોધન પદ્ધતિ

પ્રસ્તુત અભ્યાસમાં વિષયની ગુણાત્મક અને વિવેચનાત્મક પ્રકૃતિને ધ્યાનમાં રાખીને નીચે મુજબની શૈક્ષણિક સંશોધન પદ્ધતિઓનો ઉપયોગ કરવામાં આવ્યો છે:

- **વર્ણનાત્મક અને વિશ્લેષણાત્મક પદ્ધતિ:** ડૉ. આંબેડકરના વ્યાખ્યાનોની આંતરિક સામગ્રી, દલીલોની શૈલી અને તેના પ્રભાવનું તાર્કિક વિશ્લેષણ કરવા માટે.
- **ઐતિહાસિક પદ્ધતિ:** ૧૯૨૦ થી ૧૯૫૬ દરમિયાનના તેમના મહત્વના વક્તવ્યોના સમયગાળા અને તત્કાલીન સામાજિક-રાજકીય પરિસ્થિતિના તુલનાત્મક અભ્યાસ માટે.

• માહિતી એકત્રીકરણના સાધનો

આ અભ્યાસ સંપૂર્ણપણે આયોજિત ગૌણ માહિતી (Secondary Data) અને અધિકૃત દસ્તાવેજ સ્ત્રોતો પર આધારિત છે:

- મહારાષ્ટ્ર સરકારના શિક્ષણ વિભાગ દ્વારા પ્રકાશિત ડૉ. આંબેડકરના ઓફિશિયલ વક્તવ્યો અને લખાણોના વૉલ્યુમ્સ (BAWS - Volumes).
- તેમણે પોતે શરૂ કરેલા સામયિકો જેવા કે 'મૂકનાયક' (૧૯૨૦), 'બહિષ્કૃત ભારત' (૧૯૨૭) અને 'જનતા' માં છપાયેલા તેમના ઐતિહાસિક લખાણો અને પ્રવચનોના અંશો.
- પ્રતિષ્ઠિત રાષ્ટ્રીય અને આંતરરાષ્ટ્રીય જર્નલ્સમાં પ્રકાશિત સંશોધન લેખો અને એકેડેમિક પુસ્તકો.

• વિષયનું વિસ્તૃત પૃથ્થકરણ અને ચર્ચા:

- ડૉ. બાબાસાહેબનું જીવન-કવન અને વક્તૃત્વનો ઉદય

૧૪ એપ્રિલ ૧૮૮૧ના રોજ જન્મેલા ભીમરાવ રામજી આંબેડકરે બાળપણથી જ જ્ઞાતિવાદ અને અસ્પૃશ્યતાના ઘોર અપમાનો સહન કર્યા હતા. વર્ગખંડની બહાર બેસીને અભ્યાસ કરવા છતાં તેમની જ્ઞાનપીપાસા અટકી નહીં. વડોદરાના મહારાજા સયાજીરાવ ગાયકવાડની શિષ્યવૃત્તિની મદદથી તેઓ અમેરિકાની કોલંબિયા યુનિવર્સિટી અને લંડન સ્કૂલ ઓફ ઈકોનોમિક્સમાંથી ઉચ્ચ પદવીઓ (M.A., Ph.D., D.Sc., Barrister-at-Law) મેળવી ભારત પરત ફર્યા. તેમની આ પ્રકાંડ શૈક્ષણિક પૃષ્ઠભૂમિને કારણે તેમનું વક્તૃત્વ સામાન્ય નેતાઓ જેવું ભાવનાત્મક નહોતું, પરંતુ તે કાનૂની ચોકસાઈ અને વૈજ્ઞાનિક જ્ઞાનથી સજ્જ હતું.

A. સામાજિક ક્રાંતિ, અસ્પૃશ્યતા નિવારણ અને માનવ અધિકાર

બાબાસાહેબના પ્રારંભિક વક્તવ્યો દલિત અને વંચિત સમાજને જગાડવા અને તેમનામાં આત્મગૌરવ પેદા કરવા પર કેન્દ્રિત હતા.

- **મહાડ સત્યાગ્રહ (૨૦ માર્ચ ૧૯૨૭):** મહારાષ્ટ્રના ચવદાર તળાવના મુક્તિ આંદોલન વખતે તેમણે આપેલું પ્રવચન ઐતિહાસિક હતું. તેમણે સ્પષ્ટ કર્યું કે, "આપણે આ તળાવ પર માત્ર પાણી પીવા માટે નથી આવ્યા. પાણી પીવાથી આપણી તરસ છીપાશે, પણ આપણી સામાજિક તરસ ત્યાં સુધી નહીં છીપાય જ્યાં સુધી આપણને અન્ય નાગરિકો જેવા જ સમાન માનવીય અધિકારો ન મળે." આ લખાણમાં તેમણે ફ્રેન્ચ ક્રાંતિના આદર્શો (સ્વતંત્રતા, સમાનતા અને બંધુતા) ને ભારતીય પરિપ્રકરમાં રજૂ કર્યા હતા.

- મનુસ્મૃતિ દહન (૨૫ ડિસેમ્બર ૧૯૨૭): સામાજિક અસમાનતા અને જ્ઞાતિવાદનું સમર્થન કરતા ગ્રંથના દહન સમયે આપેલા વક્તવ્યમાં તેમણે રૂઢિચુસ્ત વલણો પર આકરા પ્રહારો કર્યા. તેમનું આ સંભાષણ કોઈપણ પ્રકારની હિંસા વિના કાયદાકીય અને નૈતિક રીતે સામાજિક માળખાને બદલવાનો એક બૌદ્ધિક પડકાર હતો.

B. શ્રમિક કલ્યાણ, આર્થિક નીતિઓ અને ઔદ્યોગિક ન્યાય

૧૯૪૨ થી ૧૯૪૬ દરમિયાન વાઈસરોયની એક્ઝિક્યુટિવ કાઉન્સિલમાં લેબર મેમ્બર (શ્રમ મંત્રી) તરીકે ડૉ. આંબેડકરે ભારતના મજૂર વર્ગના ઉત્થાન માટે અભૂતપૂર્વ વક્તવ્યો આપ્યા હતા.

- કામના ક્લાકોમાં ઘટાડો: તત્કાલીન સમયમાં મજૂરો પાસે દિવસના ૧૨ થી ૧૪ કલાક કામ લેવાનું હતું. બાબાસાહેબે સચોટ આંકડાકીય અને આંતરરાષ્ટ્રીય કાયદાઓના હવાલા આપીને બ્રિટિશ સરકાર સમક્ષ મજબૂત દલીલો કરી અને ભારતમાં કામના ક્લાકો ૮ કલાક નક્કી કરાવ્યા.
- મહિલા શ્રમિકો માટે કલ્યાણકારી યોજનાઓ: તેમણે મહિલા મજૂરો માટે 'મેટર્નિટી બેનિફિટ' (સુવાવડ ભથ્થું અને રજાઓ), 'કોલ માઈન્સ લેબર વેલફેર ફંડ' અને સમાન કામ માટે સમાન વેતનની જોગવાઈઓ પર સંસદીય મંચ પરથી ધારદાર વક્તવ્યો આપ્યા, જે આજે પણ ભારતીય શ્રમ કાયદાનો પાયો છે.

C. સ્ત્રી સમાનતા, સશક્તિકરણ અને હિન્દુ કોડ બિલ

ડૉ. આંબેડકર ભારતના પ્રથમ એવા રાજનેતા અને ચિંતક હતા જેમણે સ્ત્રી મુક્તિને રાષ્ટ્રના વિકાસ સાથે જોડી હતી. તેમનું સૂત્ર હતું: "હું કોઈપણ સમાજની પ્રગતિનું મૂલ્યાંકન તે સમાજની મહિલાઓએ મેળવેલી પ્રગતિના આધારે કરું છું."

- હિન્દુ કોડ બિલ પરની ચર્ચાઓ (૧૯૪૮-૧૯૫૧): કાયદા મંત્રી તરીકે તેમણે સંસદમાં રજૂ કરેલા આ બિલ પરના વ્યાખ્યાનો ભારતીય નારીવાદનો દસ્તાવેજ છે. તેમણે સ્ત્રીઓને પિતા અને પતિની મિલકતમાં સમાન હિસ્સો આપવા, બહુપત્નીત્વ પ્રથા નાબૂદ કરવા, દત્તક વિધાન અને સ્ત્રીઓને પોતાની મરજીથી લગ્ન-વિરોધ (છૂટાછેડા) લેવાનો અધિકાર આપવા માટે સંસદમાં ક્લાકો સુધી તાર્કિક લડત આપી. જ્યારે રૂઢિચુસ્ત સાંસદોએ આ બિલનો વિરોધ કર્યો, ત્યારે તેમણે મહિલાઓના સન્માન માટે પોતાના કાયદા મંત્રીના પદ પરથી રાજીનામું આપી દીધું, જે તેમના વિચારોની કટિબદ્ધતા દર્શાવે છે.

D. બંધારણીય અર્થઘટન અને રાજકીય લોકશાહીનું ભવિષ્ય

૨૫ નવેમ્બર ૧૯૪૯ના રોજ બંધારણ સભામાં આપેલું તેમનું અંતિમ ભાષણ, જેને શૈક્ષણિક જગતમાં "The Grammar of Anarchy" (અરાજકતાનું વ્યાકરણ) તરીકે ઓળખવામાં આવે છે, તે તેમની દીર્ઘદ્રષ્ટિનું ઉત્કૃષ્ટ ઉદાહરણ છે.

- વિરોધાભાસી જીવનની ચેતવણી: તેમણે દેશને ગંભીર ચેતવણી આપતા કહ્યું હતું કે, "૨૬ જાન્યુઆરી ૧૯૫૦ના રોજ, આપણે વિરોધાભાસના એક નવા યુગમાં પ્રવેશી રહ્યા છીએ. રાજકીય ક્ષેત્રે આપણી પાસે સમાનતા હશે (એક વ્યક્તિ, એક વોટ અને દરેક વોટની સમાન કિંમત), પરંતુ આપણા સામાજિક અને આર્થિક જીવનમાં ઘોર અસમાનતા હશે. આપણે આ અસમાનતાને વહેલી તકે દૂર કરવી જ પડશે, નહીં તો આ અસમાનતાથી પીડિત લોકો આપણી મહેનતથી ઉભી કરાયેલી રાજકીય લોકશાહીના આ ભવ્ય માળખાને તોડી નાખશે."
- ભક્તિ કે હીરો-વર્શિપ: તેમણે રાજકારણમાં વ્યક્તિપૂજા સામે ચેતવતા કહ્યું કે, ધર્મમાં ભક્તિ મુક્તિનો માર્ગ હોઈ શકે, પરંતુ રાજકારણમાં ભક્તિ કે વ્યક્તિપૂજા એ ચોક્કસપણે સરમુખત્યારશાહી અને વિનાશ તરફ લઈ જનારો રાજમાર્ગ છે.

E. ધાર્મિક તત્વજ્ઞાન, નૈતિકતા અને માનવતાવાદ

૧૪ ઓક્ટોબર ૧૯૫૬ના રોજ નાગપુરની દીક્ષાભૂમિ પર લાખો અનુયાયીઓ સાથે બૌદ્ધ ધર્મ અંગીકાર કરતી વખતે આપેલું તેમનું વ્યાખ્યાન તેમના જીવનનું અંતિમ અને સૌથી ગહન વૈચારિક વક્તવ્ય હતું.

- **નૈતિકતા આધારિત સમાજ:** તેમણે સ્પષ્ટ કર્યું કે ધર્મ એ માનવી માટે છે, માનવી ધર્મ માટે નથી. હિન્દુ ધર્મની વર્ણવ્યવસ્થા અને અસમાનતાનો ત્યાગ કરીને તેમણે બૌદ્ધ ધર્મના કરુણા, પ્રજ્ઞા અને સમતાના સિદ્ધાંતો સ્વીકાર્યા. તેમનું આ ભાષણ કોઈ ધાર્મિક કટ્ટરતાવાળું નહોતું, પરંતુ મનુષ્યને ગુલામીમાંથી મુક્ત કરાવી નૈતિક મૂલ્યો તરફ વાળવાનું એક દાર્શનિક પ્રવચન હતું.

- **તારણો અને ફલિતાર્થ**

આ વ્યાપક સંશોધનના આધારે પ્રાપ્ત થયેલા મહત્વપૂર્ણ તારણો અને તેના સાંપ્રત સમયના ફલિતાર્થો નીચે મુજબ વિગતવાર સ્પષ્ટ થાય છે:

- **મુખ્ય તારણો:**

1. **શૈક્ષણિક સંભાષણ તરીકે વક્તૃત્વ:** ડૉ. આંબેડકરનું વક્તૃત્વ પરંપરાગત નેતાઓની જેમ માત્ર જનમેદનીને લાગણીશીલ કરવા કે તાળીઓ મેળવવા પૂરતું સીમિત નહોતું. તેમના દરેક ભાષણ પાછળ વૈશ્વિક ઇતિહાસનો અભ્યાસ, કાયદાકીય જોગવાઈઓ અને સચોટ આંકડાકીય માહિતીનું બેકગ્રાઉન્ડ રહેતું હતું. તેથી જ તેમનું વક્તૃત્વ એક ઉચ્ચ શૈક્ષણિક વ્યાખ્યાનની કક્ષાનું હતું.
2. **બહુપરિમાણીય વ્યક્તિત્વનું પ્રતિબિંબ:** પૃથ્થકરણ દર્શાવે છે કે બાબાસાહેબના વિચારોનું માળખું બહુવિધ પાસા ધરાવતું હતું. જ્યારે તેઓ અદાલત કે બંધારણ સભામાં બોલતા ત્યારે પ્રકાંડ કાયદાશાસ્ત્રી, સંસદમાં શ્રમિકો માટે બોલતા ત્યારે દીર્ઘદ્રષ્ટિવાળા અર્થશાસ્ત્રી અને દીક્ષાભૂમિ પર બોલતા ત્યારે કરુણાસભર માનવતાવાદી દાર્શનિક તરીકે ઉભરી આવતા હતા.
3. **વાસ્તવવાદી રાષ્ટ્રચિંતન:** મહાત્મા ગાંધી અને અન્ય સમકાલીન નેતાઓ ઘણીવાર આદર્શવાદી ગ્રામ્ય સ્વરાજ કે નૈતિક સમાજની વાતો કરતા હતા, જ્યારે ડૉ. આંબેડકરનો અભિગમ તદ્દન વાસ્તવવાદી (Realistic) હતો. તેઓ જાણતા હતા કે જ્યાં સુધી કાયદાકીય સુરક્ષા અને બંધારણીય હકો નહીં મળે, ત્યાં સુધી સામાજિક પરિવર્તન શક્ય નથી. તેમના ભાષણો આ જમીની હકીકતની સાબિતી આપે છે.

વ્યવહારિક ફલિતાર્થ:

1. **સાંપ્રત લોકશાહીનું રક્ષણ:** વર્તમાન ૨૧મી સદીના ભારતમાં જ્યારે રાજકીય ધ્રુવીકરણ અને વ્યક્તિપૂજા (Hero-Worship) નું પ્રમાણ વધી રહ્યું છે, ત્યારે બાબાસાહેબે બંધારણ સભામાં આપેલા ભાષણો સત્તાધીશો અને નાગરિકો બંને માટે એક પથદર્શક તરીકે કામ કરે છે.
2. **નીતિ-નિર્માણમાં પ્રસ્તુતતા:** આજે પણ દેશમાં મહિલા સુરક્ષા, સમાન નાગરિક ધારાની ચર્ચાઓ અને શ્રમિકોના અધિકારોના જે પ્રશ્નો ઉભા થાય છે, તેના ઉકેલ માટે ડૉ. આંબેડકરે 'હિન્દુ કોડ બિલ' અને 'શ્રમ સુધારા' વખતે આપેલા વક્તવ્યોનો સંદર્ભ લેવો અનિવાર્ય બને છે.
3. **શૈક્ષણિક સંશોધકો માટે દિશાસૂચન:** આ અભ્યાસ સાબિત કરે છે કે શૈક્ષણિક સંસ્થાઓ અને યુનિવર્સિટીઓએ ડૉ. આંબેડકરને માત્ર 'દલિતોના મસીહા' ના મર્યાદિત ચોક્કામાં રાખવાને બદલે, તેમના વિચારોના આર્થિક, શૈક્ષણિક અને સાહિત્યિક પાસાઓ પર વધુ ને વધુ ગુણાત્મક સંશોધનો કરવા પ્રોત્સાહિત કરવું જોઈએ.

સંદર્ભ સૂચિ:

1. Ambedkar, B. R. (1936). *Annihilation of Caste with a Reply to Mahatma Gandhi*. Lahore: Jat-Pat-Todak Mandal. (Reprinted in BAWS Vol. 1).
2. Ambedkar, B. R. (1948). *The Untouchables: Who Were They and Why They Became Untouchables?* New Delhi: Amrit Book Co.
3. Keer, D. (1954). *Dr. Ambedkar: Life and Mission*. Mumbai: Popular Prakashan.
4. Moon, V. (Ed.). (1979-2003). *Dr. Babasaheb Ambedkar: Writings and Speeches* (Vols. 1, 2, 10, & 13). Education Department, Government of Maharashtra, Bombay.
5. Rodriguez, V. (Ed.). (2002). *The Essential Writings of B.R. Ambedkar*. New Delhi: Oxford University Press.
6. Shah, G. (2001). *Dalit Identity and Politics*. New Delhi: Sage Publications.

काव्यशास्त्रीय लक्षणों के संदर्भ में 'मृच्छकटिकम्' का प्रकरण-रूपक के रूप में मूल्यांकन

डॉ. प्रकाश एल. साकलिया

Ph.D शोधछात्र,

सौराष्ट्र यूनिवर्सिटी, राजकोट

सारांश

प्रस्तुत शोध-पत्र में महाकवि शूद्रक रचित मृच्छकटिकम् का काव्यशास्त्रीय दृष्टि से प्रकरण-रूपक के रूप में सम्यक मूल्यांकन किया गया है। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र और आचार्य धनंजय के दशरूपक में प्रतिपादित शास्त्रीय लक्षणों के आलोक में यह स्पष्ट किया गया है कि मृच्छकटिकम् कथावस्तु, नायक-नायिका-विधान, रस-योजना, अंक-विन्यास, पंचसंधि तथा भाषा-वैविध्य की कसौटी पर खरा उतरता है। नाटक की लौकिक एवं कवि-कल्पित कथावस्तु, धीरप्रशांत नायक चारुदत्त, मिश्र-प्रकरण के अनुरूप कुलजा और गणिका नायिकाओं का संतुलित विन्यास, अंगी रस के रूप में शृंगार की प्रधानता तथा सहायक रसों का समुचित समन्वय इसकी शास्त्रीयता को पुष्ट करता है। साथ ही, लोकधर्मी तत्त्वों, यथार्थवादी संवादों और प्राकृत-संस्कृत के सुसंगत प्रयोग से नाटक की रंगमंचीय प्रभावशीलता बढ़ती है। निष्कर्षतः मृच्छकटिकम् न केवल एक आदर्श प्रकरण-रूपक है, बल्कि शास्त्रीय मर्यादाओं के भीतर रहते हुए उनके रचनात्मक विस्तार का भी उत्कृष्ट उदाहरण है।

मुख्य शब्द (Keywords): मृच्छकटिकम्, शूद्रक, प्रकरण-रूपक, नाट्यशास्त्र, दशरूपक, धीरप्रशांत नायक, शृंगार रस, पंचसंधि, लोकधर्मी तत्त्व, संस्कृत नाटक

• प्रस्तावना

संस्कृत वाङ्मय में काव्य के दो मुख्य भेद स्वीकार किए गए हैं श्रव्य और दृश्य। दृश्य काव्य को ही 'रूपक' कहा जाता है क्योंकि इसमें पात्रों पर अवस्था का आरोप (रूपारोप) किया जाता है। महर्षि भरतमुनि ने अपने 'नाट्यशास्त्र' में जिस नाट्य-परंपरा की नींव रखी, वह केवल ईश्वरीय या पौराणिक आख्यानो तक सीमित नहीं थी, बल्कि उसमें लोक-जीवन के यथार्थ को समेटने की भी अद्भुत क्षमता थी।

महाकवि शूद्रक विरचित 'मृच्छकटिकम्' (मिट्टी की गाड़ी) संस्कृत नाट्य-साहित्य के इतिहास में एक क्रांतिकारी मील का पत्थर है। जहाँ एक ओर कालिदास और भवभूति जैसे महान नाटककार राजाओं, देवताओं और ऋषियों के उदात्त जीवन को अपने नाटकों का आधार बना रहे थे, वहीं शूद्रक ने समाज के सबसे निचले पायदान पर खड़े पात्रों जुआरियों, चोरों, वेश्याओं, विटों, चेटों और निर्धन ब्राह्मणों को रंगमंच के केंद्र में स्थापित किया। 'मृच्छकटिकम्' महाकवि भास के चार अंकों वाले अपूर्ण नाटक 'दरिद्रचारुदत्त' का एक अत्यंत परिष्कृत, परिवर्धित और दस अंकों में विस्तृत रूप है। प्रस्तुत शोध-पत्र का मुख्य उद्देश्य नाट्यशास्त्रीय ग्रंथों (विशेषकर भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र' और आचार्य धनंजय के 'दशरूपक') में प्रतिपादित शास्त्रीय लक्षणों के आलोक में यह सिद्ध करना है कि 'मृच्छकटिकम्' न केवल एक आदर्श प्रकरण-रूपक है, बल्कि यह इस विधा की शास्त्रीय सीमाओं का विस्तार करने वाला एक कालजयी ग्रंथ है।

• संस्कृत नाट्यशास्त्र में रूपक विधान और 'प्रकरण' का स्थान

आचार्य धनंजय ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'दशरूपक' में रूपक के दस भेदों का वर्गीकरण करते हुए लिखा है:

नाटकं सप्रकरणं भाणः प्रहसनं डिमः।

व्यायोगसमवकारौ वीथ्यङ्कहामृगा इति रूपकाणि दश ॥ दशरूपक १/८

इन दस भेदों में 'नाटक' को प्रथम और 'प्रकरण' को द्वितीय स्थान प्राप्त है। नाटक और प्रकरण में मूल अंतर यह है कि नाटक की कथावस्तु इतिहास-प्रसिद्ध या पौराणिक होती है और उसका नायक कोई प्रतापी राजा, देवता या राजर्षि (धीरोदात्त) होता है। इसके विपरीत, प्रकरण की कथावस्तु पूरी तरह कवि की अपनी कल्पनाशक्ति (कवि-कल्पित) पर आधारित होती है और उसका नायक समाज का ही कोई सामान्य नागरिक होता है। इस दृष्टि से प्रकरण विधा, नाटक की तुलना में जनसामान्य के अधिक निकट और सामाजिक यथार्थ के अधिक व्यावहारिक धरातल पर स्थित होती है।

• प्रकरण-रूपक के शास्त्रीय लक्षण

किसी भी रूपक को 'प्रकरण' की संज्ञा देने के लिए आचार्यों ने कुछ कड़े मानदंड और लक्षण निर्धारित किए हैं। दशरूपककार धनंजय के अनुसार प्रकरण के प्रमुख शास्त्रीय लक्षण निम्नलिखित हैं: भवेत्प्रकरणे वृत्तं लौकिकं कविकल्पितम्।

नायकस्तु विप्रोऽमात्यो वणिग्वापि धीरप्रशान्तकः।

नायिका कुलजा वेश्या क्वापि द्वयं तु तद्विधा ॥ दशरूपक ३/३९-४०

इन श्लोकों के आधार पर प्रकरण के प्रमुख लक्षण इस प्रकार उभरते हैं:

- **कथावस्तु (वृत्त):** इतिहास-प्रसिद्ध न होकर 'लौकिक' और 'कवि-कल्पित' होनी चाहिए।
- **नायक:** नायक का धीरप्रशान्त होना अनिवार्य है। वह कोई ब्राह्मण, मंत्री (अमात्य) या वणिक (व्यापारी) होना चाहिए जो सुख-दुःख में समभाव रखे।
- **नायिका:** नायिका तीन प्रकार की हो सकती है केवल कुलजा (कुलीन स्त्री), केवल गणिका (वेश्या), या कुलजा और गणिका दोनों का सम्मिश्रण। इसी आधार पर प्रकरण के तीन भेद होते हैं: शुद्ध, विकृत और मिश्र।
- **मुख्य रस (अंगी रस):** इसमें मुख्य रूप से 'शृंगार रस' की प्रधानता होनी चाहिए।
- **अंक संख्या:** इसमें अंकों की संख्या अनिवार्य रूप से 'दस' (१०) होनी चाहिए।

अब हम इन शास्त्रीय लक्षणों की कसौटी पर 'मृच्छकटिकम्' का क्रमबद्ध और विस्तृत मूल्यांकन करेंगे।

• कथावस्तु का शास्त्रीय मूल्यांकन: कवि-कल्पित एवं सामाजिक यथार्थ

शास्त्रीय नियमों के अनुसार प्रकरण की कथावस्तु ऐतिहासिक न होकर लौकिक होनी चाहिए। 'मृच्छकटिकम्' की कथावस्तु इस लक्षण का पूर्णतः निर्वाह करती है। शूद्रक ने इस रूपक में तत्कालीन उज्जैनी नगरी के सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन का एक जीवंत चित्र खींचा है।

इस रूपक की कथावस्तु द्विआयामी है, जिसमें दो कथाएं समांतर चलती हैं:

आधिकारिक कथावस्तु: यह नायक चारुदत्त और गणिका वसंतसेना के निश्छल, अलौकिक और उदात्त प्रेम पर आधारित है।

प्रासंगिक कथावस्तु: यह उज्जैनी के अत्याचारी राजा पालक के विरुद्ध गोपाल-पुत्र 'आर्यक' के राजनीतिक विद्रोह और सत्ता परिवर्तन की कथा है।

शूद्रक की महानता इस बात में है कि उन्होंने इन दोनों कथाओं को इस प्रकार गुंफित किया है कि प्रासंगिक कथा (राजनीतिक क्रांति) आधिकारिक कथा (प्रेम कथा) को गति और तार्किक परिणति प्रदान करती है। उदाहरण के लिए, यदि आर्यक राजा पालक की कैद से भागकर चारुदत्त की गाड़ी में न छिपता, तो चारुदत्त पर राजद्रोह का आरोप न लगता; और यदि अंत में आर्यक राजा न बनता, तो चारुदत्त को वध-दंड से मुक्ति और वसंतसेना को 'कुलवधू' का गौरवपूर्ण पद प्राप्त न होता।

यह संपूर्ण कथानक पूरी तरह मानवीय धरातल पर घटित होता है। इसमें किसी दैवीय शक्ति, वरदान, श्राप या चमत्कार का सहारा नहीं लिया गया है, जो इस बात का अकाट्य प्रमाण है कि इसकी कथावस्तु पूर्णतः 'लौकिक' और 'कवि-कल्पित' है।

● नायक-विवेचन: धीरप्रशांत चारुदत्त की शास्त्रीय कसौटी

नाट्यशास्त्र के अनुसार प्रकरण का नायक 'धीरप्रशांत' होना चाहिए। धीरप्रशांत नायक के लक्षण बताते हुए आचार्यों ने कहा है कि वह सामान्य गुणों से युक्त, शांत स्वभाव का, क्षमाशील और ब्राह्मण या वणिक होना चाहिए।

'मृच्छकटिकम्' का नायक चारुदत्त शास्त्रीय लक्षणों में पूरी तरह फिट बैठता है। वह जाति से ब्राह्मण है और वृत्ति (व्यवसाय) से वणिक (सार्थक) है।

"धीरानुकूलो धीरप्रशान्तः स्यात् ब्राह्मणो वणिकः..."

चारुदत्त अत्यंत परोपकारी, कलाप्रेमी, शीलवान और उदार हृदय व्यक्ति है। अपनी अत्यधिक दानशीलता के कारण वह निर्धन हो चुका है, परंतु दरिद्रता उसके आत्मसम्मान और उदात्त चरित्र को नष्ट नहीं कर पाती। वह अपनी दरिद्रता पर दुःख तो व्यक्त करता है, परंतु किसी के सामने हाथ फैलाता है। नाटक के प्रथम अंक में वह अपनी स्थिति पर कहता है:

दारिद्र्यान्मरणाद्वा मरणं मम रोचते न दारिद्र्यम्।

अल्पक्लेशं मरणं दारिद्र्यमनन्तकं दुःखम् ॥ मृच्छकटिकम् १/११

अर्थात् दारिद्र्य और मरण में से मुझे मरण स्वीकार्य है, क्योंकि मरण का कष्ट क्षणिक होता है, जबकि दारिद्र्य का दुःख अनंत होता है।

जब चारुदत्त पर वसंतसेना की हत्या का झूठा आरोप लगाया जाता है और उसे वध-स्थल पर ले जाया जाता है, तब भी वह चांडालों के प्रति कोई द्वेष नहीं रखता और न ही राजा के साले (शकार) को कोसता है। वह अपनी नियति को धीरतापूर्वक स्वीकार करता है। विपत्ति के उच्चतम शिखर पर भी उसकी मानसिक शांति भंग नहीं होती, जो उसके 'धीरप्रशांत' नायक होने की सर्वोच्च कसौटी है।

● नायिका-त्रैविध्य एवं मृच्छकटिकम् की 'मिश्र' श्रेणियाँ

आचार्य धनंजय ने नायिका के आधार पर प्रकरण के जो तीन भेद किए हैं शुद्ध (केवल कुलजा), विकृत (केवल गणिका) और मिश्र (कुलजा और गणिका दोनों) उनमें 'मृच्छकटिकम्' को 'मिश्र प्रकरण' की श्रेणी में शीर्ष स्थान प्राप्त है। इसमें दो विपरीत ध्रुवों वाली नायिकाओं का अत्यंत सुंदर विन्यास किया गया है:

- **कुलजा नायिका: धूता**

चारुदत्त की धर्मपत्नी 'धूता' भारतीय नारी के त्याग, पातिव्रत्य और मौन साधना की प्रतिमूर्ति है। यद्यपि पूरे रूपक में उसकी उपस्थिति बहुत कम समय के लिए है, परंतु उसका चरित्र अत्यंत प्रभावशाली है। जब चारुदत्त के घर से वसंतसेना के धरोहर के आभूषण चोरी हो जाते हैं, तो चारुदत्त के सम्मान की रक्षा के लिए वह अपनी एकमात्र मूल्यवान संपत्ति अपनी रत्नमाला अपने पति को सौंप देती है। नाटक के अंत में जब उसे चारुदत्त के मृत्युदंड का समाचार मिलता है, तो वह सती होने के लिए अग्नि में कूदने को तैयार हो जाती है। उसका चरित्र कुलवधू के आदर्शों को पूर्णतः चरितार्थ करता है।

- **गणिका नायिका: वसंतसेना**

वसंतसेना उज्जैनी की एक समृद्ध, रूपवती और कलाप्रवीण गणिका है। धनंजय के अनुसार गणिका नायिका को कलाओं में निपुण और प्रगल्भ होना चाहिए। वसंतसेना इस लक्षण से युक्त है, परंतु शूद्रक ने उसके चरित्र में एक अपूर्व वैशिष्ट्य जोड़ा है। वह गणिका कुल में उत्पन्न होने के बाद भी धन की भूखी नहीं है। वह राजा के साले शकार के अकूत धन और सत्ता को लात मारकर निर्धन लेकिन गुणवान चारुदत्त से निश्छल प्रेम करती है। वह कहती है कि "गुणों का अनुराग ही सच्चा अनुराग होता है, धन का नहीं।"

- **शास्त्रीय मर्यादा का निर्वाह**

नाट्यशास्त्रीय नियम है कि मिश्र प्रकरण में कुलजा और गणिका का रंगमंच पर मिलन या संवाद नहीं होना चाहिए, क्योंकि इससे सामाजिक मर्यादा भंग होने का भय रहता है:

"नैकवेषमनि कुलजा वेश्या च एकत्र सम्प्रवेश्यते।"

महाकवि शूद्रक ने इस कठिन शास्त्रीय नियम का अद्भुत कुशलता से पालन किया है। पूरे दस अंकों के इस विशाल नाटक में धूता और वसंतसेना कभी एक साथ मंच पर नहीं आतीं। उनका आमना-सामना केवल दसवें अंक के अंतिम दृश्यों में होता है, जहाँ धूता स्वयं वसंतसेना को 'भगिनी' (बहन) कहकर गले लगाती है और राजा आर्यक द्वारा वसंतसेना को 'कुलवधू' की उपाधि दिए जाने के बाद ही दोनों का मिलन होता है। यह शूद्रक की शास्त्रीय सजगता का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है।

- **रस-योजना: अंगी रस 'शृंगार' और अन्य सहायक रस**

प्रकरण का मुख्य (अंगी) रस शृंगार होना चाहिए। मृच्छकटिकम् में आदि से अंत तक शृंगार रस की धारा प्रवाहित होती है। शूद्रक ने यहाँ शृंगार के दोनों पक्षों संभोग शृंगार और विप्रलम्भ (वियोग) शृंगार का अत्यंत संतुलित चित्रण किया है।

- **संभोग शृंगार:** प्रथम अंक में चारुदत्त के घर वसंतसेना का प्रवेश, पाँचवें अंक में घोर वर्षा के समय दोनों का अभिसार और मिलन संभोग शृंगार के अनुपम उदाहरण हैं। पाँचवें अंक का वर्षा वर्णन संस्कृत साहित्य में अपनी उपमाओं और कामुक प्रवृत्तियों के लिए प्रसिद्ध है।
- **विप्रलम्भ शृंगार:** छठे अंक में गाड़ियों के बदल जाने (विपर्यय) के कारण दोनों का जो वियोग होता है, वह अत्यंत मार्मिक है। चारुदत्त का वसंतसेना के विरह में तड़पना और वसंतसेना का शकार द्वारा गला घोंटे जाने पर भी 'चारुदत्त' का नाम जपना विप्रलम्भ की चरम सीमा है।

अंग (सहायक) रसों का सामंजस्य

मुख्य रस शृंगार को पुष्ट करने के लिए शूद्रक ने अन्य रसों का भी सुंदर समावेश किया है:

- **हास्य रस:** विदूषक मैत्रेय के संवाद, शकार की मूर्खतापूर्ण उक्तियाँ और जुआरियों (संवाहक-माथुर) के झगड़े नाटक में उत्तम कोटि के हास्य की सृष्टि करते हैं।

- **करुण रस:** दसवें अंक में जब चारुदत्त को वध-स्थल पर ले जाया जाता है और उसका छोटा पुत्र रोहसेन अपने पिता से लिपट जाता है, तो वहाँ करुण रस का ऐसा परिपाक होता है कि पाठकों और दर्शकों की आँखें नम हो जाती हैं।
- **वीर और रौद्र रस:** चंदनक और वीरक का झगड़ा (राजपुरुषों का द्वंद्व) तथा अंत में दुष्ट राजा पालक का वध वीर और रौद्र रस को प्रदीप्त करते हैं।
- **अंक-विधान, पंचसंधियाँ और नामकरण की सार्थकता**

दश-अंक विधान

शास्त्रीय नियमानुसार प्रकरण में १० अंक होने चाहिए। मृच्छकटिकम् में कुल १० अंक हैं और प्रत्येक अंक का नामकरण उसकी मुख्य नाट्य-घटना के आधार पर किया गया है, जो इस प्रकार है:

 - अलंकारन्यास (धरोहर के रूप में आभूषण रखना)
 - द्यूतकर-संवाहक (जुआरी और संवाहक की कथा)
 - सन्धिच्छेदन (शर्विलक द्वारा चारुदत्त के घर में संधमारी)
 - मदनिका-शर्विलक (मदनिका की मुक्ति की कथा)
 - दुर्दिन (वर्षा ऋतु में अभिसार)
 - प्रवहण-विपर्यय (गाड़ियों की अदला-बदली)
 - आर्यकापहरण (आर्यक का गाड़ी में छिपना)
 - वसंतसेना-मोटन (शकार द्वारा वसंतसेना का गला घोटना)
 - व्यवहार (न्यायालय में मुकदमा)
 - संहार (चारुदत्त की मुक्ति, मिलन और उपसंहार)
- **नाटक की पंचसंधियाँ**

कथावस्तु के क्रमिक विकास के लिए नाट्यशास्त्र में पांच संधियों का विधान है मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और निर्वहण। मृच्छकटिकम् में इन संधियों का निर्वाह अत्यंत वैज्ञानिक ढंग से हुआ है:

 - **मुख संधि:** प्रथम अंक में चारुदत्त और वसंतसेना के बीच प्रेम का बीजारोपण होता है।
 - **प्रतिमुख संधि:** द्वितीय से चतुर्थ अंक तक आभूषणों की चोरी और मदनिका-शर्विलक के प्रसंग से कथा आगे बढ़ती है।
 - **गर्भ संधि:** पाँचवें और छठे अंक में दोनों का मिलन होता है, परंतु गाड़ियों के बदल जाने से कथा में नया मोड़ आता है।
 - **विमर्श संधि:** सातवें से नौवें अंक तक वसंतसेना की कथित हत्या, चारुदत्त पर मुकदमा और उसे मृत्युदंड की घोषणा से संकट गहरा जाता है।
 - **निर्वहण (कार्य) संधि:** दसवें अंक में वसंतसेना का जीवित लौट आना, राजा पालक का वध और आर्यक का राज्याभिषेक होने से सब कुछ सुखद समाप्त होता है।
- **नामकरण की मौलिकता और सार्थकता**

संस्कृत नाटकों का नामकरण प्रायः नायक या नायिका के नाम पर होता है (जैसे अभिज्ञानशाकुंतलम्, विक्रमोर्वशीयम्)। परंतु शूद्रक ने छठे अंक की एक अत्यंत लघु किंतु प्रतीकात्मक घटना 'मिट्टी की गाड़ी' (मृत्तिका-शकटिका) के आधार पर इसका नाम 'मृच्छकटिकम्' रखा।

चारुदत्त का पुत्र रोहसेन मिट्टी की गाड़ी से खेल रहा है और वह सोने की गाड़ी के लिए रोता है। वसंतसेना अपने बहुमूल्य आभूषण उस मिट्टी की गाड़ी में डाल देती है ताकि वह सोने की गाड़ी बनवा सके। यह घटना न केवल चारुदत्त की दरिद्रता और वसंतसेना की उदारता को दिखाती है, बल्कि यह पूरे नाटक का दर्शन है जीवन की नश्वरता (मिट्टी) पर भौतिक वैभव (सोने) का आरोप। शास्त्रीय दृष्टि से यह नामकरण अत्यंत अनूठा और सार्थक है।

• संवाद, भाषा-वैविध्य और लोकधर्मी तत्त्व

भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में दो प्रकार की नाट्य-धर्मियों का उल्लेख किया है नाट्यधर्मी (आदर्शवादी/काल्पनिक) और लोकधर्मी (यथार्थवादी/लौकिक)। मृच्छकटिकम् पूरी तरह से एक लोकधर्मी रूपक है।

• भाषा का अद्भुत वैविध्य (प्राकृत प्रयोग)

शूद्रक ने पात्रों के सामाजिक स्तर के अनुसार उनकी भाषा का निर्धारण किया है। नाटक के उच्च और शिष्ट पात्र (चारुदत्त, विदूषक, शर्विलक, न्यायाधीश) संस्कृत बोलते हैं। इसके विपरीत, समाज के अन्य पात्र विभिन्न प्राकृत बोलियों का प्रयोग करते हैं। मृच्छकटिकम् में लगभग सात प्रकार की प्राकृत भाषाओं का प्रयोग हुआ है:

- शौरसेनी: वसंतसेना, उसकी माता और चेटी द्वारा प्रयुक्त।
- अवन्तिका: राजपुरुष चंदनक और वीरक द्वारा प्रयुक्त।
- मागधी: राजा के साले शकार द्वारा प्रयुक्त (जो उसकी मूर्खता को दर्शाती है)।
- शकारी/चांडाली: वध-स्थल के चांडालों द्वारा प्रयुक्त।
- ढक्की: जुआरियों और माथुर द्वारा प्रयुक्त।

यह भाषाई विविधता नाटक को अत्यधिक यथार्थवादी और जीवंत बनाती है, जो कि एक आदर्श प्रकरण का मुख्य गुण है।

• सजीव और चुटीले संवाद

मृच्छकटिकम् के संवाद अत्यंत संक्षिप्त, पौने और नाटकीयता से भरे हैं। उदाहरण के लिए, तीसरे अंक में शर्विलक का चोरी (संधमारी) कला पर दिया गया भाषण अत्यंत कौतुकपूर्ण है। वह चोरी को एक 'शास्त्र' और कला के रूप में प्रस्तुत करता है:

"शिक्षाप्रणादात् पुरुषं विमृश्य..."

वह संध काटने के विभिन्न आकारों (जैसे पूर्णचंद्र, अर्धचंद्र, हाथी का पग) का शास्त्रीय विवेचन करता है, जो दर्शकों को हंसने पर विवश कर देता है।

• शास्त्रीय नियमों से विचलन एवं शूद्रक की मौलिकता

यद्यपि शूद्रक ने नाट्यशास्त्रीय नियमों का व्यापक पालन किया है, तथापि एक महान रचनाकार होने के नाते उन्होंने रूढ़ियों को तोड़ा भी है। मृच्छकटिकम् में कुछ ऐसे प्रयोग मिलते हैं जो पारंपरिक संस्कृत नाट्यशास्त्र के सिद्धांतों के विरुद्ध प्रतीत होते हैं, परंतु वे नाटक की प्रभावशीलता को बढ़ाते हैं:

- रंगमंच पर वर्जित दृश्यों का प्रदर्शन: आचार्य भरतमुनि के अनुसार रंगमंच पर वध, फांसी, युद्ध, और मृत्यु का सीधा प्रदर्शन वर्जित है। परंतु शूद्रक ने आठवें अंक में शकार द्वारा वसंतसेना का गला घोटने

(मोटन) का दृश्य और दसवें अंक में चारुदत्त को सूली पर चढ़ाए जाने की तैयारी के दृश्य को अत्यंत जीवंतता के साथ मंच पर दिखाया है।

- चोर को नायक का सखा दिखाना: शर्विलक जो कि एक ब्राह्मण है, वह चोरी करता है, परंतु उसे अंत में एक क्रांतिकारी नायक और राजा आर्यक का मुख्य सहयोगी बनाकर प्रस्तुत किया गया है।
- न्यायालय का यथार्थ चित्रण: नौवें अंक (व्यवहार अंक) में उज्जैनी के न्यायालय का जो चित्रण है, वह तत्कालीन न्याय व्यवस्था के भ्रष्टाचार, चाटुकारिता और राजा के दबाव को उजागर करता है। न्यायाधीश स्वयं स्वीकार करता है कि वह शकार के प्रभाव के कारण सच जानते हुए भी चारुदत्त को दोषी ठहराने पर मजबूर है। संस्कृत साहित्य में ऐसा यथार्थवादी कोर्ट-सीन अत्यंत दुर्लभ है।

• निष्कर्ष

उपर्युक्त विस्तृत और सांगोपांग शास्त्रीय विवेचन के आधार पर यह अकाट्य रूप से सिद्ध होता है कि महाकवि शूद्रक विरचित 'मृच्छकटिकम्' संस्कृत नाट्यशास्त्र में वर्णित प्रकरण-रूपक की कसौटी पर न केवल पूर्णतः खरा उतरता है, बल्कि यह इस विधा का 'मुकुटमणि' है।

जहाँ आचार्यों ने जो नियम कागजों पर लिखे थे, शूद्रक ने उन्हें उज्जैनी की गलियों, जुआरियों के अड्डों, वेश्याओं के प्रासादों और न्याय के कमरों में सजीव कर दिया। 'मृच्छकटिकम्' में कवि-कल्पित कथावस्तु का निर्वाह है, चारुदत्त के रूप में धीरप्रशांत नायक की गरिमा है, धूता और वसंतसेना के माध्यम से मिश्र-प्रकरण की मर्यादा का सुंदर रक्षण है, दसों अंकों का सुगठित विन्यास है और अंगी रस के रूप में शृंगार का उत्कृष्ट परिपाक है।

संक्षेप में, 'मृच्छकटिकम्' रूढ़ियों से परे यथार्थवाद का एक ऐसा अनुपम महाकाव्य है, जो अपने शास्त्रीय लक्षणों के अक्षुण्ण निर्वाह के कारण ही आज रचना के हजारों वर्ष बाद भी वैश्विक रंगमंच पर उतना ही प्रासंगिक, जीवंत और लोकप्रिय बना हुआ है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- मृच्छकटिकम् महाकवि शूद्रक, हिंदी व्याख्या सहित (चौखम्बा ओरियंटालिया, दिल्ली)।
- काव्यादर्श प्रकाशक रामचन्द्र मिश्र, प्रकाशन चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, संस्करण प्रथम १९५८
- काव्यालंकार (भामह) भामह प्रणीत, आचार्य आनन्दाङ्कर ध्रुव, चौखम्बा संस्कृत भवन, चतुर्थ संस्करण, वि.सं.2066
- दशरूपक सम्पादक भोलाशंकर व्यास, प्रकाशन चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी संस्करण नवम १९६०
- साहित्यदर्शन विश्वनाथ आचार्य कविराज प्रणीत, 'मंजू' संस्कृतव्याख्या हिंदुवादोपेट, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, गोपाल मंदिर लेन के 37/ 117, पो. बो. नं. 1129, वाराणसी, संस्करण 2017
- नाट्यशास्त्र (भरतमुनि) अभिनवभारती टीकासहित, संपादक डॉ. पारसनाथ द्विवेदी, सम्पूर्णनानन्द संस्कृत दशर
- भारतीय संस्कृत काव्य का इतिहास राजवंश सहाय 'हिरा', चौखम्बा, विद्याभवन, वाराणसी- 2007

कृष्णकथा आधारित प्रमुख दूतकाव्यों में रस-निरूपणः विप्रलम्भ शृङ्गार और भक्तिरस का समन्वय

डॉ. सतीशकुमार गोरधनभाई गांगानी
एम.ए., एम.फिल., पीएच. डी

सारांश

संस्कृत काव्यशास्त्र की सुदीर्घ परम्परा में रस को 'काव्य की आत्मा' (वाक्यं रसात्मकं काव्यम्) स्वीकार किया गया है। महाकवि कालिदास विरचित 'मेघदूत' से अनुप्राणित होकर उत्तरवर्ती मध्यकाल एवं आधुनिक काल के वैष्णव कवियों ने जब कृष्णकथा को अपना मुख्य उपजीव्य (मूलाधार) बनाया, तब दूतकाव्य विधा में एक युगांतरकारी रस-परिवर्तन देखने को मिला। इन वैष्णव दूतकाव्यों का चरम वैशिष्ट्य लौकिक काम-शृङ्गार का परित्याग कर उसे अलौकिक भक्ति रस में परिणत करना है।

प्रस्तुत शोध-पत्र में रूपगोस्वामी कृत 'उद्धवसन्देश' व 'हंसदूत', श्रीकृष्णसार्वभौम विरचित 'पदाङ्कदूत', तैलङ्ग ब्रजनाथ रचित 'मनोदूतम्' और माधवकवीन्द्र के 'उद्धवदूत' के विशेष संदर्भ में रस-निरूपण की शास्त्रीय प्रक्रिया का अध्ययन किया गया है। यह आलेख इस बात का गंभीर अन्वेषण करता है कि किस प्रकार इन कवियों ने विप्रलम्भ शृङ्गार के विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों का कलात्मक गुंफन करते हुए उसे अंततः 'उज्ज्वल रस' अर्थात् 'मधुरा भक्ति रस' के सर्वोच्च शिखर पर प्रतिष्ठित किया है।

कुंजी शब्द (Keywords): विप्रलम्भ शृङ्गार, भक्तिरस, उज्ज्वल रस, रूपगोस्वामी, मनोदूतम्, रस-समन्वय, काव्यशास्त्र।

• प्रस्तावना

संस्कृत वाङ्मय में दूतकाव्य अथवा सन्देशकाव्य मूलतः खण्डकाव्य की एक सुकुमार विधा है। कालिदासीय परम्परा में दूतकाव्य का मुख्य अंगी रस विप्रलम्भ शृङ्गार रहा है, जहाँ यक्ष और यक्षिणी का विरह लौकिक धरातल पर अपनी विवशता को प्रकट करता है। किंतु मध्यकाल में जब गौड़ीय वैष्णव भक्ति आंदोलन का प्रादुर्भाव हुआ, तब रूपगोस्वामी आदि आचार्य-कवियों ने रसशास्त्र को एक नूतन दार्शनिक आयाम दिया। उन्होंने भरतमुनि के नाट्यशास्त्र के भाव-जगत का विस्तार करते हुए 'भक्ति' को केवल भाव न मानकर उसे स्वतंत्र 'रस' (भक्तिरसामृतसिंधु के अनुसार) के रूप में स्थापित किया।

जब श्रीकृष्ण ब्रजमंडल, गोपियों और राधा को छोड़कर कंस-वध हेतु मथुरा प्रस्थान कर जाते हैं, तब पीछे छोटे ब्रजवासियों की विरह-व्याकुलता केवल एक लौकिक वियोग नहीं रह जाती। वह जीवात्मा की परमात्मा से मिलन की परम तड़प बन जाती है। यहीं से कृष्णकथा आधारित दूतकाव्यों में विप्रलम्भ शृङ्गार और भक्तिरस के अपूर्व समन्वय की रस-गंगा प्रवाहित होती है, जिसका अध्ययन साहित्य और अध्यात्म दोनों दृष्टियों से अनिवार्य है।

• रस-निरूपण का शास्त्रीय स्वरूप

रस निष्पत्ति के संदर्भ में आचार्य भरत का सूत्र है- 'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगा-द्रसनिष्पत्तिः'। शृङ्गार रस के दो पक्ष हैं- संयोग और विप्रलम्भ। काव्यशास्त्रियों के अनुसार बिना विप्रलम्भ (विरह) के संयोग शृङ्गार अपनी पूर्ण परिपुष्टि को प्राप्त नहीं कर सकता:

“न विना विप्रलम्भेण शृङ्गारः पुष्टिमश्नुते।”

कृष्णकथा आश्रित दूतकाव्यों में विप्रलम्भ के चारों प्रकार- पूर्वराग, मान, प्रवास और करुण-विप्रलम्भ में से मुख्य रूप से ‘प्रवास-विप्रलम्भ’ का आश्रय लिया गया है, क्योंकि यहाँ श्रीकृष्ण मथुरा प्रवास पर हैं। वैष्णव रसशास्त्र में इस प्रवास जनित विरह को ‘प्रेमवैचित्त्य’ और ‘महाभाव’ की संज्ञा दी गई है, जहाँ विरह की सांद्रता इतनी सघन हो जाती है कि वह स्वतः शांत रस और अंततः भक्ति रस का रूप ले लेती है।

• प्रमुखाधारित दूतकाव्यों में विप्रलम्भ शृङ्गार का स्वरूप

अध्येय दूतकाव्यों में विप्रलम्भ शृङ्गार के अंग (विभाव, अनुभाव आदि) अत्यंत कलात्मक रूप से गुंफित हैं:

■ आलम्बन और उद्दीपन विभाव

आलम्बन विभाव: इन काव्यों में आलम्बन स्वयं अखिलरसामृतसिंधु भगवान श्रीकृष्ण (नायक) और परम आल्हादिनी शक्ति श्रीराधा एवं गोपिकाएँ (नायिका) हैं। श्रीकृष्ण का सौंदर्य और उनका विरह ही रस का मूल कारण है।

उद्दीपन विभाव: ब्रज की कुंज-गलियाँ, यमुना का कछार, कदंब के वृक्ष, भ्रमरों का गुंजन, मंद पवन, वर्षा और शरद ऋतु का आगमन विरही हृदय की अग्नि को और अधिक प्रदीप्त करते हैं। ‘उद्धवसन्देश’ और ‘हंसदूत’ में रूपगोस्वामी ने वृंदावन की प्रकृतिक छटा का उद्दीपन रूप में वर्णन करते हुए विप्रलम्भ को चरम सीमा पर पहुँचाया है।

■ अनुभाव और व्यभिचारी भाव

विरहावस्था में नायिका की शारीरिक और मानसिक चेष्टाएँ ‘अनुभाव’ कहलाती हैं। इन काव्यों में राधा और गोपियों का प्रलाप, अश्रु-प्रवाह, मूर्च्छा, जड़ता और शून्यता का चित्रण अनुभाव के रूप में हुआ है।

व्यभिचारी भावों में स्मृति, दैन्य, चिंता, विषाद, उन्माद और व्याधि का ऐसा सजीव चित्रण है कि पाठक का हृदय करुणा और प्रेम से भर जाता है। ‘उद्धवदूत’ में माधवकवीन्द्र ने राधा की उस मनावस्था का वर्णन किया है जहाँ वे कृष्ण की स्मृति में इतनी खो जाती हैं कि उन्हें बाह्य जगत का तनिक भी भान नहीं रहता।

• विप्रलम्भ का भक्तिरस में रूपांतरण: समन्वय की प्रक्रिया

कृष्णकथा आधारित दूतकाव्यों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यहाँ विप्रलम्भ शृङ्गार लौकिक वासना या शोक में समाप्त नहीं होता, बल्कि उसका उदात्तीकरण (Sublimation) हो जाता है। यह समन्वय निम्नलिखित सोपानों के माध्यम से स्पष्ट होता है:

■ ज्ञान पर भक्ति की विजय

जब ज्ञानी उद्धव ब्रज में गोपियों को निर्गुण निराकार ब्रह्म का उपदेश देने आते हैं, तो उनका उद्देश्य गोपियों के विरह को शांत करना होता है। परंतु गोपियों का विप्रलम्भ शृङ्गार इतना प्रगाढ़ है कि वे उद्धव से कहती हैं कि उनके पास कोई दूसरा मन नहीं है जो निर्गुण की उपासना करे- “ऊधो मन न भाए दस बीस” (श्रीमद्भागवत के भ्रमरगीत का प्रभाव)।

रस समन्वय: यहाँ आकर विप्रलम्भ शृङ्गार ज्ञान को परास्त कर देता है। उद्धव स्वयं गोपियों के चरणों की धूलि बनने की कामना करने लगते हैं। इस प्रकार, कामजन्य विरह यहाँ ‘गोपी-भाव’ नामक शुद्ध भक्ति रस में परिवर्तित हो जाता है।

● जड़ और चेतन का अभेदीकरण

श्रीकृष्णसार्वभौम के 'पदाङ्कदूत' में जब गोपियाँ श्रीकृष्ण के विरह में गोवर्धन पर्वत पर उनके चरणों के चिह्नों (पदाङ्क) को दूत बनाती हैं, तो वह विप्रलम्भ की उस अवस्था को दर्शाता है जिसे शास्त्र में 'उन्माद' या 'मूर्च्छा' कहा गया है।

रस समन्वय: यहाँ जड़ चरण-चिह्नों में भी परमात्मा की चेतना का दर्शन होना भक्त की उस पराकाष्ठा को सिद्ध करता है जहाँ संपूर्ण जगत 'वासुदेवमय' प्रतीत होने लगता है (सर्वं खल्विदं ब्रह्म)। यह विप्रलम्भ शृङ्गार का शुद्ध शांत और भक्ति रस में अद्भुत समन्वय है।

■ अंतःकरण की शुद्ध यात्रा

तैलङ्ग व्रजनाथ कृत 'मनोदूतम्' में द्रौपदी का विरह और अंततः भक्त का भगवान के प्रति आर्तनाद मुख्य विषय है। बाह्य दूतों को छोड़कर 'मन' को दूत बनाना ही यह सिद्ध करता है कि विरह अब लौकिक धरातल से उठकर आध्यात्मिक धरातल पर आ चुका है।

रस समन्वय: मन की चंचलता को श्रीकृष्ण के चरणों की ओर मोड़ना ही साध्य है। यहाँ विप्रलम्भ शृङ्गार का करुण भाव भक्त की शरणागति (प्रपत्ति) में बदल जाता है, जो गौडीय वैष्णव मत में भक्ति रस का मूलाधार है।

● काव्यशास्त्रीय तत्व और रस-पुष्टि

रस की सम्यक निष्पत्ति के लिए छन्द, अलंकार और गुणों का अनुकूल होना अनिवार्य है। इन दूतकाव्यों में कवियों ने रस के अनुकूल ही शिल्प का चयन किया है:

■ छन्द योजना

मन्दाक्रान्ता छन्द: कालिदास की परम्परा का निर्वहन करते हुए 'उद्धवसन्देश' और 'पदाङ्कदूत' में मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग किया गया है। इसकी मंद गति विरह के धीमे और गहरे दर्द को अभिव्यक्त करने के लिए सर्वथा उपयुक्त है।

शिखरिणी छन्द: 'मनोदूतम्' और 'हंसदूत' में प्रयुक्त शिखरिणी छन्द अपने आरोह-अवरोह के कारण विरही मन की तड़प, व्याकुलता और उद्वेग को सजीव कर देता है, जिससे विप्रलम्भ और भक्ति दोनों रसों की समान रूप से पुष्टि होती है।

■ गुण और रीति

इन काव्यों में 'माधुर्य गुण' और 'वैदर्भी रीति' की प्रधानता है। माधुर्य गुण चित्त को द्रवीभूत करने वाला होता है, जो विप्रलम्भ शृङ्गार और भक्ति रस दोनों का सामान्य लक्षण है। कोमल कांत पदावली के कारण रस का आस्वादन पाठक के अंतःकरण में सहजता से हो जाता है।

● तार्किक विमर्श: 'मेघदूत' से रस-गत भिन्नता

यद्यपि ये सभी काव्य विधागत रूप से कालिदास के 'मेघदूत' के ऋणी हैं, परंतु रस-दृष्टि से इनमें महती भिन्नता है:

- ✓ रस तत्व महाकवि कालिदासकृत 'मेघदूत' कृष्णकथा आधारित परवर्ती दूतकाव्य
- ✓ मूल रस (अंगी रस) विशुद्ध लौकिक विप्रलम्भ शृङ्गार विप्रलम्भ शृङ्गार और अलौकिक भक्तिरस का समन्वय

- ✓ विरह का उद्देश्य शारीरिक एवं मानसिक काम-सुख की पुनः प्राप्ति जीव का परमात्मा से मिलन एवं आत्म-निवेदन
- ✓ नायिका का स्वरूप स्वकीया मानुषी यक्षिणी (भोग्या रूप) श्रीराधा (आल्हादिनी महाभाव स्वरूप, पूज्या रूप)
- ✓ रस का अवसान लौकिक मिलन की आशा पर शाश्वत गोपी-भाव और अनन्य शरणागति पर
- **वर्तमान परिप्रेक्ष्य में रस-समन्वय की प्रासंगिकता**

आज का २१वीं सदी का मानव अत्यधिक भौतिकतावादी और यांत्रिक जीवन जी रहा है। काम, क्रोध और मानसिक तनाव (Depression) के इस युग में इन दूतकाव्यों में वर्णित रस-समन्वय अत्यंत प्रासंगिक है:

भावनात्मक सुदृढता (Emotional Resilience): विप्रलम्भ शृङ्गार सिखाता है कि दुःख और वियोग भी जीवन का एक सुंदर हिस्सा हैं। जब इस दुःख को भक्ति (ईश्वर या किसी उच्च आदर्श के प्रति समर्पण) से जोड़ दिया जाता है, तो मनुष्य अवसाद से बच जाता है।

उदात्त प्रेम का संदेश: आज के युग में जहाँ प्रेम संकुचित और स्वार्थप्रेरित होता जा रहा है, वहाँ ये काव्य निष्काम, पवित्र और सात्त्विक प्रेम का 'मानवतावादी शुभ संदेश' देते हैं।

● निष्कर्ष

विहंगावलोकन के रूप में यह अकादमिक निष्कर्ष निकलता है कि कृष्णकथा आधारित प्रमुख दूतकाव्य केवल विरह के रुदन-काव्य नहीं हैं, अपितु वे रसशास्त्र के महान प्रयोग हैं। रूपगोस्वामी, श्रीकृष्णसार्वभौम और तैलङ्ग ब्रजनाथ जैसे मूर्धन्य कवियों ने विप्रलम्भ शृङ्गार की लौकिक अग्नि में तपाकर भक्ति रस का जो स्वर्ण आभूषण तैयार किया है, वह संस्कृत साहित्य की अमूल्य निधि है। इन काव्यों में लौकिक प्रेम सीढ़ियाँ चढ़ता हुआ अलौकिक भगवद्-अनुराग में परिणत हो जाता है। अतः विप्रलम्भ और भक्ति का यह समन्वय न केवल साहित्यिक कौतुक है, बल्कि मानव हृदय को परम शांति और आनंद प्रदान करने वाला एक शाश्वत और सार्वभौमिक मार्ग भी है।

● सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- भक्तिसामृतसिंधु : रूपगोस्वामी विरचित, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी 1961- प्रथम प्रमुख संस्करण, डॉ. जनार्दन शास्त्री द्वारा व्याख्यायित
- उज्ज्वलनीलमणि : रूपगोस्वामी विरचित, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी 1985
- उद्धवसन्देश : रूपगोस्वामी विरचित, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी 1990
- हंसदूत : रूपगोस्वामी विरचित, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी 1969 / 1982 संस्कृत सीरीज ग्रन्थमाला
- मनोदूतम् : तैलङ्ग ब्रजनाथ कृत प्राच्यविद्या अनुशीलन पत्रिका (अलीगढ़/वाराणसी) 1970-1980
- पदाङ्कदूत : श्रीकृष्णसार्वभौम विरचित, संस्कृत साहित्यानुशीलन संस्थान, कोलकाता 1978
- मेघदूतम् : महाकवि कालिदास – मल्लिनाथ कृत संजीवनी टीका सहित) चौखम्बा सुरभारती / चौखम्बा ओरियन्टालिया, वाराणसी 1965
- श्रीमद्भागवत-महापुराण (दशम स्कन्ध) गीताप्रेस, गोरखपुर 1940
- संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास : डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, रामनारायणलालबेनीप्रसाद, रामदास, इलाहाबाद 2018 चतुर्थ संस्करण
- संस्कृत आलोचना और रस-सिद्धांत : आचार्य बलदेव उपाध्याय शारदा संस्थान चौखम्बा, वाराणसी -1982

'किरातार्जुनीयम्' में वाक्य-विस्तार एवं संक्षेपः दीर्घतम वाक्य और अध्याहत पदों का भाषाशास्त्रीय विमर्श

डॉ. हितेंद्रसिंह दशरथसिंह विहोल

पीएच.डी. शोधच्छात्र,
सौराष्ट्र युनिवर्सिटी - राजकोट

सारांश

महाकवि भारवि अपनी शैली 'अर्थगौरव' के लिए प्रसिद्ध हैं, जिसका अर्थ है थोड़े शब्दों में बहुत कुछ कहना। किन्तु विरोधाभासी रूप से, उनके महाकाव्य 'किरातार्जुनीयम्' में संस्कृत साहित्य के कुछ अत्यंत जटिल और 'दीर्घतम वाक्य' (Longest Sentences) भी पाए जाते हैं। साथ ही, अनेक स्थानों पर वाक्य इतने संक्षिप्त हैं कि अर्थ स्पष्ट करने के लिए पदों का 'अध्याहार' (Ellipsis/Supplying implied words) करना पड़ता है। प्रस्तुत शोध पत्र इन दो विपरीत ध्रुवों-वाक्य विस्तार (दीर्घता) और वाक्य संक्षेप (अध्याहार)-का तुलनात्मक और विश्लेषणात्मक अध्ययन करता है। इसमें महाकाव्य के 'कुलक' श्लोकों और टीकाकारों (विशेषकर मल्लिनाथ) द्वारा पूरित पदों की भूमिका का भी विवेचन किया गया है।

कुंजी शब्दः दीर्घतम वाक्य, अध्याहार, अध्याहत पद, कुलक, किरातार्जुनीयम्, मल्लिनाथ, वाक्य-विन्यास।

➤ प्रस्तावना

संस्कृत वाक्य-विन्यास में वाक्य की लंबाई निश्चित नहीं होती। यह वक्ता की विवक्षा (Intention) और समास (Compound words) की शैली पर निर्भर करता है। भारवि ने वाक्य रचना के इन दोनों आयामों का प्रयोग किया है।

एक ओर जहाँ वे ५-६ श्लोकों का एक ही वाक्य बनाते हैं (दीर्घता), वहीं दूसरी ओर वे क्रियाविहीन वाक्यों का प्रयोग करते हैं जहाँ पाठक को स्वयं क्रिया का अनुमान लगाना पड़ता है (संक्षेप)। यह शोध पत्र भारवि की इस 'रबर-जैसी' (Elastic) भाषा शैली का अन्वेषण करता है।

➤ किरातार्जुनीयम् में वर्णित दीर्घतम वाक्य-विमर्श

'दीर्घतम वाक्य' वे हैं जो एक श्लोक की सीमा को पार कर कई श्लोकों तक विस्तारित होते हैं, या जिनमें लंबे समासों का प्रयोग होता है।

• महाकाव्य में 'कुलक' का प्रयोग

संस्कृत काव्यशास्त्र के अनुसार, जब ५ या उससे अधिक श्लोक मिलकर एक ही वाक्य (एक मुख्य क्रिया) का निर्माण करते हैं, तो उसे 'कुलक' कहते हैं।

- ✓ **विश्लेषणः** 'किरातार्जुनीयम्' के वर्णनात्मक सर्गों (जैसे सर्ग ४ - शरद वर्णन, या सर्ग ५ - हिमालय वर्णन) में भारवि ने कुलक का प्रयोग किया है।

- ✓ उदाहरण: सर्ग ५ में हिमालय की शोभा का वर्णन करते समय कई श्लोकों में केवल विशेषण दिए गए हैं, और मुख्य क्रिया (Main Verb) अंत में आती है। इससे पाठक की जिज्ञासा अंत तक बनी रहती है।
- ✓ (विस्तार निर्देश: यहाँ सर्ग ५ के किसी कुलक का उदाहरण दें और दिखाएं कि कैसे ५ श्लोकों का अन्वय एक साथ होता है।)
- दीर्घ समासों द्वारा वाक्य विस्तार
भारवि ने गद्य की भांति पद्य में भी लंबे समासों का प्रयोग किया है, जिससे वाक्य दीर्घ हो जाते हैं। इसे 'ओज गुण' की प्रधानता माना जाता है। युद्ध वर्णन (सर्ग १५-१७) में सामासिक पदावली वाक्यों को दीर्घ और गंभीर बनाती है।
- अन्य ग्रन्थों से तुलना
जैसा कि मैं इंगित है, बाणभट्ट की 'कादम्बरी' (गद्य) के दीर्घ वाक्यों की तुलना भारवि के पद्यमय दीर्घ वाक्यों से करना प्रासंगिक है। भारवि पद्य की सीमाओं (छंद) में बंधे होने के बावजूद गद्य जैसा प्रवाह उत्पन्न करते हैं।
- अध्याहत पदों से युक्त वाक्यरचना
'अध्याहार' (Ellipsis) संस्कृत व्याख्या की एक अनिवार्य प्रक्रिया है। यह तब होता है जब कवि छंद की सीमाओं या संक्षेप (Brevity) के कारण वाक्य में किसी पद को छोड़ देता है, क्योंकि वह संदर्भ से स्पष्ट होता है।
- किरातार्जुनीयम् के टीकाकारों द्वारा प्रयुक्त पद
मल्लिनाथ सूरि ने अपनी 'घण्टापथ' टीका में अक्सर लिखा है: "अत्र ... इति पदं अध्याहार्यम्" (यहाँ ... पद का अध्याहार करना चाहिए)।
- ✓ क्रिया का अध्याहार: संस्कृत में 'अस्ति' (है) और 'भवति' (होता है) जैसी संयोजक क्रियाओं (Copula verbs) का लोप सामान्य है। भारवि इसका प्रचुर प्रयोग करते हैं।
- ✓ उदाहरण: प्रथम सर्ग के श्लोक जहाँ बनेचर केवल स्थिति बताता है, वहाँ 'अस्ति' क्रिया लुप्त रहती है।
- ✓ कर्तृ/कर्म का अध्याहार: कभी-कभी कर्ता पूर्व श्लोक से ग्रहण किया जाता है।
- अनुवादक एवं पाठक द्वारा प्रयोजित नए पद
आधुनिक अनुवादकों को भारवि के श्लोकों का अर्थ स्पष्ट करने के लिए कोष्ठक (Bracket) में कई शब्द जोड़ने पड़ते हैं।
- समीक्षा: यह दर्शाता है कि भारवि की शैली कितनी सघन (Dense) है। वे अनावश्यक शब्दों का भार काव्य पर नहीं डालते। इसे ही 'अर्थगौरव' कहा जाता है-कम शब्दों में पूर्ण अर्थ।
- अध्याहत पदों की समीक्षा
अध्याहत पद केवल 'छूटे हुए शब्द' नहीं हैं, बल्कि वे कवि द्वारा पाठक को दी गई एक चुनौती हैं। पाठक को सक्रिय होकर (Actively involved) अर्थ निकालना पड़ता है।

➤ पंचविधि वाक्यों की समीक्षा और भाषाशास्त्रीय निष्कर्ष

• संक्षेप और विस्तार का संतुलन

भारवि अद्भुत संतुलन साधते हैं। जब वे प्रकृति या सेना का भव्य रूप दिखाना चाहते हैं, तो 'दीर्घतम वाक्यों' का प्रयोग करते हैं। जब वे नीति या कूटनीति का सूत्र देना चाहते हैं, तो 'अध्याहत पदों' वाले संक्षिप्त वाक्यों का प्रयोग करते हैं।

• अर्थ-संप्रेषण की प्रक्रिया

दीर्घ वाक्य 'वर्णन' (Description) के लिए हैं, जबकि संक्षिप्त/अध्याहत वाक्य 'चिंतन' (Reflection) के लिए हैं।

➤ निष्कर्ष

'किरातार्जुनीयम्' में वाक्य-विन्यास का यह द्वैत (Duality) भारवि की भाषाई क्षमता का परिचायक है। उन्होंने दिखाया कि संस्कृत भाषा रबर की तरह है- इसे आवश्यकतानुसार कितना भी खींचा (दीर्घ वाक्य) या सिकोड़ा (अध्याहार) जा सकता है, बिना अर्थ को खोए।

➤ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- भारवि, किरातार्जुनीयम् (मल्लिनाथकृत घण्टापथटीकासहितम्), निर्णयसागर प्रेस, मुम्बई।
- Abhyankar, K.V. A Dictionary of Sanskrit Grammar (for definition of Adhyahara and Kulaka), Oriental Institute, Baroda.
- Speijer, J.S. Sanskrit Syntax (Section on Ellipsis), Motilal Banarsidass.
- पाण्डेय, डॉ. रामअवध. संस्कृत साहित्य में वाक्य-विन्यास, चौखम्बा प्रकाशन।

‘भीमायनम्’ महाकाव्य में सामाजिक दायित्व एवं राजनैतिक दर्शन ।

डॉ. कान्तिलाल जी. काथड

सारांश

प्रस्तुत शोध-लेख प्रभाकरशंकर जोशी प्रणीत ‘भीमायनम्’ महाकाव्य के आलोक में डॉ. भीमराव रामजी अम्बेडकर के सामाजिक दायित्व एवं राजनीतिक दर्शन का विश्लेषण करता है। भारतीय समाज में व्याप्त जातिगत भेदभाव, सामाजिक असमानता और शोषण के विरुद्ध अम्बेडकर द्वारा किए गए संघर्षों को इस महाकाव्य में सशक्त साहित्यिक अभिव्यक्ति मिली है। भीमायनम् केवल अम्बेडकर के जीवन प्रसंगों का काव्यात्मक चित्रण नहीं करता, बल्कि समानता, शिक्षा, नारी सशक्तीकरण, बन्धुत्व, संवैधानिक मूल्य और सामाजिक न्याय जैसे उनके मूल विचारों को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करता है। महाकाव्य में वर्णित घटनाएँ अम्बेडकरवादियों के लिए मार्गदर्शक सिद्ध होती हैं और यह संदेश देती हैं कि सामाजिक परिवर्तन केवल विचारों से नहीं, बल्कि व्यवहारिक प्रतिबद्धता से संभव है। इस प्रकार भीमायनम् महाकाव्य समतामूलक, न्यायपूर्ण और मानवीय समाज के निर्माण की प्रेरणा प्रदान करता है।

कुंजी शब्द (Keywords) : भीमायनम्, डॉ. भीमराव अम्बेडकर, सामाजिक दायित्व, सामाजिक न्याय, समानता, बन्धुत्व, शिक्षा, नारी सशक्तीकरण, संवैधानिक मूल्य, अम्बेडकरवाद

• भूमिका

भारतीय समाज का इतिहास सामाजिक विषमताओं, जातिगत विभेदों तथा असमानताओं से युक्त रहा है। यद्यपि भारतीय संस्कृति का मूलाधार "सर्वे भवन्तु सुखिनः" तथा "वसुधैव कुटुम्बकम्" जैसे आदर्श रहे हैं, तथापि व्यवहारिक जीवन में अनेक वर्गों को सामाजिक अन्याय एवं भेदभाव का सामना करना पड़ा। विशेषतः तथाकथित अस्पृश्य एवं दलित समुदायों को शिक्षा, धर्म, अर्थ तथा सामाजिक प्रतिष्ठा से वंचित रखा गया। ऐसे समय में डॉ. भीमराव रामजी अम्बेडकर ने सामाजिक न्याय, समानता तथा मानवाधिकारों के लिए संघर्ष करते हुए भारतीय समाज को नवीन दिशा प्रदान की।

डॉ. अम्बेडकर केवल संविधान निर्माता नहीं थे, अपितु वे एक महान समाज-सुधारक, दार्शनिक, अर्थशास्त्री, विधिवेत्ता तथा मानवतावादी चिन्तक भी थे। उन्होंने दलितों, महिलाओं, श्रमिकों तथा समाज के वंचित वर्गों के अधिकारों की रक्षा के लिए जीवनपर्यन्त संघर्ष किया। उनका सम्पूर्ण जीवन सामाजिक परिवर्तन का प्रेरणास्रोत है।

संस्कृत साहित्य में भी डॉ. अम्बेडकर के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को आधार बनाकर अनेक रचनाएँ लिखी गई हैं। उनमें प्रभाकरशंकर जोशी द्वारा रचित ‘भीमायनम्’ महाकाव्य विशेष महत्त्व रखता है। यह महाकाव्य केवल डॉ. अम्बेडकर के जीवन का वर्णन नहीं करता, बल्कि उनके सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक विचारों का भी सशक्त प्रस्तुतीकरण करता है। महाकाव्य में अम्बेडकर के संघर्ष, अस्पृश्यता-विरोधी आन्दोलन, शिक्षा के प्रति आग्रह तथा समतामूलक समाज की स्थापना के प्रयासों का अत्यन्त प्रभावशाली चित्रण हुआ है।

● सामाजिक दायित्व

आज के समय में जो व्यक्ति स्वयं को अम्बेडकरवादी कहता है, उसके लिए केवल अम्बेडकर के नाम का स्मरण पर्याप्त नहीं है, बल्कि उनके आदर्शों को व्यवहार में उतारना भी आवश्यक है। इसी दृष्टि से 'भीमायनम्' महाकाव्य के आलोक में अम्बेडकरवादियों के सामाजिक दायित्वों का विवेचन किया जा रहा है।

1. समानता की स्थापना एवं संरक्षण

डॉ. अम्बेडकर का सम्पूर्ण जीवन सामाजिक समानता की स्थापना के लिए समर्पित था। उन्होंने जाति-व्यवस्था को भारतीय समाज की सबसे बड़ी समस्या माना। उनका विचार था कि जब तक जातिगत भेदभाव समाप्त नहीं होगा, तब तक वास्तविक लोकतन्त्र स्थापित नहीं हो सकता।

'भीमायनम्' में अम्बेडकर के बाल्यकाल से ही उन्हें झेलनी पड़ी सामाजिक उपेक्षाओं का वर्णन मिलता है। विद्यालय में पृथक बैठाना, पानी तक छूने की अनुमति न देना तथा सामाजिक बहिष्कार जैसी घटनाएँ उनके संघर्ष की पृष्ठभूमि बनती हैं।

अतः अम्बेडकरवादियों का प्रथम सामाजिक दायित्व है कि वे जाति, वर्ण, धर्म अथवा लिंग के आधार पर होने वाले भेदभाव का विरोध करें। समाज में समता, बन्धुत्व तथा मानव-मर्यादा के मूल्यों का प्रचार करें तथा प्रत्येक व्यक्ति को सम्मानजनक जीवन जीने का अवसर प्रदान करने हेतु कार्य करें।

2. शिक्षा का व्यापक प्रसार

डॉ. अम्बेडकर शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन का सबसे प्रभावी साधन मानते थे। उनका प्रसिद्ध सूत्र- "शिक्षित बनो, संगठित रहो, संघर्ष करो"- आज भी समान रूप से प्रासंगिक है।

अम्बेडकर का विश्वास था कि शिक्षा के बिना व्यक्ति अपने अधिकारों के प्रति जागरूक नहीं हो सकता। शिक्षा ही उसे आत्मविश्वास, आत्मनिर्भरता तथा सामाजिक प्रतिष्ठा प्रदान करती है।

'भीमायनम्' में भी उनके अध्ययनशील व्यक्तित्व तथा उच्च शिक्षा प्राप्त करने के संघर्ष का विस्तार से वर्णन मिलता है। विपरीत परिस्थितियों के बावजूद उन्होंने कोलम्बिया विश्वविद्यालय तथा लन्दन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स जैसी विश्वप्रसिद्ध संस्थाओं से शिक्षा प्राप्त की।

अतः अम्बेडकरवादियों का दायित्व है कि वे समाज के पिछड़े वर्गों, महिलाओं तथा आर्थिक रूप से कमजोर विद्यार्थियों को शिक्षा उपलब्ध कराने हेतु छात्रवृत्ति, पुस्तकालय, कोचिंग केन्द्र तथा शैक्षिक जागरूकता अभियानों का संचालन करें।

3. नारी सशक्तीकरण

डॉ. अम्बेडकर महिलाओं के अधिकारों के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने महिलाओं को शिक्षा, सम्पत्ति, विवाह तथा सामाजिक जीवन में समान अधिकार दिलाने के लिए अनेक प्रयास किए। हिन्दू कोड बिल के माध्यम से उन्होंने महिलाओं को कानूनी अधिकार प्रदान करने का प्रयास किया।

उनका विश्वास था कि किसी समाज की प्रगति का आकलन वहाँ की महिलाओं की स्थिति से किया जा सकता है। इसलिए महिला उत्थान के बिना सामाजिक विकास की कल्पना अधूरी है।

अम्बेडकरवादियों को चाहिए कि वे बालिका शिक्षा, महिला स्वास्थ्य, रोजगार, आर्थिक स्वावलम्बन तथा राजनीतिक सहभागिता को बढ़ावा दें। महिलाओं के विरुद्ध हिंसा, भेदभाव तथा शोषण के विरुद्ध सामाजिक जागरूकता उत्पन्न करें।

4. सामाजिक एकता और बन्धुत्व का विकास

भारतीय समाज विविध धर्मों, भाषाओं, संस्कृतियों एवं जातियों का संगम है। ऐसी स्थिति में सामाजिक एकता बनाए रखना अत्यन्त आवश्यक है।

डॉ. अम्बेडकर ने संविधान में स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुत्व को लोकतन्त्र का आधार माना। उनके अनुसार बन्धुत्व के बिना न तो समानता सुरक्षित रह सकती है और न ही स्वतन्त्रता।

‘भीमायनम्’ में अम्बेडकर के ऐसे प्रयासों का वर्णन मिलता है, जिनके माध्यम से वे समाज के विभिन्न वर्गों को एक सूत्र में बाँधना चाहते थे।

अतः अम्बेडकरवादियों को सामाजिक सौहार्द, पारस्परिक सम्मान तथा राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करने के लिए कार्य करना चाहिए। उन्हें जातीय एवं धार्मिक वैमनस्य को समाप्त करने में सक्रिय भूमिका निभानी चाहिए।

5. धार्मिक सुधार एवं मानवतावादी दृष्टिकोण

डॉ. अम्बेडकर ने धर्म को मानव कल्याण का साधन माना, न कि सामाजिक शोषण का माध्यम। उन्होंने धार्मिक अन्धविश्वासों, रूढ़ियों तथा जातिगत भेदभाव का विरोध किया।

बौद्ध धर्म ग्रहण करते समय उन्होंने समता, करुणा तथा प्रज्ञा को जीवन का आधार बनाया। उनका विचार था कि धर्म मानवता की सेवा और सामाजिक न्याय को प्रोत्साहित करने वाला होना चाहिए।

अतः अम्बेडकरवादियों को धार्मिक सहिष्णुता, वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा मानवतावादी मूल्यों का प्रचार करना चाहिए। धर्म के नाम पर फैलाए जाने वाले भेदभाव और घृणा का विरोध करना चाहिए।

6. न्याय व्यवस्था एवं संवैधानिक मूल्यों की रक्षा

डॉ. अम्बेडकर भारतीय संविधान के प्रमुख शिल्पकार थे। उन्होंने संविधान के माध्यम से सामाजिक न्याय, समान अवसर तथा मौलिक अधिकारों को सुनिश्चित किया।

आज भी समाज में अनेक लोग अपने अधिकारों से अनभिज्ञ हैं। अनेक वर्ग न्याय प्राप्त करने में कठिनाइयों का सामना करते हैं। ऐसे में अम्बेडकरवादियों का दायित्व है कि वे संविधान के प्रति जन-जागरूकता फैलाएँ तथा लोगों को उनके अधिकारों और कर्तव्यों के विषय में शिक्षित करें।

संवैधानिक मूल्यों-न्याय, स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुत्व-की रक्षा करना प्रत्येक अम्बेडकरवादी का प्रमुख कर्तव्य है।

7. आर्थिक सशक्तीकरण

डॉ. अम्बेडकर का मानना था कि सामाजिक समानता तब तक अधूरी है जब तक आर्थिक समानता स्थापित नहीं होती। आर्थिक रूप से निर्भर व्यक्ति अपने अधिकारों का प्रभावी ढंग से उपयोग नहीं कर सकता।

उन्होंने श्रमिकों के अधिकारों, भूमि सुधार, औद्योगिक विकास तथा आर्थिक न्याय की वकालत की। समाज के कमजोर वर्गों को आर्थिक रूप से सशक्त बनाना उनके चिन्तन का महत्वपूर्ण पक्ष था।

अतः अम्बेडकरवादियों को स्वरोजगार, कौशल विकास, सहकारी संस्थाओं, उद्यमिता तथा आर्थिक सहायता योजनाओं को बढ़ावा देना चाहिए। इससे समाज के वंचित वर्ग आत्मनिर्भर बन सकेंगे।

भारत में समय-समय पर जातिभेद कम करने के प्रयत्न किये जाते रहे हैं। संत-महात्माओं, राजकीय पुरुषों, सामाजिक सुधार की इच्छा रखनेवाले लोग सभी ने कोशिशें की हैं, परन्तु समाज रुढ़ी-परंपराओं की बेड़ियों में जकड़ा था अतः पूर्ण सफलता न मिली। राजकीय स्वतंत्रता भी न थी क्योंकि भारतीय समाज में,

नेताओं में, राजाओं में एकता न थी। देश राजनीतिक एवं मानसिक गुलामी में जकड़ा हुआ था। ब्रिटिश शासनकाल में जातिवाद को और बढ़ावा मिला। इसमें ब्रिटिशों का स्वार्थ भी था।

व्यापारार्थ आये अंग्रेजों ने देश अपने अधीन कर अपनी सेना भी बना ली थी। सेना में पलटने भी जाती के नाम पर थी। सीख रेजीमेंट, पंजाब रेजीमेंट, मद्रास रेजीमेंट, मराठा रेजीमेंट, महार रेजीमेंट आदि। महार लोगों की स्थिति भारत में अच्छी न थी। उन्हें अछूत माना जाता था। पढ़ना-लिखना नौकरी करना तो दूर की बात थी।

महार पलटन शुरू की गई तो इसमें असंख्य महारों ने प्रवेश किया। उनकी लाचारी, गरीबी कुछ कम हुई। अनपढ़ सैनिकों के शिक्षा की व्यवस्था भी सेना में की गई।

ब्रिटिशों ने उनके पत्नी एवं बच्चों को पढ़ाने की भी व्यवस्था की। इस कारण महार जाति के अनेक लोग लिख-पढ़कर शिक्षित हुये। उसी समय सैनिकों के परिवारों को रहने के लिए छावनियाँ तैयार की गई। इसी महार पलटन में मालोजी सकपाल तथा उनका पुत्र रामजी भी सेना में था। उन्हींके साथ धर्माजी मुरवाडकर नामक एक युवक सुभेदार मेजर था। रामजी -धर्माजी अच्छे दोस्त थे। धर्माजी ने अपनी पुत्री भीमाबाई का विवाह विरोधों के बावजूद रामजी से करवा दिया।

इन्हीं रामजी एवं भीमाबाई की १४ वी संतान थे भीमराव आंबेडकर।

❖ राजकीय परिस्थितियाँ

१८९४ महार पलटन का विसर्जन होने के कारण रामजी (डॉ. आंबेडकर के पिता) सातारा आकर बस गए थे। वहीं पर बालक भीम की शिक्षा प्रारंभ हुई। बचपन से ही उन्हें अपने अछूत होने का दर्द सहना पड़ा था। समाज में भी, सरकारी पाठशाला में भी।

अथैकदा चण्ड-निदाघ तप्त-रथ्यान् अटन् तीव्र तृषार्त-भीमः ।'

सवर्ण-वापी सलिलं पिबंश्च, केनापि दृष्टः पुरुषाधमेन ॥

आक्रम्य तूर्णं विनिपात्य भूमौ प्राताडयत् तं भय-भीतं भीमम् ।

प्रताड्यमानः स च हस्तं यष्ट्या, लत्ता प्रहारैः परितुद्यमानः ॥ ६५ (भी.स. ३/३७, ३८)

भीम ने रोते-रोते माँ से अपने अछूत होने का कारण पूछा। माँ के पास कोई जवाब न था।

स बालोऽपि भीमोऽवमानेन तप्तो नितान्तं विषण्णो हताशो बभूव ।

तदैवास्य चित्ते तु संघर्ष-बीजं समारोढुमारब्ध मत्यन्ततीव्रम् ॥ ६६ (भी.स. ४/७)

बचपन की घटनाओं ने उनके मनमें संघर्ष का बीज बो दिया था। पाठशाला के आंबेडकर नामक शिक्षक का भीमपर विशेष अनुग्रह था। छोटे-छोटे बच्चे भी आपस में जातिभेद पालते थे। अतः पाठशाला से भोजन एवं पानी के लिये भीम को दौड़कर घर जाना होता था। दौड़कर आनेपर भी आने में देर होती थी। कुशाग्र बुद्धि भीम की तकलीफ उनके शिक्षक आंबेडकर से देखी न गई। वे रोज भीम को अपने साथ भोजन करवाते थे। अपने पुत्र जैसे भीम को वे अपना उपनाम देने को तैयार थे। रामजी से अनुमति ली। शासन से अनुमति न मिलने पर भी उन्होंने पाठशाला की पंजी में भीम का उपनाम आंबेडकर लिख दिया।

१९०७ में भीमने मॅट्रिक पास करने पर प्रथम दलित छात्र का गौरव मिला। इसी समय श्री. कृ. अ. केळूस्कर गुरुजीने भीम को 'बुद्ध-चरित्र' ग्रंथ पुरस्कार के रूप में दिया।

महाविद्यालयीन शिक्षा के लिए उन्हें केळूस्कर गुरुजी ने बडौदा के महाराज से छात्रवृत्ति दिलवायी। स्नातकोत्तर शिक्षार्थ विदेश जाने के लिये भी सयाजीराव ने उनकी मदद की। १९१५ में कोलंबिया विद्यापीठ में 'आचार्य' (पी.एच.डी) का प्रबंध पेश कर 'ग्रेज इन्' संस्था में 'बॅरिस्टर' के लिये अध्ययन शुरू किया।

इस प्रकार उनके उच्च शिक्षा की बात शाहू महाराज को ज्ञात हुई। साथ ही दीन-हीन लोगों का उध्दार करने का उनका व्रत है यह भी पता चला। महाराज ने स्वयं उन्हें मिलने का निमंत्रण दिया। दोनों में बातचीत का परिणाम 'मूकनायक' पाक्षिक शुरू हुआ। इस पाक्षिक के लिए शाहू महाराज से आर्थिक मदद मिली थी।

प्रबोधनार्थ निज-बान्धवानां स्व-वृत्त-पत्रं प्रथमं निदानम् ।

श्रुत्वेति भीमानृपतिस्तदर्थं साहाय्यं दानं व्यदधाद् उदारः ॥ ६७ (भी.स.९/६)

इस पाक्षिक के माध्यमसे भीमराव ने दीनहीन, बहिष्कृत दलितों को जगाया। वर्णव्यवस्था के नामपर चलनेवाले पाखंड को उजागर किया। भीमराव के शब्दबाणों से दलित जागे जरूर किन्तु अलसाह से। कुछ पुरोगामी सवर्णों के साथ मिलकर डॉ. भीमरावने १९२७ में 'बहिष्कृत हितकारिणी सभा' नामक संस्था शुरू की।

दलितोद्धार के लिए उन्होंने कई कार्य किये। दलितपुत्रों के लिए छात्रालय, ग्रंथालय, व्यायाम शालाएँ, रात में चलनेवाली पाठशालाएँ आदि।

इसी दौरान साम्यवादियों द्वारा मुंबई के मिल मजदूरों की हड़ताल करवा दी। यद्यपि मजदूरी बढ़ाने के लिये हड़ताल थी। परंतु दलित मजदूरों की मजदूरी इतनी कम थी कि काम बंद होते ही उनके फाके पड़ने लगे। डॉ. भीमरावने उन्हें ऐसा करने से रोका कहा -

हितं कर्मकृता धूर्ता नेक्षन्ते साम्यवादिनः ।

अराजकं तु तत्साध्यम् इति भीममतं दृढम् ॥ ६८ (भी.स.९/६९)

दलितोद्धार महात्मा ज्योतिबा फुले भी कार्यरत थे। अतः सवर्णों का उनपर भी रोष था। इसमें महर्षि शिंदे भी शामिल थे, जिन्होंने 'अन्त्यज जातिसंघ' की स्थापना की थी।

तत्कालीन कुलाबा में स्थित 'महाड' नामक शहर में एक बड़ा तालाब था। यहाँ सभी जाति-वर्ण के लोग पानी लेने आते थे। दलितों को स्पर्श करने की अनुमति न थी। कानून ने उन्हें हक दिया था परन्तु मन में घबराए हुए लाचार वे तालाब पर जाने से डरते थे। डॉ. भीमरावने उनको प्रबोधन कर जगाया। उसी समय, तालाब पर जाकर पानी पीने के लिये कहा। भारी मात्रा में वहाँ उपस्थित दलित समाज ने वैसा ही किया। सवर्ण कम संख्या में थे अतः देखते रह गए।

दलित लोग वीरेश्वर मंदिर में भी प्रवेश करनेवाले हैं अफवाह सुनकर सवर्णों का क्रोध और बढ़ गया। उन्होंने दलितों से मार-पीट एवं अभद्र व्यवहार किया। भीमराव इस घटनासे दुःखी हुए। दलित युवक बदला लेने के लिए तैयार थे। भीमराव ने उन्हें रोका। पुनः पुनः दलित स्त्री-पुरुषों को प्रबोधन किया। कैसे रहें, कथाएँ आदि बातें भी बतायीं। मंदिर प्रवेशार्थ भी सत्याग्रह किया गया। जातिभेद मिटाने के प्रयत्नों ने बैर और बढ़ा दिया। यह स्थिति लगभग पाँच वर्ष बनी रही। यह १९३० ई. की घटनाएँ थीं।

● प्रथम गोलमेज परिषद :

स्वतंत्रता आंदोलन ने भी जोर पकड़ लिया था। गांधीजी का असहकार आंदोलन, सत्याग्रह तथा क्रांतिकारियों के बलिदान ने ब्रिटिश प्रशासन की जड़ें हिला दी थीं। ब्रिटिश कानूनों को तोड़ा जा रहा था। इंग्लंड से प्रशासन चलाना ब्रिटिशों को मुश्किल हो रहा था। अतः

संमन्त्र्य चान्यैः सचिवैः प्रधान मन्त्री विचारं प्रकटीचकार ।

"क्षुब्ध-प्रजा-क्षोभ-निवारणार्थं स्वायत्तता खण्डश एव देया ॥ ६९ (भी.स.१३/४)

स्वायत्तता की चर्चा के लिए बैठके होने लगीं। डॉ. भीमराव गोलमेज परिषद के लिए इंग्लैण्ड गए। परिषद से सभीने अपनी-अपनी समस्याएँ सामने रखीं। उन में भीमराव का भाषण अधिक प्रभावी था। उन्होंने दलितों की स्थिति अत्यंत संक्षेप में किन्तु प्रभावी ढंग से रखी। साथ ही विधानसभा में दलित सदस्य भी लोकसंख्या के अनुपात में हो। अन्यथा सभी दलित ब्रिटिश शासन के खिलाफ होंगे तथा एकत्रित होकर विविध प्रयत्नों से वे अपना लक्ष्य पा कर ही दम लेंगे, कहा।

इस भाषण से वे विदेश में भी प्रसिद्ध हो गए। कांग्रेस का एक भी सदस्य उपस्थित न होने के कारण कोई निर्णय न हुआ। डॉ. भीमराव लौट आए।

भारत की स्वायत्तता स्वीकारने में उदासीन काँग्रेसियों की भीमराव ने निंदा की अतः काँग्रेसी उनसे नाराज थे। कुछ समय बाद राजकीय परिस्थितियाँ बदली। गांधीजी ने भीमराव को मिलने अपने निवास पर बुलाया, परन्तु गांधीजी के विचार उन्हें पसंद न आए। गांधीजी बोल रहे थे -

"सर्वे सवर्णो दलिताश्च विश्वे राष्ट्र-दुमस्यैव-विभिन्न शाखाः ।

हिन्दुः समाजो दलितैर्विना स्याद् वृक्षी विशालो विकलो विशाख ॥

अस्मत्समाजस्य विभाजनं तु मान्यं न मे नैव च मेऽनुगानाम् ।

अहिन्दुताम् अन्त्यज-जातिजानां स्वप्नेऽपि नहि परिकल्पयामि ॥ ७० (भी.स. १३/५०, ५१)

धर्मान्तरं तैर्विहितं सहिष्ये"....

उपरोक्त अंतिम वाक्य पूरा भी न हो पाया था कि भीमराव उठकर चल दिए। निकलते हुए मात्र इतना कहा, "ज्ञातं मया सर्वमहं प्रयामि ॥७१ (भी.स. १३/५२)

भीमराव की स्पष्ट बात एवं साहस देख गांधीजी के साथ अन्य उपस्थित भी दंग रह गये ।

• द्वितीय गोलमेज परिषद :

दूसरी गोलमेज परिषद के लिए भी आंबेडकर का चयन किया गया । गांधीजी भी लंदन पहुँचे । उनका भाषण सुनने के लिए सभी उत्सुक थे । गांधीजी के मुँदे इस प्रकार थे-

- १) भारत में काँग्रेस ही एक सर्व सामान्य प्रमुख पक्ष है ।
- २) अस्पृश्यता समाप्ती का काम हमने पहले ही शुरू कर दिया है ।
- ३) सिख, पारसी, मुसलमान, अल्पसंख्यक हैं अतः चुनाव के लिए उनके स्वतंत्र निर्वाचन क्षेत्र हो ।
- ४) सभी दलित हिंदू ही है अतः वे बहुसंख्यक हैं। उन्हें स्वतंत्र निर्वाचन क्षेत्र की आवश्यकता नहीं है।
- ५) ब्रिटिश शासन ने जिन सदस्यों को यहाँ बुलाया है उनमें से कुछेक को लोकमान्यता नहीं । उन अकेले का मत यहाँ सदस्यों को शायद मान्य नहीं होगा अतः उसे प्रमाण न माना जाए ।
- ६) आंशिक स्वायत्तता मेरे भाईयों को मान्य न होगी। हम देशपर शासन करने में समर्थ हैं अतः पूर्ण स्वतंत्रता दी जाए ।

इस पर डॉ. भीमराव के उत्तर इस प्रकार थे

- १) भले ही मैं शासन द्वारा भेजा गया हूँ, परन्तु सभी दलितों का मैं नेता हूँ।
- २) अस्पृश्यता निवारणार्थ किए जा रहे प्रयत्न ठोस और मूलगामी नहीं अतः व्यर्थ हैं।
- ३) हम हिंदू हैं फिर भी हमारी छाया से भी ये अपवित्र हो जाते हैं। अतः यह स्वयंसिद्ध है कि हमारी जाति अलग है।
- ४) जिस धर्म ने हमें सिर्फ गुलाम बना कर रखा है, उसका हमें क्या लाभ? सिख आदि की तरह हमारी भी जाति अलग ही मानी जाए क्योंकि हिंदुओं में हमारी गणना नहीं होती।

५) उपरोक्त कारणों से हमारे निर्वाचन क्षेत्र स्वतंत्र हो तथा अल्पसंख्यक प्रतिनिधियों की तरह चयनित हमारे सदस्य, हमारी जनसंख्या के अनुपात में अधिक हों।

६) संस्थानों के प्रतिनिधी भी निर्वाचित हों, नियुक्त किए गए हुये नहीं।

७) देश की स्वतंत्रता मर्यादीत हो। अंग्रेज अंतिम निर्णय देनेवाले प्रशासक हो।

डॉ. भीमराव के भाषणसे काँग्रेसी नाराज थे। 'आस्तीन का साँप, देशद्रोही' अंग्रेजों का गुलाम बताकर उनकी निंदा की गई। वास्तविकता प्रदर्शित, तर्कनिष्ठ एवं गांधीजी के विचारोंका खंडन करनेवाले विचार अन्य सभी को अच्छे लगे। इस बार भी कोई निर्णय न हो सका। अंततः पंचम जॉर्ज ने सभी को चाय पर बुलाया। वहाँ जॉर्ज ने भीमरावसे दलितों की स्थिति के बारे में जाना। दलितों की अनुकंपनीय एवं दीन अवस्था के बारे में सुनकर जॉर्ज को भी दुख हुआ।

अपना उद्देश्य सिद्ध करने के लिए भीमराव लंडन में रुके और पार्लमेंट के कई सदस्यों से मिलकर अपना मत उन्हें बताया। द्वितीय परिषद से लौटे अपने नेताओंका स्वागत करने पहुँचे दोनों गुटों में मर्मविदारक घोषणाएँ, वाद-विवाद, प्रहार अहिंसक वर्तन हुआ। कविने लिखा है -

अन्योन्यमुद्धोषणा-शब्द-बाणैः ते प्राहरन् मर्म विदरकैश्च ।

तैर मुष्टिभिर्यष्टिभिरश्म-खण्डैर नैके हि लोका व्रणिता बभूवेः ॥७२ (भी.स.१३/९९)

• तृतीय गोलमेज परिषद :

तीसरी गोलमेज परिषद में काँग्रेसी सदस्य न पहुँचे। पूर्व कार्यों का पुनरावलोकन कर विवरण मात्र तैयार करना था। पहली और दूसरी परिषदों में समितीका एकमत न था, अतः मध्यस्थ नियुक्त कर फैसला दिया गया कि दलितों के लिए स्वतंत्र निर्वाचन क्षेत्र होना चाहिए।

दलितों के अन्य नेता श्री राजा एवं डॉ. मुंजे भीमरावके प्रतिस्पर्धी बन गये। कारण था राजा का गोलमेज परिषद का सदस्य न चुना जाना। डॉ. मुंजे (हिंदू महासभा के नेता) एवं राजा ने मिलकर स्वतंत्र निर्वाचन क्षेत्र का विरोध किया परंतु जीत भीमराव की ही हुई। इस जीत के लिये उन्हें कड़ी मशक्कत करनी पड़ी। जैसे, दलित अधिवेशन, विदेश गमन (कार्यसिद्धिर्थ), गांधीजी का अनशन, ठक्कर बाप्पा से चर्चा, आदि। अंततः डॉ. मालवीय का बताया गया मध्यम मार्ग चुना गया। २४ सितंबर १९३२ को सभी ने दस्तखत किये। यही पुणे करार कहलाया।

• सामाजिक एवं राजकीय कार्य :

आंबेडकर का राजकीय एवं सामाजिक क्षेत्र में समानता लाने के लिये भीमराव ने 'स्वतंत्र मजदूर संघ' स्थापित किया। मिल मजदूर एवं खेती में काम करनेवाले मजदूरों की सुविधा दिलवाना उनका उद्देश्य था। साम्यवाद को वे अनर्थकारक एवं मजदूरों का घातक मानते थे। गाँव-गाँव जाकर उन्होंने 'साम्यवादी' क्या है और 'मजदूर संघ' क्या है समझाया। फलतः आरक्षित १५ में से १३ स्थानों पर मजदूर संघ की जीत हुई। भीमराव की यह बहुत बड़ी जीत थी। मुंबई विधानसभा में काँग्रेस जीती थी परन्तु काँग्रेस ने अपना मंत्रिमंडल नहीं बनाया। अल्पसंख्यांकों का मंत्रिमंडल बना, पर टिका नहीं। अंततः काँग्रेस ने मुंबई के सूत्र अपने हाथ में लिए। उसी समय धर्मपरिवर्तन के विचारों से भीमराव का मन चिंतीत था। दलितों को मिलनेवाली सुविधाएँ कहीं उनके धर्म परिवर्तन के कारण बंद न हो जाएं ऐसी शंका उन्हें थी।

शंकानिरसनार्थ बीमारी का बहाना बनाकर वे इंग्लैंड गए। उस समय द्वितीय महायुद्ध के कारण प्रधानमंत्री व्यस्त थे। अतः शंकाओं का समाधान न हो सका। वे निराश लौट आए।

नया शासन हड़तालों को टालना चाहता था अतः औद्योगिक विधेयक का नूतनीकरण किया गया। नए में पुलिस कमिश्नर के अधिकार बढ़ा दिए, इस बात का भीमराव ने विरोध किया। उनका कहना था -

"कर्म-त्यागोऽधिकारोऽयं स्वयं सिद्धोऽस्ति कर्मिणाम्।

अन्याय-कारकं नूनमधिकार-नियन्त्रणम् ॥

येषां मतानि संप्राप्य यूयं भूताः प्रशासकाः।

प्रातर्यन्ते भवद्भिस्ते तत्स्वातन्त्र्य नियन्त्रणात् ॥७३ (भी.स.१६/३२,३३)

भीमरावने शासन को खूब खरी-खोटी सुनायी परन्तु बहुमत से प्रस्ताव पारित हो ही गया। मजदूरों के ६० अलग संघ प्रशासन का विरोध करने खड़े हो गए थे। सभी ने मिलकर एकसाथ हड़ताल का दिन तय किया था। नियोजित दिन पर बाजार, दुकाने, पाठशालाएँ तथा अनेक कार्यालय भी बंद थे। ८० हजार से अधिक मजदूर उस दिन मुंबई में एकत्रित हुये थे। जमनादास मेहता उस सभा के अध्यक्ष थे।

कोकण में अमीर जमींदार गरीबों का शोषण करते थे। इन्हें 'खोत' (वतन) नाम से जाना जाता था। अब की बार किसानों एवं खेतीहर मजदूरों को न्याय दिलाने की उन्होंने ठान ली थी। इससे पूर्व भी खोत विधेयक विधानसभा में रखा गया था, परन्तु सभासदों ने उसे नामंजूर कर दिया था। भीमराव ने किसानों की बड़ी सभा मुंबई में रखी। निवेदन लेकर स्वयं भीमराव मुख्यमंत्री से मिले। तत्पश्चात् किसानों को प्रबोधन किया। साम्यवादियों पर अपने मजदूर संघ के बारे में बताकर उन्हें चुनने को कहा।

इस समय भारत में आजादी का आंदोलन भी चल रहा था। भीमराव ने अपना लक्ष्य न छोड़ा। दलितों के अनेक संघों से एक महासंघ बनाया। तभी व्हाईसराय ने संघराज्य का विचार भारत के लिए रखा परन्तु उसे नकार दिया गया। 'न' कहना भी भीमराव का ही निर्णय था, क्योंकि उसमें कई त्रुटियाँ थीं। उसी समय मुस्लिम लीग के नेता महमंद अली जिन्ना ने स्वतंत्र पाकीस्थान की बात रखी। गांधीजी को यह मंजूर न था परन्तु कालांतर में उनका मत परिवर्तन हो गया।

भारत-पाक विभाजन पर जब एकमत न था तब भीमरावने 'पाकीस्थान संबंधित विचार' नामक ग्रंथ लिखा। उसी समय 'भारत छोड़ो' आंदोलन भी तीव्र हुआ। इस तीव्रता को शांत करने की कोशिश में लगी ब्रिटिश सरकार ने आठ नए मन्त्रियों को अपनी सहायता के लिए लिया। इन में से एक भीमराव भी थे। वे केंद्रीय मंत्री बनें। इतना कुछ करने और इतने बड़े पद पर जाने के बाद भी उन्हें जगन्नाथ पुरी के मंदिर में प्रवेश न दिया गया।

• विश्व की राजनीतिक स्थितियाँ :

द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति तक ब्रिटिश साम्राज्य लगभग उखड़ चुका था। भारतीय राज्यकर्ताओं ने उसे और ढीला कर दिया। इसके लिए सरकारी नौकरियाँ छोड़कर, सत्याग्रह करके शासन को दुर्बल करने को कहा गया। डॉ. भीमरावने थोड़ा रुकने को कहा। उस समय हिटलर की क्रूरता चरमसीमा पर थी। वह भी साम्राज्यवादी था। अर्थात् प्रजातंत्र के खिलाफ था। इसलिये डॉ. भीमराव ने ऐसा कहा था। दूसरे जर्मनी के आस-पास के प्रदेश जीतकर हिटलरने अगला निशाना इंग्लैंड को बनाया था। इससे ब्रिटिश राजनेता घबरा गये थे और नाझियों से मुकाबला करने के लिए, भारत के अनुमति के बिना ही, भारत को उस युद्ध में उलझा दिया था। क्षुब्ध काँग्रेसी सदस्योंने विधानसभा के सदस्यत्व का इस्तीफा दे दिया। तब भारत में महाराज्यपाल का शासन शुरू हुआ।

महमंद अली जिन्ना और डॉ. भीमराव ने मिलकर एक सभा का आयोजन किया। दोनों काँग्रेस से नाराज थे। दोनों पहली बार मिले थे।

उभौ तौ च काँग्रेस पक्षे स्वरोषं प्रकाशं विधातुं समेतौ सभायाम् ।
 तदाद्यं तयोर्मेलनं व्यासपीठे तथा तत् करान्दोलनं चाप्यपूर्वम् ॥
 अशान्तं नितान्तं यतो भारतं न क्षमं शासितुं शासनं चाङ्ग्लदेशात् ।
 महा-राज्यपालो स्वराज्य-प्रदानं समुद्रोषयामास तद् भारताय ॥ ७४ (भि.स.१७/७४,७८)

● स्वराज्य की घोषणा :

क्षुब्ध भारत पर शासन करना मुश्किल था अतः महाराज्यपालने भारत को स्वराज्य देने की घोषणा की। कुछ दिनों बाद चुनाव हुए। डॉ. भीमराव पराजित हुए। नया मंत्रिमंडल बना। वे दिल्ली से मुंबई आए। उन्होंने हार न मानी। मुस्लीमों से मदद लेकर वे पश्चिम बंगाल से चुनाव जीत गए। वही से वे संविधान समिती में भेजे गए। संविधान निर्माणका महत्वपूर्ण कार्य उन्होंने शुरू किया। संविधान का कार्य पूर्ण होने से पूर्व ही ब्रिटिश सरकारने 'स्वतंत्रता दिवस' की घोषणा कर दी। "जिन प्रदेशों में मुसलमान बहुसंख्य हैं, उन प्रदेशों से स्वतंत्र राष्ट्र मान्य हो तो ही ब्रिटिश सरकार बाकी बचे भारत को स्वतंत्रता देगा।"

दुष्ट और कूटनीतिज्ञ ब्रिटिशों की इस घोषणा को गांधीजी को भी मान्यता देनी पड़ी। इससे वायव्य सरहद प्रांतादि जहाँ मुसलमान अधिक थे जाति-वाद का संघर्ष स्वतंत्रता से पूर्व ही शुरू हो गया।

भविष्य में बननेवाले पाकीस्थान से हिंदुओं को निकाला जाने लगा। मुसलमान युवकों के राक्षसी अत्याचार शुरू हो गए। धर्मांध मुसलमानों ने वहाँ हत्यासत्र आरंभ कर दिया। बच्चे-बूढ़े, स्त्री-पुरुषोंपर अत्याचार किए जाने लगे। अगतिक परिवार सबकुछ छोड़कर मृत्यु के भयसे भारत चले आए। प्रतिक्रिया में हिंदुओं की क्रोधाग्नि भी भड़क उठी। जिसका परिणाम मुस्लीमों को भुगतना पड़ा।

अंततः लंबे समय से जिसकी प्रतीक्षा थी वह दिन १५ अगस्त १९४७ का सूर्योदय स्वतंत्रता लेकर आया। यद्यपि संघर्ष ने इस स्वतंत्रता को अपवित्रता का कलंक लगा दिया था फिर भी दुःख मिश्रित स्वतंत्रता ने भारतीय जनता को प्रसन्नता दी।

● स्वतंत्रता के बाद :

स्वतंत्रता के बाद डॉ. भीमराव को कानून मंत्री बनाया गया। संविधान लेखन का कठिन कार्य उन्होंने पूर्ण किया। कुछ राजकीय दलों ने इसका श्रेय स्वयं लिया। दलित होने के कारण जिन्हें बचपन में पाठशाला में संस्कृत पढ़ने नहीं दिया गया उन्होंने संस्कृत वाङ्मय का महत्व जानकर संस्कृत को राष्ट्रभाषा बनाने का प्रस्ताव रखा था। उसमें संस्कृत का महत्व स्पष्ट करते हुये लिखा था

"संस्कृता वाक् भारतीय-संस्कृतेर्मूलम् ॥

नैक-गिरां प्रसवित्री, भिन्न प्रान्तीय-भारतीयानाम् ।

मान्या सदैव विदुषाम् अर्हति नो राष्ट्र भाषात्वम्" ॥७५ (भि.स.१८/५४)

अर्थात् "भारतीय संस्कृती का मूल, संस्कृत भाषा है। अनेक भाषाओं की जननी तथा विभिन्न प्रांतों के विद्वानों ने जिसे मान्यता दी है वह संस्कृत भाषा ही राष्ट्रभाषा के योग्य है।"

भीमराव का भाषण सुनकर मौर्य आदि युवाओंने इसका विरोध किया। अन्य भी कई ब्राम्हण विरोधियों के विरोध के कारण प्रस्ताव पारित न हुआ।

इतिहास के ज्ञाता डॉ. भीमराव ध्वज समिती के भी अध्यक्ष थे। काँग्रेस ने अपना ध्वज ही राष्ट्रध्वज हो ऐसा प्रस्ताव भेजा। हिंदू महासभाने आर्य परंपराकी लाज रखने को कहा और मंदिर शिखरों पर सुशोभित काषाय (केसरिया) ध्वज का सुझाव दिया। बाबासाहब ने सभी प्रस्तावों का विचार कर केसरिया,

श्वेत एवं हरित तथा मध्य में अशोक चक्रवाला ध्वज हो, का निर्णय दिया। चरखा विहीन ध्वज गांधीजी को मंजूर न था।

मनुस्मृती, भारद्वाजस्मृती, याज्ञवल्क्य स्मृती आदि का अध्ययन कर बाबासाहब ने हिंदू-संहिता (हिंदू कोड बील) का प्रारूप बनाया था।

इस विधेयक से महिलाओं एवं दलितों के हित की बातें थीं अतः रूढ़िप्रिय लोगों को मान्य न थी। बारंबार चर्चा के बावजूद कोई भी निर्णय न हुआ। बाबासाहब निराश हो गए। वे नेहरूजी से मिले और विधेयक पारित करवाने की प्रार्थना की। वे जानते थे यदि यह विधेयक पारित न हुआ तो दलितों के भाग्य में सदा के लिये गुलामी लिख दी जाएगी। उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि यदि यह बील पास न हुआ तो मैं त्यागपत्र दे दूंगा। फिर भी कुछ न हुआ। बाबासाहब ने त्यागपत्र दे दिया। त्यागपत्र देने के दूसरे ही दिन विरोधी पक्ष ने उन्हें अपना नेता बना लिया। दिल्ली छोड़कर वे मुंबई आ गए। बाबासाहब का मधुमेह के कारण स्वास्थ्य ठीक न रहता था। यहीं पर उन्होंने डॉ. शारदा (सविता) से विवाह किया।

दूसरे चुनाव में भी बाबासाहब की हार हुई। राज्यसभा में जीत गए। कोलंबिया विद्यापीठ एवं उस्मानिया विद्यापीठ ने उनका गौरव किया। स्वास्थ्य ठीक न था फिर भी उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की और बौद्धधर्म में प्रवेश किया। ६ दिसंबर १९५६ को बाबासाहब ने अंतिम साँस ली।

❖ उपसंहार

प्रभाकरशंकर जोशी प्रणीत 'भीमायनम्' महाकाव्य डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर के जीवन, संघर्ष और विचारों का उत्कृष्ट साहित्यिक दस्तावेज है। यह केवल एक महापुरुष की जीवनी नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का घोषणापत्र भी है। महाकाव्य में निहित विचार आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं जितने अम्बेडकर के समय में थे।

अम्बेडकरवादियों का दायित्व केवल अम्बेडकर के विचारों का अध्ययन करना नहीं है, बल्कि उन्हें व्यवहार में उतारना भी है। समानता, शिक्षा, नारी सशक्तीकरण, सामाजिक एकता, धार्मिक सुधार, संवैधानिक मूल्यों की रक्षा तथा आर्थिक सशक्तीकरण जैसे क्षेत्रों में सक्रिय योगदान देकर ही अम्बेडकर के सपनों का समाज निर्मित किया जा सकता है।

इस प्रकार 'भीमायनम्' महाकाव्य आधुनिक समाज के लिए प्रेरणास्रोत है तथा अम्बेडकरवादियों के सामाजिक एवं राजकीय दायित्वों का स्पष्ट मार्गदर्शन प्रस्तुत करता है। यह ग्रन्थ समतामूलक, न्यायपूर्ण एवं मानवीय समाज के निर्माण हेतु एक महत्वपूर्ण आधार प्रदान करता है।

सहायक ग्रन्थ सूची

1. भीमायनम् - प्रभाकरशंकर जोशी प्रणीत, सम्पा. वसन्त-अनन्त गाडगील, शारदा गौरव ग्रन्थमाला, झेलम, पुणे, 2009-10
2. अम्बेडकर दर्शनम् - बलदेव सिंह मेहरा, देवेश पब्लिकेशन, अर्वन एस्टेट, रोहतक, 2009
3. भीमाम्बेडकरशतकम् - आचार्य शान्तिभिक्षु शास्त्री, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली, 2012

प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली और शाश्वत मूल्य एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. मुकेशकुमार जी. चौहाण

अनुसूतक संस्कृत भवन,

सौ.युनि. राजकोट ।

मो. 777810 285

mitmukesh81@gmail.com

सारंश

भारतीय संस्कृति में शिक्षा को केवल सूचनाओं का संग्रह नहीं, बल्कि मनुष्य के सर्वांगीण विकास और आत्म-साक्षात्कार का साधन माना गया है। प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली, जो मुख्य रूप से गुरुकुल और आश्रम व्यवस्था पर आधारित थी, का उद्देश्य विद्यार्थी को न केवल आजीविका के लिए तैयार करना था, बल्कि उसे एक चरित्रवान और जिम्मेदार नागरिक बनाना भी था। इस शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य प्राचीन भारतीय शिक्षा के उन शाश्वत मूल्यों जैसे सत्य, धर्म, अनुशासन, स्वाध्याय और गुरु-शिष्य परंपरा का अध्ययन करना है। यह पत्र यह भी विश्लेषण करता है कि वर्तमान समय में गिरते नैतिक स्तर और मानसिक तनाव को कम करने में ये प्राचीन मूल्य कैसे 'संजीवनी' का कार्य कर सकते हैं।

बीज शब्द (Keywords): गुरुकुल, शाश्वत मूल्य, वैदिक शिक्षा, गुरु-शिष्य परंपरा, नैतिक विकास, चरित्र निर्माण।

➤ प्रस्तावना

प्राचीन काल में भारत को 'विश्वगुरु' का दर्जा प्राप्त था, जिसका श्रेय यहाँ की उन्नत ज्ञान परंपरा और मूल्य-आधारित शिक्षा को जाता है। ऋग्वेद में कहा गया है-"सा विद्या या विमुक्तये" (विद्या वह है जो मुक्ति दिलाए)। प्राचीन मनीषियों ने शिक्षा को मनुष्य के 'द्वितीय जन्म' (द्विज) के रूप में देखा, जहाँ अज्ञान के अंधकार से ज्ञान के प्रकाश की ओर यात्रा होती थी। आज के आधुनिक और तकनीकी युग में, जहाँ भौतिक प्रगति तो हुई है लेकिन मानवीय संवेदनाएँ कम हो रही हैं, हमें अपनी जड़ों की ओर लौटने की आवश्यकता है। यह शोध पत्र प्राचीन शिक्षा के उन तत्वों को उजागर करता है जो आज भी प्रासंगिक हैं।

➤ प्राचीन भारतीय शिक्षा का स्वरूप

प्राचीन भारत में शिक्षा प्रणाली अनौपचारिक और औपचारिक दोनों रूपों में थी। 'उपनयन संस्कार' के बाद विद्यार्थी गुरुकुल में प्रवेश करता था।

- **गुरुकुल व्यवस्था:** यह शिक्षा का केंद्र था जहाँ विद्यार्थी अपने परिवार से दूर, प्रकृति की गोद में, गुरु के सानिध्य में 12 से 24 वर्ष तक कठोर अनुशासन में रहता था।
- **पाठ्यक्रम:** वेदों और उपनिषदों के साथ-साथ गणित, खगोलशास्त्र, व्याकरण, चिकित्सा (आयुर्वेद) और युद्ध कला जैसे व्यावहारिक विषय भी पढ़ाए जाते थे।

➤ शिक्षा में निहित शाश्वत मूल्य

प्राचीन शिक्षा प्रणाली कुछ आधारभूत मूल्यों पर टिकी थी, जिन्हें 'शाश्वत मूल्य' कहा जाता है:

- **सत्य और धर्म का पालन:** तैत्तिरीय उपनिषद के दीक्षांत समारोह में गुरु शिष्य को उपदेश देता है- "सत्यं वद, धर्मं चर" (सत्य बोलो, धर्म का आचरण करो)। यह नैतिकता की आधारशिला थी।
- **वसुधैव कुटुम्बकम्:** शिक्षा संकीर्ण राष्ट्रवाद से ऊपर उठकर 'सम्पूर्ण विश्व एक परिवार है' की भावना सिखाती थी।
- **अहिंसा और करुणा:** जीव मात्र के प्रति दया और अहिंसा का भाव रखना विद्यार्थी के चरित्र का अनिवार्य अंग था।
- **सादा जीवन, उच्च विचार:** गुरुकुल में अमीर और गरीब (राजा और रंक) के बच्चे एक समान रहते थे, जिससे उनमें समानता और सादगी के मूल्य विकसित होते थे।

➤ गुरु-शिष्य परंपरा: एक पवित्र संबंध

भारतीय ज्ञान परंपरा की धुरी 'गुरु' और 'शिष्य' का संबंध था। गुरु केवल शिक्षक नहीं, बल्कि एक मार्गदर्शक (Mentor) होता था जो शिष्य के अज्ञान को दूर करता था।

- "गुकारस्त्वन्धकारस्तु रुकारस्तन्निरोधकृत्।" (गुरु वह है जो अंधकार को रोकता है)।
- शिष्य गुरु के प्रति पूर्ण श्रद्धा रखता था, और गुरु शिष्य को पुत्रवत् स्नेह देता था। यह भावनात्मक जुड़ाव सीखने की प्रक्रिया को गहरा और प्रभावी बनाता था।

➤ आधुनिक परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 (NEP 2020) में भी 'भारतीय ज्ञान परंपरा' (IKS) को पाठ्यक्रम में शामिल करने पर जोर दिया गया है, जो प्राचीन मूल्यों की महत्ता को सिद्ध करता है।

- **मानसिक स्वास्थ्य:** प्राचीन योग और ध्यान (Meditation) आज तनाव और अवसाद से मुक्ति के लिए विश्वभर में अपनाए जा रहे हैं।
- **मूल्यनिष्ठ शिक्षा (Value-Based Education):** केवल डिग्री प्राप्त करना पर्याप्त नहीं है; सहिष्णुता, धैर्य और ईमानदारी जैसे गुण कॉर्पोरेट जगत में भी अब 'सॉफ्ट स्किल्स' के रूप में मांगे जा रहे हैं।

- पर्यावरण संरक्षण: गुरुकुल शिक्षा प्रकृति के बीच होती थी, जिससे पर्यावरण प्रेम स्वाभाविक था। आज जलवायु परिवर्तन के दौर में यह दृष्टिकोण अत्यंत आवश्यक है।

➤ निष्कर्ष

निष्कर्षतः, प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली अतीत की कोई जड़ वस्तु नहीं है, बल्कि यह एक प्रकाशस्तंभ है। आज आवश्यकता इस बात की नहीं है कि हम पूरी तरह से गुरुकुल पद्धति को अपना लें, बल्कि आवश्यकता यह है कि हम आधुनिक विज्ञान और तकनीक के साथ प्राचीन शाश्वत मूल्यों का समन्वय करें। यदि हम अपनी शिक्षा में 'मस्तिष्क की शिक्षा' (Education of Head) के साथ 'हृदय की शिक्षा' (Education of Heart) को जोड़ सकें, तो हम एक ऐसे समाज का निर्माण कर पाएंगे जो न केवल समृद्ध हो, बल्कि शांत और सुखी भी हो।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- ऋग्वेद संहिता - (संपादक: श्रीपाद दामोदर सातवलेकर), स्वाध्याय मंडल, पारडी।
- तैत्तिरीयोपनिषद् - (शांकरभाष्य सहित), गीता प्रेस, गोरखपुर।
- मनुस्मृति - (कुल्लूकभट्ट टीका सहित), चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी।
- श्रीमद्भगवद्गीता - (साधक संजीवनी टीका), गीता प्रेस, गोरखपुर।
- अल्टेकर, ए.एस. (2010). प्राचीन भारतीय शिक्षा. दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास।
- काणे, पी.वी. धर्मशास्त्र का इतिहास. लखनऊ: हिंदी समिति।
- दिनकर, रामधारी सिंह. संस्कृति के चार अध्याय. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन।
- मुखर्जी, आर.के. (2014). प्राचीन भारतीय शिक्षा. दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास।
- राधाकृष्णन, एस. भारतीय दर्शन. दिल्ली: राजपाल एंड संस।
- भारत सरकार. (2020). राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 (NEP 2020). शिक्षा मंत्रालय।
- भारतीय शिक्षा का इतिहास -आचार्य राममूर्ति, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018.
- प्राचीन भारत की शिक्षा व्यवस्था- डॉ. सत्यदेव मिश्रा, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2016.
- भारतीय संस्कृति और शिक्षा- डॉ. कपिल कपूर, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 2019.
- गुरुकुल प्रणाली: अवधारणा और प्रासंगिकता-प्रो. राजेश कुमार शुक्ल, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2020.
- वैदिक शिक्षा और आधुनिक संदर्भ -डॉ. अरुण कुमार त्रिपाठी, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2017.
- शिक्षा में नैतिक मूल्य - डॉ. मनीषा वर्मा, अटल पब्लिकेशन्स, भोपाल, 2021.

કૌશલ્ય-આધારિત શિક્ષણ અને ઈન્ટર્નશિપનો વિદ્યાર્થીઓની રોજગારક્ષમતા પર પ્રભાવ : એક વિશ્લેષણાત્મક અભ્યાસ.

કથીરિયા હસ્મિતા ભીખાભાઈ

Ph.D. Research scholar

સૌરાષ્ટ્ર યુનિવર્સિટી, રાજકોટ

ashmitakathiriya@gmail.com

સારાંશ

પ્રસ્તુત સંશોધન પેપરનો મુખ્ય હેતુ કૌશલ્ય-આધારિત શિક્ષણ અને ઈન્ટર્નશિપ કાર્યક્રમોનો વિદ્યાર્થીઓની રોજગારક્ષમતા પર થતા પ્રભાવનું વિશ્લેષણ કરવાનો છે. વર્તમાન સમયમાં પરંપરાગત શિક્ષણ પદ્ધતિઓ સાથે વ્યવસાયિક અને પ્રાયોગિક કૌશલ્યોનો સમાવેશ અનિવાર્ય બન્યો છે. અભ્યાસમાં ઉચ્ચ શિક્ષણ ક્ષેત્રમાં અમલમાં મૂકાયેલા કૌશલ્ય આધારિત અભ્યાસક્રમો, ઉદ્યોગ જોડાણો અને ઈન્ટર્નશિપના પરિણામોનું વિશ્લેષણ કરવામાં આવ્યું છે. અભ્યાસ દર્શાવે છે કે કૌશલ્ય-આધારિત શિક્ષણ અને ઈન્ટર્નશિપ વિદ્યાર્થીઓમાં આત્મવિશ્વાસ, કાર્યક્ષમતા અને રોજગાર મેળવવાની ક્ષમતામાં નોંધપાત્ર વધારો કરે છે. NEP 2020 નવી શિક્ષણનીતિમાં કૌશલ્ય આધારિત શિક્ષણ પર વધારે ભાર મૂકવામાં આવ્યો છે.

ચાવીરૂપ શબ્દો: કૌશલ્ય-આધારિત શિક્ષણ, ઈન્ટર્નશિપ, રોજગારક્ષમતા, ઉદ્યોગ જોડાણ, ઉચ્ચ શિક્ષણ

● પ્રસ્તાવના

પ્રવર્તમાન સ્પર્ધાના યુગમાં માત્ર શૈક્ષણિક ડિગ્રી ડિગ્રી જ માત્ર રોજગારી મેળવવા માટે પૂરતી સાબીત થતી નથી. રોજગાર બજારમાં પ્રવેશ માટે વ્યવસાયિક કૌશલ્ય, પ્રાયોગિક અનુભવ અને ઉદ્યોગ સંબંધિત જ્ઞાન જરૂરી બની ગયું છે. ભારતમાં પણ બેરોજગારી અને શિક્ષણ-રોજગાર વચ્ચેની ખાઈ ગંભીર સમસ્યા તરીકે ઉભરી છે. આ સંદર્ભમાં કૌશલ્ય-આધારિત શિક્ષણ અને ઈન્ટર્નશિપ વિદ્યાર્થીઓને ઉદ્યોગ ક્ષેત્રમાં પ્રવેશવા માટે તૈયાર કરવામાં મહત્વપૂર્ણ ભૂમિકા ભજવે છે. ભારતમાં ઘણા વિદ્યાર્થીઓ ઉચ્ચ શિક્ષણ પૂર્ણ કર્યા બાદ પણ યોગ્ય રોજગાર મેળવી શકતા નથી. તેનું મુખ્ય કારણ ઉદ્યોગ માટે જરૂરી કૌશલ્યોનો અભાવ અને પ્રાયોગિક અનુભવની અછત છે.

● સંશોધન અભ્યાસના હેતુઓ :

- કૌશલ્ય-આધારિત શિક્ષણના ખ્યાલને સમજાવવો.
- વિદ્યાર્થીઓની રોજગારક્ષમતામાં થતા ફેરફારોનો અભ્યાસ કરવો.
- ઉદ્યોગ જોડાણો અને શિક્ષણ વચ્ચેના સંબંધનું મૂલ્યાંકન કરવું

● સંશોધન પદ્ધતિ

પ્રસ્તુત સંશોધન અભ્યાસ વર્ણનાત્મક સંશોધન પદ્ધતિ પર આધારિત છે. આ સંશોધન અભ્યાસમાં ગૌણ માહિતીનો ઉપયોગ કરવામાં આવેલો છે.

● સંદર્ભ સાહિત્યની સમીક્ષા

- 1 purohit,d.(2026): shaping minds, Shaping futures: Realizing the vision of NEP 2020 through AI and human potential in higher education.

પ્રસ્તુત સંશોધન પેપરમાં નવી શિક્ષણનીતિ 2020નું વિશ્લેષણ કરવામાં આવ્યું છે. આ અભ્યાસમાં શિક્ષણનીતિમાં આવેલ બદલાવ, કૌશલ્યના આધારે શિક્ષણનો વિકાસ, ટેકનોલોજી અને ડિજિટલ ક્રાંતિ, પ્રારંભિક બાળ સંભાળએ શિક્ષણનો પાયો અને નવી શિક્ષણનીતિ દ્વારા વિદેશમાં થતી અસર અંગેની ચર્ચા કરવામાં આવી છે.

2 makwana,a.(2025) Use of ancient education system in moderan era and it's importance, value and current situation in NEP- 2020.

પ્રસ્તુત સંશોધન અભ્યાસમાં પ્રાચીન ભારતીય શિક્ષણ વ્યવસ્થાનો ઇતિહાસ અને નવી શિક્ષણનીતિ દ્વારા પ્રવર્તમાન સ્થિતિ અંગેનો અભ્યાસ કરવામાં આવ્યો છે. પ્રસ્તુત સંશોધન અભ્યાસમાં રાષ્ટ્રીય શિક્ષણ નીતિની વૈશ્વિક તુલના, ભવિષ્યની દિશા અંગેના સૂચનો અંગેની ચર્ચા કરવામાં આવી છે.

● કૌશલ્ય આધારિત શિક્ષણ:

કૌશલ્ય આધારિત શિક્ષણ પદ્ધતિ જેમાં વિદ્યાર્થીઓને માત્ર સિદ્ધાંત આધારિત જ્ઞાન આપવાને બદલે તેમની ક્ષમતાને વિકસાવવાનો અને ખાસ કરીને તેમને રોજગારક્ષમ બનાવવાનો છે. વિદ્યાર્થીઓને રોજગારી આપવા માટે કૌશલ્ય આધારિત શિક્ષણનું ઘણું મહત્ત્વ રહેલું છે તેમનામાં સ્વરોજગારીની તકોનું નિર્માણ થાય છે, જેના દ્વારા આર્થિક વિકાસને પ્રોત્સાહન મળે છે.

કૌશલ્ય આધારિત શિક્ષણ અને પરંપરાગત શિક્ષણ વચ્ચેનો તફાવત

પરંપરાગત શિક્ષણ	કૌશલ્ય આધારિત શિક્ષણ
સિદ્ધાંત પર આધારિત	વ્યવહારુ કુશળતા પર આધારિત
પરીક્ષા કેન્દ્રિત	ક્ષમતા કેન્દ્રિત
ડિગ્રી પર ભાર	કૌશલ્ય પર ભાર
રોજગારીથી દૂર	રોજગાર સાથે જોડાયેલ

Ministry of Skill Development and Entrepreneurship (2021). Skill India Report. Government of India.

● વિદ્યાર્થીઓની રોજગાર ક્ષમતામાં થતા ફેરફારો:

રોજગાર ક્ષમતા એટલે વિદ્યાર્થીઓમાં શક્તિઓ અને કૌશલ્યનો વિકાસ. વિદ્યાર્થીઓ નોકરીમાં ટકી શકે તે પોતાની જાતે પ્રગતિ કરી શકે તેના માટે રાષ્ટ્રીય શિક્ષણ નીતિ 2020માં કૌશલ્ય આધારિત શિક્ષણના ખ્યાલને વિકસાવવામાં આવ્યો છે. જેનો હેતુ શિક્ષણ માત્ર ડિગ્રી આપવા માટે નહીં પરંતુ વિદ્યાર્થીઓને રોજગારી આપવાનો છે.

■ રોજગારી ક્ષમતામાં મુખ્ય ફેરફારો:

જ્ઞાન / શિક્ષણ

- ✓ પહેલા: સ્થિર અને પુસ્તકના જ્ઞાન પર વધુ ભાર
- ✓ પ્રવર્તમાન સમયમાં: પ્રેક્ટિકલ સ્કીલ્સ, ટેકનિકલ નોલેજ, સોફ્ટ સ્કીલ્સ પર ભાર

સોફ્ટ સ્કિલ ઈન્ડિયા

- ✓ સંચાર કૌશલ્ય
- ✓ ટીમવર્ક
- ✓ પાવર

- ✓ સમસ્યા ઉકેલવાની વ્યવસ્થા

ટેકનોલોજી સિસ્ટમનો વિકાસ

- ✓ ડિજિટલ સાક્ષરતા
- ✓ AI, ડેટાવિસીસ, સોફ્ટવેર સાધનો
- ✓ ઓનલાઈન પ્લેટફોર્મ

ઇન્ટર્નશિપ અને શિક્ષણ

- ✓ વિદ્યાર્થીઓને વાસ્તવિક કાર્યનો અનુભવ
- ✓ નોકરીઓ માટે તૈયાર કરવામાં સહાય

• ઉદ્યોગ જોડાણો (ઇન્ટર્નશિપ) અને શિક્ષણ વચ્ચેનો સંબંધ:

ઉદ્યોગ જોડાણો (ઉદ્યોગ જોડાણો) અને શિક્ષણ (શિક્ષણ પ્રણાલી) વચ્ચેનો સંબંધ શિક્ષણ વ્યવસ્થાનો એક મહત્વપૂર્ણ આધારસ્તંભ બની રહ્યો છે. વૈશ્વિકીકરણ, તકનીકી વિકાસ અને બજાર આધારિત અર્થવ્યવસ્થામાં શિક્ષણને શિક્ષણની જરૂરિયાત સાથે સંકલિત અનિવાર્ય બન્યું છે. કૌશલ્ય-આધારિત અભ્યાસક્રમમાં અભ્યાસ કરતા વિદ્યાર્થીઓ વધુ આત્મવિશ્વાસ ધરાવે, ઇન્ટર્નશિપ દ્વારા વિદ્યાર્થીઓને કાર્યસ્થળનો વાસ્તવિક અનુભવ મળે છે. ઉદ્યોગ જોડાણો ધરાવતી સંસ્થાઓમાં રોજગારી દર વધુ જોવા મળે છે. કૌશલ્ય શિક્ષણ વિદ્યાર્થીઓને નોકરી માટે તૈયાર કરે છે. ઇન્ટર્નશિપ કરનાર વિદ્યાર્થીઓમાં સંચાર, ટીમવર્ક અને સમસ્યા હલ કરવાની ક્ષમતામાં વધારો થાય છે. ઉદ્યોગ જોડાણો રોજગાર અવસરો વધારવામાં મહત્વપૂર્ણ સાબિત થયા છે

• તારણો:

- ✓ કૌશલ્ય-આધારિત શિક્ષણ અને ઇન્ટર્નશિપ વિદ્યાર્થીઓની રોજગારક્ષમતામાં માત્ર વધારો જ નથી કરતા, પરંતુ તેમને વૈશ્વિક સ્તરે સ્પર્ધાત્મક પણ બનાવે છે.
- ✓ NEP 2020ના સંદર્ભમાં આ બંને તત્વો શિક્ષણ વ્યવસ્થાના કેન્દ્રસ્થાને છે.
- ✓ કૌશલ્ય-આધારિત શિક્ષણ અને ઇન્ટર્નશિપ વિદ્યાર્થીઓની રોજગારક્ષમતામાં નોંધપાત્ર વધારો કરે છે.

• સમાપન:

પ્રસ્તુત સંશોધન અભ્યાસમાં કૌશલ્ય આધારિત શિક્ષણ અને ઇન્ટર્નશીપનો વિદ્યાર્થીઓની રોજગાર ક્ષમતા પરનો પ્રભાવ અંગેનો અભ્યાસ કરવામાં આવેલો છે. વર્તમાન અને ભવિષ્યની રોજગાર જરૂરિયાતોને ધ્યાનમાં રાખીને શિક્ષણ વ્યવસ્થામાં આ બંને તત્વોનું સંકલન અનિવાર્ય છે. ઉચ્ચ શિક્ષણમાં ફરજિયાત ઇન્ટર્નશિપ અમલમાં લાવવી જોઈએ. અભ્યાસક્રમોમાં ઉદ્યોગ આધારિત કૌશલ્યોનો સમાવેશ કરવો જોઈએ. શૈક્ષણિક સંસ્થાઓ અને ઉદ્યોગ વચ્ચે મજબૂત સહયોગ વિકસાવવો જોઈએ.

• સંદર્ભ સૂચિ:

- ✓ Ministry of Skill Development and Entrepreneurship (2021). Skill India Report. Government of India.
- ✓ OECD (2021). Education, Skills and Employability.

- ✓ Tilak, J.B.G. (2020). Education and Employment Nexus in India. Sage Publications.
- ✓ AICTE (2022). Internship Policy and Employability Outcomes.
- ✓ UGC (2023). Guidelines on Skill-Based Higher Education.
- ✓ National Education Policy (NEP) 2020, Government of India.
- ✓ Agarwal, P. (2021). Skill Development and Employability in India. New Delhi: Academic Publishers.
- ✓ World Bank Report (2020). Enhancing Employability through Skill-Based Education.
- ✓ UNESCO (2019). Education and Skills for Employment.
- ✓ Sharma, R. (2022). "Internship and Employability: A Study of Indian Higher Education", Journal of Education Studies.
- ✓ purohit,d.(2026): shaping minds, Shaping futures: Realizing the vision of NEP 2020 through AI and human potential in higher education.
- ✓ makwana,a.(2025) Use of ancient education system in moderan era and it's importance, value and current situation in NEP- 2020.
- ✓ <https://ijirt.org>
- ✓ www.ijnti.org

विश्वशांति का वैदिक दृष्टिकोण: विश्वबन्धुत्व और वसुधैव कुटुम्बकम्

डॉ.राकेश डी. चाचिया

सारांश

प्रस्तुत लेख में विश्वबन्धुत्व और वसुधैव कुटुम्बकम् की अवधारणा को आधुनिक वैश्विक समस्याओं के समग्र समाधान के रूप में प्रस्तुत किया गया है। वैदिक परंपरा से लेकर संस्कृत साहित्य तक मानवता, अहिंसा, परोपकार, समरसता और सर्वजनहित की भावना का निरंतर प्रतिपादन मिलता है। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' तथा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' जैसे वैदिक सूत्र संपूर्ण मानव जाति को एक परिवार के रूप में देखने की दृष्टि प्रदान करते हैं। लेख में यह स्पष्ट किया गया है कि वर्तमान समय में धार्मिक असहिष्णुता, संकीर्ण राष्ट्रवाद, हिंसा और सत्ताकेंद्रित मानसिकता विश्वशांति के लिए गंभीर चुनौती बन चुकी है। ऐसी स्थिति में भारतीय संस्कृति द्वारा प्रतिपादित विश्वबन्धुत्व, करुणा, सह-अस्तित्व और एकात्मभाव जैसी मूल्य-परंपराओं का पुनर्स्थापन आवश्यक है। वैदिक मंत्रों और संस्कृत साहित्य के उदाहरणों के माध्यम से लेख इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि संपूर्ण विश्व को एक परिवार मानने की भावना ही मानव समाज को संघर्ष से समरसता और शांति की ओर ले जा सकती है।

मुख्य शब्द (Keywords): विश्वबन्धुत्व, वसुधैव कुटुम्बकम्, संस्कृत साहित्य, वैदिक संस्कृति, विश्वशांति, मानवता, समरसता, सह-अस्तित्व

संस्कृत की गणना विश्व की प्राचीनतम भाषाओं में की जाती है। इसका साहित्यिक विस्तार वैदिक युग से लेकर आज तक अबाध रूप से चल रहा है। राष्ट्रीय एकता एवं विश्वबन्धुत्व की भावना के विकास में इसका महत्वपूर्ण योगदान है। इसमें रचित साहित्य का सत्य, अहिंसा, राष्ट्रभक्ति, पृथ्वी-प्रेम, परोपकार, त्याग तथा सत्कर्म आदि भावनाओं के प्रसारण में अमूल्य योगदान है।^१ मानवीय चिंतन के सभी क्षेत्रों में इसकी अभिव्यक्ति हुई है। संस्कृत साहित्य की यह एक अनोखी विशेषता है कि वह केवल मानवमात्र के लिये ही नहि अपितु समग्र जीव सृष्टि के कल्याण की भावना को अग्रसर करता है।

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः ऋग्वेद १/८९/१

सर्वजनहित या विश्वबन्धुत्व की भावना भारतीय संस्कृतिका सार है। इसमें सबके सुख की कामना की जाती है-

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः ।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखः भाग् भवेत् ॥

अर्थात् सभी सुखी हों, सभी निरोगी हों, सभी कल्याण को देखें और कोई भी दुःख को प्राप्त न करे।

साहित्य संस्कृति का अग्रदूत है। साहित्य संस्कृति का वाहन है। समाज की भावना को दर्पणवत् प्रतिबिम्बित करनेवाला साहित्य कितना भी आदर्शवादी हो, वह यथार्थता का चित्रण किये बिना नहीं रह सकता। पश्चिम के देश संकीर्ण राष्ट्रीयता की भावना से जकड़े हुए हैं।^२ आज पूरे विश्व में विभिन्न समस्याओं को लेकर उथल-पुथल एवं अशांति मची हुई है। धार्मिकता, क्षेत्रीयता, जातीयता एवं अन्य तमाम मुद्दों को लेकर विभिन्न देश आपस में लड़ रहे हैं। एक मनुष्य दूसरे मनुष्य की और प्रेम, स्नेह, आदर और सहिष्णुता से

देखने के बजाय नफरत के दृष्टिकोण से देख रहा है। त्याग, उदारता, सहभाव, परोपकार, प्रेम आदि मानवी जीवन मूल्यों को नष्ट कर वह पूरी तरह से सत्ता एवं अर्थ केंद्रित मानसिकता का शिकार बनता जा रहा है। तमाम देश अपने देश की सीमाओं को और अधिक विस्तार देने के लिए निरंतर प्रयासरत हैं। ऐसी स्थिति में सवाल यह उठता है कि आखिर पूरी दुनिया में सुख-शांति एवं सौहार्द कैसे स्थापित होगा? इस संबंध में यदि भारत की बात की जाये तो भारत हमेशा 'विश्वबंधुत्व एवं वसुधैव कुटुम्बकम्' का ही पक्षधर रहा है। भारत के लोग पूरी वसुधा यानी पृथ्वी को एक परिवार मानते हैं। ऐसी स्थिति में 'विश्वबंधुत्व एवं वसुधैव कुटुम्बकम्' जैसी संकल्पनाओं को पुनर्जीवित कर उसके महत्त्व को प्रतिपादित करना अधिक अनिवार्य बन जाता है। एकात्मभाव, दया, करुणा, सद्भाव, सदाचरण आदि गुण विश्वबन्धुत्व के अनिवार्य तत्व हैं। जिसे **Milk of Humanity** अर्थात् मानवता का पेय कह सकते हैं, ऐसे उन्नत विचार अभिव्यक्त हुए हैं।^३

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।

समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ॥ ऋग्वेद १०/१९१/३

तुम सबके विचार, संगठन, मन और चित्त समान हों। हों। मैं तुम सबको यही समान देता हूँ और समान भोगाधिकार से युक्त करता हूँ।

वास्तव में यदि पूरे विश्व में सुख-शांति एवं सौहार्द स्थापित करना है तो पूरे विश्व को एक परिवार मानना होगा यानी 'विश्व बंधुत्व' और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' यानी पूरी पृथ्वी एक परिवार है, की भावना को आधार बनाना होगा विश्वबन्धुत्व का अर्थ है सारे विश्व के मानवों में बंधुत्व का भाव या सबको भाई समझने का भाव। विश्वबंधुत्व शब्द से ही मिलता –जुलता शब्द वसुधैव कुटुम्बकम् है। जिसमें समुचे संसार को ही एक परिवार के रूप में देखा गया है।

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।

उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥

यह अपना है और यह पराया है ऐसी गणना क्षुद्र चित्त वाले प्राणियों की है। उदार चरित वाले जनों की दृष्टि में तो यह समस्त वसुधा ही एक कुटुम्ब है। विश्वभावना की अभिव्यक्ति इससे बढ़कर सुंदर शब्दों में नहीं की जा सकती।

विश्व शब्द संसार की समस्त गोचर वस्तुओं का सूचक है। विश्व यानि केवल मनुष्य जाती के रहने का स्थान नहीं है बल्कि इसमें पशु-पक्षी, पेड़-पौधे आदि सभी इकाईया सम्मिलित हैं। अतः समस्त जीव-जगत के साथ बंधुत्व यानी भावात्मक एकता स्थापित करना, ओछी संकिर्णता को छोड़कर मनुष्य को मनुष्य की तरह देखकर उसके साथ सदवर्तन करना ही विश्वबंधुत्व या वसुधैव कुटुम्बकम् की स्थापना उद्देश्य रहा है। वैदिक ऋषि भगवान् से प्रार्थना करता है कि वह मानवमात्र के लिये सुमति सद्भावना धारण करे यह पर्याप्त नहीं किन्तु उन प्राणियों के प्रति भी देखें, जो उसकी दृष्टि से ओजल हैं जिन्हें वह नहीं देखता।

याँश्च पश्यामि याँश्च न।

तेषु मा सुमतिं कृधि ॥ अथर्व १७/१/७

वैदिक कविता का स्वर विश्वमंगलात्मक है।^४ सामंनस्यसूक्त मैं अत्यन्त सरस लोकतांत्रिक भावनाओं की अभिव्यक्ति हुई है। ऋषि यह संकल्प व्यक्त करता है कि हम एक साथ चलें, एक जैसी वाणी बोलें, एक जैसा चिन्तन करें।

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।

देवा भागं यथा पूर्वे स जानाना उपासते ॥ ऋग्वेद १०/१९१/२

विश्वशान्ति और विश्वबन्धुत्व की उदात्त भावना से ओत-प्रोत वैदिक मन्त्रों में मानवमात्र में परस्पर सौहार्द, मैत्री तथा साहाय्य की भावना की उल्लब्धि नितांत स्वाभाविक है-

मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे ।

मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥ यजुर्वेद ३६/१८

वेद मन्त्रों में विश्वबन्धुत्व की भावना पर बल दिया गया है तथा अनेकता में भी एकता स्थापित की गयी है। संपूर्ण विश्व को ही आर्य बनाने (संस्कारसंपन्न बनाने) का दृढ संकल्प व्यक्त किया गया है।^४

अथर्ववेद में स्पष्ट सन्देश दिया गया है कि परम सत्ता की पूर्ति और से सभी सदस्यों के हृदय परस्पर प्रेम एवं सद्भाव वाला बनाया गया है, इसलिये परस्पर एक-दूसरे को सभी तरह से चाहो, जैसे गो अपने सद्योजात बछड़े के प्रति अत्यन्त स्नेह रखती है, वैसे तुम भी परस्पर अभिनव, छल, कपट, द्वेष से सर्वथा रहित होकर विशुद्ध स्नेह से युक्त होकर आनन्दित रहो।

सहृदयं सामनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः ।

अन्यो अन्यमभि हृत्य वत्सं जातमिवाध्या ॥ अथर्ववेद ३/३०/१

वर्तमान में अफगानिस्तान पर तालिबानियों ने कब्जा करके वहां का लोकतंत्र खत्म कर दिया। अफगानिस्तान के तत्कालीन राष्ट्रपति अपना देश छोड़ कर विदेश में चले गये। तमाम छोटे एवं कमजोर देश इस बात को लेकर हमेशा आशंकित रहते हैं कि कहीं कोई ताकतवर देश उन्हें दबोच न ले। किसी की इच्छा है कि पूरी दुनिया में इस्लाम का शासन हो जाये तो कोई चाहता है कि पूरे विश्व में ईसाइयत का झंडा बुलंद हो तो कोई अपने धर्म का शासन चाहता है। स्वार्थ और संघर्ष युगधर्म बन गये हैं। क्या इन सबसे किसी भी समस्या का समाधान संभव है? हमारी सनातन संस्कृति में सर्वत्र यही कहा गया है कि इंसानियत एवं मानवता से बड़ा कोई धर्म नहीं है। भारत प्राचीन काल से आज पर्यन्त वसुधैव कुटुम्बकम् एवम सत्यम्, शिवम्, सुंदरम् की अवधारणा को प्रस्थापित करता है।

अभी हाल ही में माननीय प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने वीडियो कॉन्फ्रेंस के जरिये भारत की जी-२० की अध्यक्षता के लोगो, थीम और वेबसाइट का अनावरण करते हुये उन्होंने कहा, "युद्ध से मुक्ति के लिये बुद्ध का सन्देश, हिंसा के सन्दर्भ में महात्मा गांधी के समाधान, जी-२० के माध्यम से भारत उन्हें एक नई ऊंचाई दे रहा है।" उन्होंने कहा कि भारत ने वन अर्थ, वन हेल्थ के मन्त्र के साथ ग्लोबल हेल्थ को मजबूत करने का अभियान शुरू किया है। अपनी बात को जारी रखते हुए प्रधानमंत्री ने कहा कि अब जी-२० में भी हमारा मंत्र है- एक धरती, एक परिवार, एक भविष्य। प्रधानमंत्री ने कहा, "यह भारत के विचार और मूल्य हैं जो दुनिया के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करते हैं।" प्रधानमंत्री ने भारत को लोकतंत्र की जननी बताते हुए कहा कि हमें दुनिया को अपने साथ लेकर नई ऊर्जा के साथ आगे बढ़ना है।

विश्वबन्धुत्व की भावना से विश्व में समरसता उत्पन्न हो सकती है। संकीर्णता का विनाश हो सकता है और इस तरह विश्वशांति स्थापना में विश्वबन्धुत्व महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। युद्ध और संघर्ष करने का परिणाम विनाश कर लेना ही है। समरसता, विश्वबन्धुत्व एवं वसुधैव कुटुम्बकम् में ही मानव का हित है; यह विचार ही हमें दुनिया के आखरी मनुष्य तक पहुंचाने होंगे तभी विश्व में शांति प्रस्थापित होगी। मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव, सत्यं वद, वसुधैव कुटुम्बकम्, इत्यादि मूल्य आज भी विश्व शांति एवं विश्वबन्धुत्व को दृढ बनाने में सहायक है।

संदर्भ ग्रन्थः

- वैदिक साहित्य और संस्कृति, गौतम पटेल (युनिवर्सिटी ग्रंथनिर्माण बोर्ड, गुजरात राज्य)
- संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ संख्या १२७
- उपनिषद् (ईशावास्य, कठ, मुण्डक), गीता प्रेस, गोरखपुर, 2018
- ऋग्वेद (सायण भाष्य सहित), चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 2016
- यजुर्वेद (हिन्दी अनुवाद सहित), गीता प्रेस, गोरखपुर, 2017
- अथर्ववेद (सम्पूर्ण संहिता), चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 2015
- महाभारत (शान्ति पर्व), गीता प्रेस, गोरखपुर, 2019
- वाल्मीकि रामायण (अयोध्या एवं उत्तरकाण्ड), गीता प्रेस, गोरखपुर, 2018
- राधाकृष्णन, डॉ. सर्वपल्ली, भारतीय दर्शन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014
- दिनकर, रामधारी सिंह, संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, 2016
- द्विवेदी, हजारीप्रसाद, भारतीय संस्कृति और मानव मूल्य, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013
- पाण्डेय, रामशंकर, वैदिक संस्कृति और मानवता, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2012
- शुक्ल, रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 2015
- शर्मा, चन्द्रधर, भारतीय दर्शन की रूपरेखा, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2017
- वेबसाइट //www.g20.org/en/
- वेबसाइट //www.panchjanya.com

ગુજરાત રાજ્યની પૂર્વપટ્ટીમાં આદિવાસીઓના શૈક્ષણિક વિકાસના પ્રશ્નો : એક અભ્યાસ

વસરા હેમંત એ.

શોધછાત્રા, Ph.D.

સારાંશ

ગુજરાત રાજ્યની પૂર્વપટ્ટીમાં વસતા આદિવાસી સમાજનો સામાજિક અને આર્થિક વિકાસ મોટા ભાગે તેમની શૈક્ષણિક સ્થિતિ પર નિર્ભર છે. રાજ્યમાં આદિવાસીઓની નોંધપાત્ર વસ્તી હોવા છતાં તેઓ શિક્ષણના ક્ષેત્રે હજુ પણ ગંભીર પછાતપણાનો સામનો કરે છે. ૨૦૧૧ની વસ્તી ગણતરી તથા UDISE+ ૨૦૨૩-૨૪ના આંકડાઓ અનુસાર આદિવાસીઓનો સાક્ષરતા દર રાજ્યના સરેરાશ કરતાં ઘણો ઓછો છે અને ખાસ કરીને કન્યાઓમાં શાળા છોડી દેવાનો દર ચિંતાજનક છે. બંધારણની કલમ ૪૬ દ્વારા રાજ્યને અનુસૂચિત આદિજાતિના શૈક્ષણિક અને આર્થિક હિતોની રક્ષા કરવાની જવાબદારી સોંપવામાં આવી હોવા છતાં ઇચ્છિત પરિણામો પ્રાપ્ત થયા નથી. આ અભ્યાસમાં આદિવાસીઓના શૈક્ષણિક વિકાસમાં અવરોધરૂપ બનેલા મુખ્ય પાંચ પ્રશ્નો—જગૃતિનો અભાવ, ગરીબી, સ્થળાંતર, કન્યાઓની ઉપેક્ષા અને ભાષાકીય તથા શૈક્ષણિક વાતાવરણની અછતનું વિશ્લેષણ કરવામાં આવ્યું છે. નિષ્કર્ષરૂપે લેખમાં સ્પષ્ટ કરવામાં આવ્યું છે કે આ સમસ્યાઓનું સર્વાંગી નિરાકરણ લાવ્યા વિના આદિવાસી સમાજનો ટકાઉ વિકાસ શક્ય નથી.

ચાવીરૂપ શબ્દો : આદિવાસીઓ (અનુસૂચિત આદિજાતિ), શૈક્ષણિક વિકાસ, સાક્ષરતા દર, ગુજરાત રાજ્ય (પૂર્વપટ્ટી), ગરીબી, સ્થળાંતર, કન્યા કેળવણી, ભાષાકીય અડચણ, કલમ ૪૬, સામાજિક-આર્થિક પછાતપણું.

● પ્રસ્તાવના

ગુજરાત રાજ્યના બનાસકાંઠા જિલ્લાના દાંતા તાલુકાથી લઈને દક્ષિણ ગુજરાતના વલસાડ અને ડાંગ જિલ્લાઓ સુધી ફેલાયેલા પૂર્વપટ્ટીના અંતરિયાળ પ્રદેશોમાં વિશાળ આદિવાસી વસ્તી વસે છે. કુદરતના ખોળામાં વસતા આ લોકોની જીવનશૈલી, સંસ્કૃતિ, ભાષા અને સામાજિક બંધારણ અન્ય સમાજોથી ભિન્ન છે. તેમ છતાં આધુનિક વિકાસપ્રક્રિયામાં આદિવાસી સમાજ સામાજિક, આર્થિક અને ખાસ કરીને શૈક્ષણિક દૃષ્ટિએ પછાત રહ્યો છે.

શિક્ષણ સમાજના સર્વાંગી વિકાસનું મુખ્ય સાધન છે. શિક્ષણના અભાવને કારણે આદિવાસી સમાજમાં ગરીબી, અજ્ઞાનતા, અંધશ્રદ્ધા અને સામાજિક અસમાનતા સતત ટકી રહી છે. આઝાદી બાદ સરકાર દ્વારા વિવિધ શૈક્ષણિક યોજનાઓ અમલમાં મૂકવામાં આવી હોવા છતાં આદિવાસી વિસ્તારોમાં શૈક્ષણિક વિકાસનું પ્રમાણ સંતોષકારક નથી. રાજ્યના અનેક આદિવાસી જિલ્લાઓમાં સાક્ષરતા દર અત્યંત નીચો જોવા મળે છે, જે આ અભ્યાસને આવશ્યક અને પ્રાસંગિક બનાવે છે.

આ સંશોધન લેખનો મુખ્ય ઉદ્દેશ આદિવાસીઓના શૈક્ષણિક વિકાસમાં અવરોધરૂપ બનતા પરિબળોની ઓળખ કરી તેમની સમીક્ષા કરવાનો છે, જેથી ભવિષ્યમાં વધુ અસરકારક નીતિગત આયોજન શક્ય બને.

● આદિવાસીઓના શૈક્ષણિક વિકાસના પ્રશ્નો

(૧) આદિવાસી લોકોમાં જગૃતિને અભાવ

આદિકાળથી જ આદિવાસી લોકો શિક્ષણથી વંચિત રહ્યા છે. અંગ્રેજોના સમયમાં પણ આદિવાસી લોકોના શિક્ષણ માટે નહિવત પ્રયત્નો થયા છે. પરિણામે આજે પણ તેઓ શિક્ષણ તરફ આકર્ષાયા નથી. લોકોને શિક્ષણ ન

મળવાનાં કારણે અજ્ઞાનતાના ડુંગરોમાં દટાતા જ ગયા અને અભણ અને અજ્ઞાન લોકોમાં જાગૃતિને અભાવ હોય તે સ્વાભાવિક છે. લોકોમાં અજ્ઞાત હોવાના કારણે કારણે તેઓ શિક્ષણનું મહત્વ સમજતા નથી. મોટાભાગના આદિવાસીઓને શિક્ષણ જગતને પૂરતો પરિચય પણ નથી. ૧૯૮૬ની નવી રાષ્ટ્રીય શિક્ષણનીતિ આવી ત્યારબાદ આદિવાસી લોકોને શિક્ષણ આપવા માટેના ઠીકઠીક પ્રમાણમાં પ્રયત્નો થયેલા જોવા મળે છે અને અભણ—અજ્ઞાન માતા-પિતાને શિક્ષણનું મહત્વ સમજવી, પોતાનાં બાળકોને શાળાએ મોકલાવવા માટે સઘન પ્રયત્નો કરવામાં આવે છે. તેના પરિણામે આજે કેટલાક આદિવાસી લોકોમાં જાગૃતિ આવી છે. પરંતુ મોટાભાગના આદિવાસી લોકોને શિક્ષણ આપવા માટેના ઠીકઠીક પ્રમાણમાં પ્રયત્નો થયેલા જોવા મળે છે અને અભણ—અજ્ઞાન માતા-પિતાને શિક્ષણનું મહત્વ સમજવી, પોતાનાં બાળકોને શાળાએ મોકલાવવા માટે સઘન પ્રયત્નો કરવામાં આવે છે. તેના પરિણામે આજે કેટલાક આદિવાસી લોકોમાં જાગૃતિ આવી છે. પરંતુ મોટાભાગના આદિવાસી લોકોમાં આજે પણ શિક્ષણ પ્રત્યેની ઉદાસીનતા જોવા મળે છે. આમ પોતાનાં બાળકોને શિક્ષણ અપાવવાની ઉદાસીનતા પાછળ આદિવાસી લોકોની જાગૃતિનો અભાવ મુખ્ય કારણ ગણાવી શકાય. આમ આદિવાસીઓના શૈક્ષણિક વિકાસ માટે લોકોમાં જાગૃતિને અભાવ એક વિકટ પ્રશ્ન છે.

(૨) ગરીબી (આદિવાસીઓની કંગાળ આર્થિક સ્થિતિ)

આદિવાસી લોકોમાં ગરીબીનું પ્રમાણ વધારે જોવા મળે છે. આજે પણ આદિવાસીના લોકો ગરીબીની હાડમારીમાં પિસાઈ રહ્યા છે. ગરીબીના કારણે આદિવાસી લોકો પોતાનાં બાળકોને શિક્ષણ આપવા માટે પૂરતું ધ્યાન આપતા નથી. જ્યારે પોતાના કુટુંબને જીવન-ગુજરાન ચલાવવા માટે પણ મુશ્કેલીઓ પડતી હોય, ત્યારે આજના ખર્ચાળ શિક્ષણ પાછળ ખર્ચ કરવાનું તો સ્વપ્નમાં પણ વિચારી શકતા નથી. પ્રાથમિક શિક્ષણ આપવાની જવાબદારી સરકારે સ્વીકારી છે. આથી સરકાર દ્વારા ૬ થી ૧૪ વર્ષની વયજૂનાં તમામ બાળકોને મફત, ફરજિયાત અને સાર્વત્રિક પ્રાથમિક શિક્ષણ આપવામાં આવે છે અને રાજ્યનાં તમામ બાળકો ૧ થી ૭ ધોરણ સુધીનું પ્રાથમિક શિક્ષણ મેળવે તે માટેના સઘન પ્રયત્નો પણ થઈ રહ્યા છે. પરંતુ ખરી વાસ્તવિકતા તો એ છે કે, ગરીબાઈના કારણે આદિવાસી લોકો રોજગારીને વધારે મહત્વ આપે છે અને ક્યારેક માતા-પિતા શાળાએ જતાં પોતાનાં બાળકોને પણ રોજગારીનાં કામમાં જોતરે છે. પરિણામે એવાં બાળકો નિયમિતરૂપે શાળામાં જઈ શકતાં નથી અને શિક્ષણ પૂરું કર્યા પહેલાં જ શાળા છોડી જાય છે. આમ સરકારની મફત પ્રાથમિક શિક્ષણની યોજના હોવા છતાં મોટાભાગના આદિવાસી લોકો ગરીબીનાં કારણે પોતાનાં બાળકોને શિક્ષણથી વંચિત રાખે છે. ત્યારે માધ્યમિક શિક્ષણ, ઉચ્ચતર માધ્યમિક શિક્ષણ અને ઉચ્ચ શિક્ષણની ફી ભરીને શિક્ષણ મેળવવાનો તો વિચાર જ ક્યાંથી કરી શકે.

આજનું શિક્ષણ એટલું ખર્ચાળ બની ગયું છે કે, મધ્યમવર્ગના લોકો માટે પણ મુશ્કેલભર્યું છે. ત્યારે માંડ માંડ પોતાનું જીવન-ગુજરાન ચલાવતા આદિવાસી લોકો શિક્ષણ મેળવવા ઈચ્છતા હોય તેમ છતાં પણ કંગાળ આર્થિક સ્થિતિના કારણે માધ્યમિક શિક્ષણ કે ઉચ્ચ શિક્ષણ મેળવી શકતા નથી અને આજે તો સરકારે ઉચ્ચ શિક્ષણને સ્વનિર્ભર બનાવવાની ખુલ્લા હાથે છૂટ આપી છે. જે આદિવાસી લોકો મોટે મોટામાં મોટો પડકાર છે. આમ ગરીબીના કારણે આદિવાસી લોકોના શૈક્ષણિક વિકાસ પૂરતા પ્રમાણમાં થયો નથી.

(૩) સ્થળાંતર

ગુજરાતની પૂર્વપટ્ટીમાં આદિવાસી લોકો વસે છે અને આ વિસ્તારની પ્રતિકૂળ ભૌગોલિક સ્થિતિના કારણે અહીં રોજગારી તકો બિલકુલ નહીવત જેવી છે. પરિણામે આદિવાસી લોકો રોજગારી મેળવવાના હેતુથી નજીકના શહેરોમાં સ્થળાંતર કરે છે. મોટાભાગના આદિવાસી લોકોની આર્થિક સ્થિતિ પણ સારી નથી. આથી તેઓ મૂડીરોકાણ કરીને પોતાનો વ્યવસાય કે ધંધો પણ કરી શકતા નથી. આથી મોટાભાગના આદિવાસી લોકો સ્થળાંતર કરીને રોજગારી મેળવે છે. આમ આદિવાસી લોકો મોટાભાગે સપ્ટેમ્બર પછી સ્થળાંતર કરતા હોય છે અને ત્યારબાદ છેક હોળી સુધી

તેઓ રોજગારીના સ્થળે રહેતા હોય છે. પરિણામે પોતાનાં બાળકોને પણ સાથે જ લઈ જતા હોય છે. આથી તેઓ પોતાનાં બાળકોને શિક્ષણથી વંચિત રાખે છે. કારણ કે જૂન માસમાં પોતાના ગામની શાળામાં બાળકને દાખલ કર્યા પછી બાળક સપ્ટેમ્બર સુધી શાળામાં જતું હોય છે અને ત્યારબાદ સ્થળાંતર કરવાના કારણે બાળક શાળા છોડી જાય છે. પરિણામે એવા કુટુંબના બાળકો શિક્ષણથી વંચિત રહી જાય છે. પછી તે ક્યારેય શિક્ષણ મેળવી શકતું નથી.

સ્થળાંતર કરવાના કારણે બાળકોનું શાળા છોડી જવાની બાબત સરકારના ધ્યાન પર આવવાથી સરકાર દ્વારા ખાસ કરીને ડીપીઈપી યોજના દ્વારા વૈકલ્પિક શિક્ષણ વ્યવસ્થા ઊભી કરીને બાળકોને બેકટસ્કૂલ, બ્રિજકોશ, ફાર્મસ્કૂલ, શેરીશાળા જેવા અનૌપચારિક શિક્ષણનાં કેન્દ્રો ઉભાં કરીને એવા બાળકોને શિક્ષણ આપવાનો પ્રયત્ન થઈ રહ્યો છે. પરંતુ તેમાં ધાર્યું પરિણામે મેળવી શકાયું નથી.

સ્થળાંતરના કારણે બાળકોને શિક્ષણ મેળવવાનો જે ઉત્તમ સમય છે. સોનેરી સમય છે તે જતો રહે છે અને ફરીથી આવી તક બાળકોને મળતી નથી. પરિણામે એવાં બાળકો કાયમ માટે શિક્ષણથી વંચિત રહી જાય છે. આદિવાસી લોકોના શૈક્ષણિક વિકાસ માટેની આ એક મોટામાં મોટી સમસ્યા ગણાવી શકાય.

(૪) કન્યાઓની ઉપેક્ષા (કન્યાઓને ઘરકામ માટે રોકવી)

આજના પુરુષ પ્રધાન સમાજ વ્યવસ્થાનો પ્રભાવ આદિવાસી લોકોમાં પણ જોવા મળે છે. આદિવાસી લોકો કન્યાઓને વધારે શિક્ષણ આપવામાં રસ દાખવતા નથી. શાળામાં મોકલવામાં પણ અનાકાની કરે છે. પોતાના ગામની શાળામાં જ્યાં સુધી શિક્ષણ મળે ત્યાં સુધીનું જ શિક્ષણ અપાવે છે. બીજા ગામની શાળામાં ભણવા માટે મોકલવાની પણ તેમની માનસિક તૈયારી હોતી નથી. પરિણામે આજે આદિવાસી કન્યાઓનું શિક્ષણ ઓછું જોવા મળે છે. આદિવાસી લોકો લગભગ દસ થી બાર વર્ષની ઉંમર થયા પછી પોતાનાં ઘરના કામોમાં પણ છોકરીઓને રોકે છે. જેમાં ખાસ કરીને ઘરનાં નાનાં બાળકોની દેખભાળ રાખવી, માતા-પિતા કમાવા જાય ત્યારે પણ તેમની સાથે જઈને નાનાં બાળકોની દેખભાળ રાખવા માટે મોટી છોકરીઓને સાથે જવું પડે છે. આ ઉપરાંત ઘરે પાણી ભરવા માટે, રસોઈ કરવા માટે, જંગલમાં લાકડાં લેવા જવું જેવાં કામોની સંપૂર્ણ જવાબદારી ઘરની છોકરીઓ ઉપર લાદવામાં આવે છે. પરિણામે કન્યાઓ વધારે શિક્ષણ મેળવી શકતી નથી અને કેટલાક મા-બાપ તો કન્યાઓને શાળાઓમાં મોલકતા પણ નથી. આમ આદિવાસી લોકોમાં જાગૃતિના અભાવના કારણે કન્યાઓની ઉપેક્ષા કરે છે. પરિણામે કન્યાઓનો શૈક્ષણિક વિકાસ થયો નથી.

(૫) શૈક્ષણિક વાતાવરણનો અભાવ

ગુજરાતની કુલ વસતિના લગભગ ૧૫ ટકા આદિવાસી લોકો છે અને તેઓ જુદી જુદી આદિવાસી ભાષા બોલે છે. ગુજરાતમાં લગભગ ૩૧ જેટલી આદિવાસી જાતિઓ નોંધાયેલી છે અને દરેક આદિવાસી જાતિને પોતાની એક આગવી ભાષા છે. જેને આપણે બોલી તરીકે ઓળખીએ છીએ. આમ દરેક આદિવાસી જાતિના લોકો પોતાનો જીજીવન-વ્યવહારમાં પોતાની આગવી ભાષા (બોલી)નો ઉપયોગ કરે છે. જેની સીધી અસર શિક્ષણ પર પડે છે.

પરિવારમાંથી જ્યારે બાળક પ્રથમ વખત જ શાળામાં જાય છે, ત્યારે જે ભાષાનો બાળકને પરિચય જ નથી, એવી ગુજરાતી ભાષાના માધ્યમથી શિક્ષણ મેળવવાનું થાય છે. ત્યારે બાળક મુંઝવણમાં મુકાય છે. આદિવાસી બાળકો ઘરના સીધા વાતાવરણમાંથી શાળામાં આવે છે, એટલે તેમને શુદ્ધ ગુજરાતી ભાષા સમજતી નથી. પરિણામે બાળકને ભણવામાં રસ પડતો નથી. આથી આદિવાસી બાળકોની સિદ્ધિ કક્ષાનું સ્તર નીચું જ રહે છે. જે આગળના અભ્યાસ માટે બાધા રૂપ બને છે. આના કારણે પણ આદિવાસી બાળકોનો શૈક્ષણિક વિકાસ થતો નથી.

આદિવાસી બાળકોને શૈક્ષણિક વાતાવરણ પૂરું પાડવાના હેતુથી નિવાસી શાળાઓ શરૂ કરવામાં આવી છે. પરંતુ આવા પ્રકારની નિવાસી શાળાઓ કે છાત્રાલયોની સગવડ પણ ઓછી છે. પરિણામે આદિવાસીઓનાં બધાં જ બાળકોને આવા પ્રકારની શાળાઓમાં શિક્ષણ મેળવવાની તક મળતી નથી. આથી નિવાસી શાળાઓ અને

છાત્રાલયોની સગવડ જે બાળકોને નથી મળતી તેવાં બાળકોને યોગ્ય શૈક્ષણિક વાતાવરણ મળતું નથી. પરિણામે આદિવાસી બાળકોને શૈક્ષણિક વિકાસ જે રીતે થવો જોઈએ તે રીતે થતો નથી. આમ આદિવાસી બાળકો માટે શૈક્ષણિક વાતાવરણનો અભાવ પણ શૈક્ષણિક વિકાસ માટેની મોટી સમસ્યા છે.

સંદર્ભસૂચિ:

1. અરુણભાઈ પટેલ, આદિવાસી ગુજરાત, નવજીવન મુદ્રણાલય, ગૂજરાત વિદ્યાપીઠ, અમદાવાદ-૧૮૮૮
2. ઈશ્વરભાઈ પટેલ, આરોગ્ય વિશે જાણવા જેવું, યોજના અંક-૧૭-૧૮, અમદાવાદ-૧૮૮૩
3. દવે હર્ષિદા, આદિવાસી મહિલાઓ અને વિકાસ, યુનિવર્સિટી ગ્રંથનિર્માણ બોર્ડ, ગુજરાત રાજ્ય, અમદાવાદ-૧૮૮૮
4. દેસાઈ ઉર્મિ, સામાજિક માનવશાસ્ત્ર, ભારતીય આદિજાતિ સંસ્થાઓ, રચના પ્રકાશન, અમદાવાદ, ૧૮૭૬-૭૭

रस-केन्द्रित काव्यदृष्टि से आधुनिक काव्यबोध तक : साहित्यदर्पण और काव्यालंकारकारिका

डॉ. ज्योति के. मकवाणा

एम.ए., एम.फिल., यु.जी.सी., नेट-पीएच. डी

सारांश

संस्कृत काव्यशास्त्र भारतीय ज्ञान-परम्परा का एक महत्वपूर्ण अंग है। इसमें काव्य के स्वरूप, प्रयोजन, कारण, रस, गुण, दोष, रीति, ध्वनि तथा अलंकार जैसे तत्त्वों का विस्तृत विवेचन किया गया है। आचार्य विश्वनाथकृत साहित्यदर्पण मध्यकालीन संस्कृत काव्यशास्त्र का अत्यन्त प्रामाणिक एवं प्रभावशाली ग्रन्थ माना जाता है, जबकि आचार्य रेवाप्रसाद द्विवेदीकृत काव्यालंकारकारिका आधुनिक संस्कृत काव्यचिन्तन की प्रतिनिधि कृति है। दोनों ग्रन्थ भिन्न कालों में रचित होने पर भी काव्य के सौन्दर्यतत्त्वों का व्यवस्थित निरूपण करते हैं।

प्रस्तुत शोधपत्र में मङ्गलाचरण, काव्यप्रयोजन, काव्यकारण, काव्यलक्षण, रस, भाव, गुण, दोष, रीति, ध्वनि तथा अलंकार आदि प्रमुख काव्यशास्त्रीय तत्त्वों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि आचार्य विश्वनाथ ने पूर्ववर्ती काव्यशास्त्रीय परम्परा का समन्वय करते हुए रस को काव्य का आत्मतत्त्व माना है, जबकि आचार्य रेवाप्रसाद द्विवेदी ने उसी परम्परा को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में अधिक सुबोध, शिक्षणोपयोगी तथा व्यावहारिक रूप में प्रस्तुत किया है। दोनों आचार्यों की दृष्टियों में अनेक बिन्दुओं पर साम्य दिखाई देता है, किन्तु युग, शैली, प्रस्तुति तथा व्याख्या के स्तर पर उल्लेखनीय भिन्नताएँ भी विद्यमान हैं। यह अध्ययन संस्कृत काव्यशास्त्र की निरन्तरता, विकास तथा समकालीन प्रासंगिकता को समझने में सहायक सिद्ध होता है।

मुख्य शब्द: साहित्यदर्पण, काव्यालंकारकारिका, विश्वनाथ, रेवाप्रसाद द्विवेदी, रस, काव्यलक्षण, ध्वनि, अलंकार, संस्कृत काव्यशास्त्र।

• शोध की पृष्ठभूमि

भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा अत्यन्त प्राचीन एवं समृद्ध रही है। भरतमुनि से आरम्भ होकर भामह, दण्डी, वामन, आनन्दवर्धन, अभिनवगुप्त, मम्मट तथा विश्वनाथ जैसे आचार्यों ने काव्य के विविध तत्त्वों का क्रमशः विकास किया।¹ इस परम्परा का मूल उद्देश्य केवल काव्य की परिभाषा देना नहीं, बल्कि उसके सौन्दर्य, प्रभाव तथा सहृदय के अनुभव का दार्शनिक विवेचन करना भी रहा है।

मध्यकाल में आचार्य विश्वनाथ द्वारा रचित साहित्यदर्पण ने पूर्ववर्ती सिद्धान्तों का समन्वय करते हुए रसप्रधान काव्यदृष्टि को प्रतिष्ठित किया।² आधुनिक युग में आचार्य रेवाप्रसाद द्विवेदी ने काव्यालंकारकारिका के माध्यम से उन्हीं सिद्धान्तों को नवीन शैली, सरल भाषा तथा शिक्षणोपयोगी स्वरूप में पुनः प्रस्तुत किया।³

यद्यपि दोनों ग्रन्थों पर पृथक्-पृथक् अध्ययन उपलब्ध हैं, तथापि प्रमुख काव्यशास्त्रीय तत्त्वों का समग्र तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन अपेक्षाकृत कम दिखाई देता है। इसी कारण यह विषय अनुसंधान की दृष्टि से महत्वपूर्ण एवं प्रासंगिक प्रतीत होता है।

• शोध का उद्देश्य

प्रस्तुत शोधपत्र के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं-

- ✓ साहित्यदर्पण एवं काव्यालंकारकारिका के प्रमुख काव्यशास्त्रीय तत्त्वों का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- ✓ दोनों आचार्यों की काव्य-दृष्टि में निहित साम्य एवं वैषम्य का विश्लेषण करना।
- ✓ परम्परागत एवं आधुनिक संस्कृत काव्यचिन्तन के अन्तर्सम्बन्ध को स्पष्ट करना।
- ✓ आधुनिक संस्कृत अध्ययन में दोनों ग्रन्थों की उपयोगिता एवं प्रासंगिकता का मूल्यांकन करना।

• शोध-पद्धति

इस शोधपत्र में मुख्यतः तुलनात्मक, विश्लेषणात्मक तथा वर्णनात्मक शोध-पद्धतियों का उपयोग किया गया है। अध्ययन का आधार साहित्यदर्पण तथा काव्यालंकारकारिका के मूल ग्रन्थ हैं।

आवश्यकतानुसार नाट्यशास्त्र, काव्यप्रकाश, ध्वन्यालोक, काव्यालंकार तथा अन्य सहायक ग्रन्थों का भी उपयोग किया गया है। इससे विषय की व्यापकता तथा निष्पक्षता बनाए रखने का प्रयास किया गया है।⁴

• प्रस्तावना

संस्कृत काव्यशास्त्र भारतीय साहित्यिक चिन्तन की ऐसी परम्परा है, जिसमें काव्य को केवल कलात्मक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि मानव-जीवन के सौन्दर्य, संवेदना और सांस्कृतिक चेतना का माध्यम माना गया है। इस परम्परा का विकास अनेक शताब्दियों में हुआ और प्रत्येक आचार्य ने अपने पूर्ववर्तियों के सिद्धान्तों का परिष्कार करते हुए नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत किया।⁵

आचार्य विश्वनाथकृत साहित्यदर्पण संस्कृत काव्यशास्त्र का एक सर्वमान्य ग्रन्थ है। इसमें काव्य के स्वरूप, प्रयोजन, रस, गुण, दोष, रीति, ध्वनि तथा अलंकार आदि विषयों का अत्यन्त व्यवस्थित एवं समन्वित विवेचन प्राप्त होता है। विशेषतः उनका प्रसिद्ध काव्यलक्षण-"वाक्यं रसात्मकं काव्यम्"-भारतीय काव्यशास्त्र में रसवाद की परिपक्व अभिव्यक्ति माना जाता है।⁶

दूसरी ओर आचार्य रेवाप्रसाद द्विवेदी आधुनिक संस्कृत जगत् के प्रमुख विद्वानों में गिने जाते हैं। उनकी काव्यालंकारकारिका परम्परागत काव्यशास्त्र का पुनर्पाठ प्रस्तुत करती है। इस ग्रन्थ में शास्त्रीय सिद्धान्तों को आधुनिक अध्येता की आवश्यकताओं के अनुरूप सरल, क्रमबद्ध तथा तर्कसंगत शैली में प्रस्तुत किया गया है।⁷

दोनों ग्रन्थों के मध्य लगभग छह शताब्दियों का कालान्तर है, फिर भी दोनों का मूल उद्देश्य काव्य के स्वरूप और उसके सौन्दर्य का विवेचन करना है। एक ओर साहित्यदर्पण परम्परागत काव्यशास्त्र की परिपक्व अभिव्यक्ति है, तो दूसरी ओर काव्यालंकारकारिका उसी परम्परा का आधुनिक पुनर्संयोजन है। इस दृष्टि से दोनों ग्रन्थों का तुलनात्मक अध्ययन संस्कृत काव्यशास्त्र की निरन्तरता, विकास तथा वर्तमान प्रासंगिकता को समझने के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

प्रस्तुत शोधपत्र में मङ्गलाचरण से लेकर अलंकार तक प्रमुख काव्यशास्त्रीय तत्त्वों का क्रमशः तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक विवेचन किया जाएगा, जिससे यह स्पष्ट हो सके कि परम्परा और आधुनिकता के मध्य किस प्रकार का वैचारिक सम्बन्ध विद्यमान है।

१. मङ्गलाचरण का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन

संस्कृत वाङ्मय में किसी भी ग्रन्थ का आरम्भ मङ्गलाचरण से करना केवल धार्मिक परम्परा नहीं, बल्कि भारतीय ज्ञान-परम्परा की एक सांस्कृतिक एवं दार्शनिक विशेषता है। मङ्गलाचरण के माध्यम से लेखक ग्रन्थ की निर्विघ्न पूर्णता, ज्ञान की प्रतिष्ठा तथा अपने आराध्य के प्रति श्रद्धा व्यक्त करता है। साथ ही यह ग्रन्थ के मूल प्रतिपाद्य का संकेत भी देता है।⁸

आचार्य विश्वनाथ साहित्यदर्पण का आरम्भ मङ्गल-वन्दना से करते हैं। उनका मङ्गलाचरण केवल ईश्वर-स्तुति नहीं है, बल्कि सम्पूर्ण ग्रन्थ की दार्शनिक भूमिका भी निर्मित करता है। विश्वनाथ के अनुसार काव्य का चरम लक्ष्य रसानुभूति है और रस का अनुभव सहृदय को अलौकिक आनन्द प्रदान करता है। इस कारण उनका मङ्गलाचरण सम्पूर्ण काव्यशास्त्रीय दृष्टि का संकेतक माना जा सकता है।⁹

इसके विपरीत आचार्य रेवाप्रसाद द्विवेदी काव्यालंकारकारिका में परम्परा का सम्मान करते हुए मङ्गलाचरण प्रस्तुत करते हैं, किन्तु उसकी अभिव्यक्ति अधिक सरल, संक्षिप्त तथा आधुनिक है। उनके यहाँ विद्या, संस्कृत परम्परा तथा काव्यबोध की महत्ता पर विशेष बल मिलता है।¹⁰

दोनों आचार्य मङ्गलाचरण को आवश्यक मानते हैं, किन्तु उनके उद्देश्य की अभिव्यक्ति में अन्तर दिखाई देता है। विश्वनाथ के यहाँ दार्शनिक गाम्भीर्य अधिक है, जबकि रेवाप्रसाद द्विवेदी के यहाँ शिक्षणोपयोगिता एवं सहजता प्रमुख है। इस प्रकार आधुनिक ग्रन्थ में परम्परा का निर्वाह होते हुए भी अभिव्यक्ति समयानुकूल रूप ग्रहण करती है।

२. काव्यप्रयोजन का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन

संस्कृत काव्यशास्त्र में काव्यप्रयोजन का अर्थ उस उद्देश्य से है जिसकी पूर्ति के लिए काव्य की रचना की जाती है। भारतीय आचार्यों ने काव्य को केवल मनोरंजन का साधन न मानकर शिक्षा, लोकहित, नैतिक प्रेरणा तथा आनन्द का माध्यम माना है।¹¹

आचार्य विश्वनाथ पूर्ववर्ती आचार्यों की परम्परा का अनुसरण करते हुए स्वीकार करते हैं कि काव्य से यश, अर्थ, व्यवहारज्ञान, अमङ्गल-निवारण तथा सहृदय को रसजनित आनन्द प्राप्त होता है। उनके अनुसार इन सभी प्रयोजनों में रसास्वादन सर्वोच्च स्थान रखता है, क्योंकि वही काव्य की आत्मा को प्रकट करता है।¹²

आचार्य रेवाप्रसाद द्विवेदी काव्यप्रयोजन की व्याख्या करते समय आधुनिक समाज की आवश्यकताओं को भी ध्यान में रखते हैं। उनके अनुसार श्रेष्ठ काव्य मनुष्य के सौन्दर्यबोध, सांस्कृतिक चेतना, संवेदनशीलता तथा विवेक का विकास करता है। इस प्रकार काव्य केवल आनन्द का साधन नहीं, बल्कि मानवीय व्यक्तित्व के परिष्कार का प्रभावी माध्यम भी है।¹³

दोनों आचार्यों के मतों में मूलभूत विरोध नहीं है। अन्तर केवल दृष्टिकोण का है। विश्वनाथ का केन्द्र रसानुभूति है, जबकि रेवाप्रसाद द्विवेदी रस के साथ सामाजिक, सांस्कृतिक तथा शैक्षिक उपयोगिता पर भी बल देते हैं। यह अन्तर दोनों के युग और उनकी शैक्षणिक दृष्टि को स्पष्ट करता है।

३. काव्यकारण का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन

काव्य की रचना किन कारणों से सम्भव होती है, यह प्रश्न संस्कृत काव्यशास्त्र का अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय है। अधिकांश आचार्यों ने प्रतिभा, व्युत्पत्ति तथा अभ्यास को काव्यसृजन के प्रमुख कारण माना है।¹⁴

आचार्य विश्वनाथ के अनुसार प्रतिभा जन्मजात सृजनात्मक शक्ति है। व्युत्पत्ति से अभिप्राय शास्त्र, साहित्य तथा लोकानुभव के गहन अध्ययन से है, जबकि अभ्यास निरन्तर लेखन एवं साधना का परिणाम है। इन तीनों के समन्वय से ही उत्कृष्ट काव्य का निर्माण सम्भव होता है।

आचार्य रेवाप्रसाद द्विवेदी भी इसी मत का समर्थन करते हैं, किन्तु वे यह स्पष्ट करते हैं कि आधुनिक युग में कवि के लिए व्यापक अध्ययन, मौलिक चिन्तन तथा निरन्तर अभ्यास समान रूप से आवश्यक हैं। केवल प्रतिभा के आधार पर स्थायी साहित्य का सृजन सम्भव नहीं माना जा सकता।

विश्वनाथ का विवेचन शास्त्रीय आधार पर अधिक केन्द्रित है, जबकि रेवाप्रसाद द्विवेदी ने उसी सिद्धान्त को आधुनिक साहित्यिक सन्दर्भ में पुनः स्पष्ट किया है। इस प्रकार दोनों के विचार परस्पर पूरक प्रतीत होते हैं।

४. काव्यलक्षण का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन

संस्कृत काव्यशास्त्र में काव्यलक्षण का प्रश्न अत्यन्त महत्वपूर्ण माना गया है। प्रत्येक आचार्य ने अपनी काव्य-दृष्टि के अनुरूप काव्य की परिभाषा प्रस्तुत की है।

आचार्य विश्वनाथ का प्रसिद्ध काव्यलक्षण है-"वाक्यं रसात्मकं काव्यम्"¹⁵ इस परिभाषा के अनुसार वही रचना काव्य कहलाती है जिसमें रस की अनुभूति हो। इस प्रकार उन्होंने रस को काव्य का आत्मतत्त्व स्वीकार किया है।

आचार्य रेवाप्रसाद द्विवेदी रस की प्रधानता को स्वीकार करते हुए यह भी स्पष्ट करते हैं कि भाषा की स्वाभाविकता, अर्थ की गाम्भीर्य, उपयुक्त अलंकार, गुण तथा प्रभावी अभिव्यक्ति भी श्रेष्ठ काव्य के अनिवार्य अंग हैं। उनके मत में काव्य की उत्कृष्टता किसी एक तत्त्व पर नहीं, बल्कि सभी काव्यशास्त्रीय तत्त्वों के समन्वय पर निर्भर करती है।

विश्वनाथ का काव्यलक्षण रसप्रधान सिद्धान्त की परिपक्व अभिव्यक्ति है, जबकि रेवाप्रसाद द्विवेदी का दृष्टिकोण अधिक समन्वयवादी है। आधुनिक साहित्यिक परिप्रेक्ष्य में उनका मत काव्य की व्यापक संरचना को समझने में अधिक उपयोगी प्रतीत होता है, यद्यपि उसकी मूल प्रेरणा परम्परागत रसवाद से ही प्राप्त होती है।

५. रस का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन

भारतीय काव्यशास्त्र में रस को काव्य का प्राणतत्त्व माना गया है। भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में रस-सिद्धान्त की आधारशिला रखी, जिसे आनन्दवर्धन, अभिनवगुप्त, मम्मट तथा विश्वनाथ जैसे आचार्यों ने और अधिक विकसित किया। आधुनिक संस्कृत काव्यचिन्तन में आचार्य रेवाप्रसाद द्विवेदी ने भी इसी परम्परा को नवीन दृष्टि से प्रस्तुत किया है।¹⁶

आचार्य विश्वनाथ का सम्पूर्ण काव्यदर्शन रस के इर्द-गिर्द विकसित होता है। उनका प्रसिद्ध कथन "वाक्यं रसात्मकं काव्यम्" केवल काव्यलक्षण नहीं, बल्कि उनके सम्पूर्ण सौन्दर्यशास्त्र का आधार है। उनके अनुसार विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भावों के समुचित संयोग से स्थायीभाव परिपक्व होकर रस का रूप ग्रहण करता है और सहृदय पाठक उसमें अलौकिक आनन्द का अनुभव करता है।¹⁷

आचार्य रेवाप्रसाद द्विवेदी भी रस की अनिवार्यता स्वीकार करते हैं, किन्तु वे उसकी व्याख्या आधुनिक साहित्यिक अनुभव के सन्दर्भ में करते हैं। उनके अनुसार रस केवल शास्त्रीय परिभाषा का विषय नहीं, बल्कि पाठक की संवेदना, सांस्कृतिक चेतना और सौन्दर्यबोध का परिष्कृत अनुभव है। इसलिए वे रस को जीवनानुभूति और साहित्यिक अनुभूति के बीच सेतु के रूप में देखते हैं।¹⁸

दोनों आचार्यों में रस की प्रधानता निर्विवाद है। अन्तर केवल प्रस्तुति का है। विश्वनाथ रस को दार्शनिक गहराई के साथ प्रतिपादित करते हैं, जबकि रेवाप्रसाद द्विवेदी उसकी आधुनिक व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार आधुनिक काव्यबोध में भी रस-सिद्धान्त की उपयोगिता बनी रहती है।

६. भाव (रस-निष्पत्ति के सन्दर्भ में) का तुलनात्मक अध्ययन

रस की निष्पत्ति का मूल आधार भाव है। भरतमुनि ने स्थायीभाव, विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भावों का जो वर्गीकरण प्रस्तुत किया, वही आगे की काव्यशास्त्रीय परम्परा का आधार बना।¹⁹

आचार्य विश्वनाथ साहित्यदर्पण में भावों का विस्तृत विवेचन करते हुए स्पष्ट करते हैं कि रस का अस्तित्व भावों के बिना सम्भव नहीं है। स्थायीभाव रस का बीज है, जबकि विभाव, अनुभाव और संचारी भाव उसके विकास के साधन हैं।

आचार्य रेवाप्रसाद द्विवेदी भावों की शास्त्रीय व्यवस्था को स्वीकार करते हैं, परन्तु उनका विवेचन अधिक शिक्षणोपयोगी एवं व्यवहारिक है। वे भाव को कवि और सहृदय के मध्य संवेदनात्मक संवाद का माध्यम मानते हैं। उनके अनुसार श्रेष्ठ काव्य वही है जो पाठक के अन्तःकरण में जीवित अनुभूति उत्पन्न करे।²⁰

विश्वनाथ भावों का विश्लेषण शास्त्रीय विस्तार से करते हैं, जबकि रेवाप्रसाद द्विवेदी उनके व्यावहारिक और सौन्दर्यात्मक पक्ष पर अधिक बल देते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि आधुनिक प्रस्तुति परम्परा का विरोध नहीं, बल्कि उसका पुनर्पाठ है।

७. गुण का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन

संस्कृत काव्यशास्त्र में गुण वे तत्त्व हैं जो काव्य की अभिव्यक्ति को प्रभावपूर्ण, सरस और ग्राह्य बनाते हैं। वामन, मम्मट और विश्वनाथ आदि ने गुणों की विभिन्न प्रकार से व्याख्या की है।²¹

आचार्य विश्वनाथ के अनुसार माधुर्य, ओज और प्रसाद-ये तीन गुण काव्य की अभिव्यक्ति को परिष्कृत करते हैं। वे इन्हें रस के धर्म के रूप में स्वीकार करते हैं। जहाँ रस की प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति होती है, वहाँ ये गुण स्वतः प्रकट होते हैं।²²

आचार्य रेवाप्रसाद द्विवेदी भी इन्हीं गुणों को स्वीकार करते हैं, किन्तु उनकी दृष्टि आधुनिक है। वे भाषा की सहजता, अर्थ की स्पष्टता तथा सम्प्रेषणीयता को गुणों का व्यावहारिक स्वरूप मानते हैं। उनके अनुसार उत्कृष्ट काव्य वही है जो विद्वान और सामान्य पाठक-दोनों के लिए ग्राह्य हो।²³

विश्वनाथ गुणों को रस की दृष्टि से देखते हैं, जबकि रेवाप्रसाद द्विवेदी साहित्यिक सम्प्रेषण और प्रभावशीलता पर अधिक बल देते हैं। दोनों के विचारों का समन्वय आधुनिक साहित्य-अध्ययन में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होता है।

८. दोष का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन

गुण जहाँ काव्य की शोभा बढ़ाते हैं, वहीं दोष उसके प्रभाव को कम कर देते हैं। इस कारण संस्कृत काव्यशास्त्र में दोषों का अध्ययन गुणों के समान ही महत्वपूर्ण माना गया है।²⁴

आचार्य विश्वनाथ शब्ददोष, अर्थदोष तथा रसदोष का विवेचन करते हुए स्पष्ट करते हैं कि दोष वही है जो सहृदय के आनन्द में बाधा उत्पन्न करे। उनके अनुसार रस की सिद्धि ही श्रेष्ठ काव्य का लक्ष्य है, अतः जो तत्त्व रस की अभिव्यक्ति को बाधित करे, वही वास्तविक दोष है।²⁵

आचार्य रेवाप्रसाद द्विवेदी दोषों की चर्चा करते समय उनके व्यावहारिक प्रभाव पर विशेष बल देते हैं। वे मानते हैं कि कृत्रिम भाषा, अस्पष्ट अर्थ, असंगत भाव अथवा अनावश्यक अलंकार काव्य की प्रभावशीलता को कम कर देते हैं। इसलिए दोषों से बचना केवल शास्त्रीय आवश्यकता नहीं, बल्कि सफल साहित्य-सृजन की अनिवार्य शर्त है।²⁶

विश्वनाथ दोषों का सूक्ष्म वर्गीकरण प्रस्तुत करते हैं, जबकि रेवाप्रसाद द्विवेदी उनके साहित्यिक परिणामों पर बल देते हैं। इस प्रकार दोनों की दृष्टियाँ परस्पर पूरक हैं और आधुनिक आलोचना के लिए समान रूप से महत्वपूर्ण हैं।

९. रीति का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन

संस्कृत काव्यशास्त्र में "रीति" का अर्थ केवल भाषा की शैली नहीं है, बल्कि शब्दों की ऐसी कलात्मक योजना है जो काव्य को विशिष्ट सौन्दर्य प्रदान करती है। आचार्य वामन ने तो "रीतिरात्मा काव्यस्य" कहकर रीति को काव्य की आत्मा तक माना है।²⁷

आचार्य विश्वनाथ साहित्यदर्पण में रीति का महत्व स्वीकार करते हैं, किन्तु वे उसे रस के अधीन मानते हैं। उनके अनुसार वैदर्भी, गौड़ी तथा पाञ्चाली रीतियाँ भाषा और शैली को प्रभावशाली बनाती हैं, परन्तु उनका वास्तविक महत्व तभी है जब वे रस की अभिव्यक्ति में सहायक हों।²⁸

आचार्य रेवाप्रसाद द्विवेदी रीति की व्याख्या आधुनिक साहित्यिक दृष्टि से करते हैं। उनके अनुसार प्रत्येक कवि की अपनी अभिव्यक्ति-शैली होती है और वही उसकी साहित्यिक पहचान बनाती है। इसलिए रीति केवल भाषिक व्यवस्था नहीं, बल्कि कवि के व्यक्तित्व, अनुभूति तथा सांस्कृतिक परिवेश का भी परिचायक है।²⁹

विश्वनाथ की दृष्टि में रीति रस की सहयोगिनी है, जबकि रेवाप्रसाद द्विवेदी उसे सृजनात्मक अभिव्यक्ति का गतिशील माध्यम मानते हैं। दोनों मतों का समन्वय आधुनिक काव्यालोचना को अधिक व्यापक आधार प्रदान करता है।

१०. ध्वनि का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन

ध्वनि-सिद्धान्त भारतीय काव्यशास्त्र की सर्वाधिक प्रभावशाली उपलब्धियों में से एक है। आचार्य आनन्दवर्धन ने ध्वनि को काव्य की आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित किया।³⁰

आचार्य विश्वनाथ ध्वनि को रसाभिव्यक्ति का प्रभावशाली साधन मानते हैं। उनके अनुसार जब शब्द अपने प्रत्यक्ष अर्थ से आगे बढ़कर सहृदय के मन में सूक्ष्म अर्थ का संचार करते हैं, तभी काव्य की वास्तविक शक्ति प्रकट होती है।³¹

आचार्य रेवाप्रसाद द्विवेदी ध्वनि की आधुनिक व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। उनके अनुसार ध्वनि केवल व्यञ्जना नहीं, बल्कि प्रतीक, संकेत, बिम्ब और सांस्कृतिक अर्थ-संरचना का भी आधार है। आधुनिक साहित्य में अनेक अर्थ-स्तरों की उपस्थिति ध्वनि की व्यापकता को सिद्ध करती है।

विश्वनाथ ध्वनि को रस की सिद्धि का साधन मानते हैं, जबकि रेवाप्रसाद द्विवेदी उसकी आधुनिक व्याख्या करते हुए उसे पाठकीय अनुभव से जोड़ते हैं। इस प्रकार ध्वनि का सिद्धान्त आज भी प्रासंगिक बना हुआ है।

११. अलंकार का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन

अलंकार काव्य के सौन्दर्य को बढ़ाने वाले तत्त्व हैं। भामह और दण्डी ने अलंकार को विशेष महत्व दिया, जबकि उत्तरवर्ती आचार्यों ने उसे रस के अधीन माना।

आचार्य विश्वनाथ साहित्यदर्पण में शब्दालंकार और अर्थालंकार का व्यवस्थित विवेचन करते हुए स्पष्ट करते हैं कि अलंकार तभी सार्थक हैं जब वे रस की अभिव्यक्ति में सहायक हों। केवल अलंकारों की अधिकता श्रेष्ठ काव्य का प्रमाण नहीं है।

आचार्य रेवाप्रसाद द्विवेदी भी अलंकारों के महत्त्व को स्वीकार करते हैं, किन्तु वे उन्हें आधुनिक साहित्यिक अभिव्यक्ति का प्रभावी उपकरण मानते हैं। उनके अनुसार उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, प्रतीक तथा अन्य अलंकार अर्थ को अधिक प्रभावशाली और सौन्दर्यपूर्ण बनाते हैं।

विश्वनाथ के यहाँ रस प्रधान और अलंकार गौण हैं, जबकि रेवाप्रसाद द्विवेदी अलंकारों की व्यावहारिक तथा अभिव्यक्तिपरक उपयोगिता पर अधिक बल देते हैं। दोनों मत मिलकर काव्य के सौन्दर्य को समग्र रूप में समझने की प्रेरणा देते हैं।

१२. साहित्यदर्पण एवं काव्यालंकारकारिका : साम्य एवं वैषम्य

(क) साम्य

1. दोनों ग्रन्थ संस्कृत काव्यशास्त्र की समृद्ध परम्परा पर आधारित हैं।
2. दोनों आचार्य रस को काव्य का प्रमुख तत्त्व स्वीकार करते हैं।
3. दोनों काव्य में गुण, दोष, रीति, ध्वनि तथा अलंकार के महत्त्व को स्वीकार करते हैं।
4. दोनों के अनुसार काव्य का उद्देश्य सहृदय को आनन्द प्रदान करना तथा उसके भाव-जगत् का परिष्कार करना है।
5. दोनों ग्रन्थ पूर्ववर्ती आचार्यों-भरतमुनि, भामह, दण्डी, आनन्दवर्धन, वामन तथा मम्मट-की परम्परा से प्रेरित हैं।
6. दोनों ग्रन्थ भारतीय काव्यशास्त्र की निरन्तरता और विकास के सशक्त प्रमाण हैं।

(ख) वैषम्य

1. साहित्यदर्पण मध्यकालीन ग्रन्थ है, जबकि काव्यालंकारकारिका आधुनिक युग की कृति है।
2. विश्वनाथ का विवेचन विस्तृत एवं दार्शनिक है, जबकि रेवाप्रसाद द्विवेदी का विवेचन संक्षिप्त, सरल तथा शिक्षणोपयोगी है।
3. विश्वनाथ रस को काव्य का आत्मतत्त्व मानते हैं, जबकि रेवाप्रसाद द्विवेदी रस के साथ भाषा, शैली और सम्प्रेषणीयता को भी समान महत्त्व देते हैं।
4. साहित्यदर्पण में सिद्धान्तों का विस्तृत विश्लेषण है, जबकि काव्यालंकारकारिका में उनका व्यवस्थित एवं आधुनिक पुनर्प्रस्तुतीकरण मिलता है।
5. विश्वनाथ का लक्ष्य शास्त्रीय परम्परा का समन्वय है, जबकि रेवाप्रसाद द्विवेदी का उद्देश्य उसी परम्परा को आधुनिक पाठकों और विद्यार्थियों के लिए सुगम बनाना है।
6. विश्वनाथ की शैली अधिक तर्कप्रधान है, जबकि रेवाप्रसाद द्विवेदी की शैली व्याख्यात्मक एवं अध्यापन-केंद्रित है।

• समीक्षात्मक निष्कर्ष

दोनों ग्रन्थों के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट होता है कि इनमें विरोध की अपेक्षा निरन्तरता अधिक है। साहित्यदर्पण जहाँ संस्कृत काव्यशास्त्र की परम्परा का परिपक्व स्वरूप प्रस्तुत करता है, वहीं काव्यालंकारकारिका उसी परम्परा को आधुनिक युग के अनुरूप पुनः व्याख्यायित करती है। अतः दोनों ग्रन्थों का संयुक्त अध्ययन भारतीय काव्यशास्त्र के विकासक्रम को समझने के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

पादटीप

- ¹ विश्वनाथ कविराज, साहित्यदर्पण, प्रथम परिच्छेद।
- ² रेवाप्रसाद द्विवेदी, काव्यालंकारकारिका, भूमिका।
- ³ बलदेव उपाध्याय, संस्कृत साहित्य का इतिहास, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।
- ⁴ विश्वनाथ कविराज, साहित्यदर्पण, प्रथम परिच्छेद, मंगलश्लोक।
- ⁵ रेवाप्रसाद द्विवेदी, काव्यालंकारकारिका, प्रस्तावना।
- ⁶ मम्मट, काव्यप्रकाश, प्रथम उल्लास।
- ⁷ विश्वनाथ कविराज, साहित्यदर्पण, प्रथम एवं तृतीय परिच्छेद।
- ⁸ रेवाप्रसाद द्विवेदी, काव्यालंकारकारिका, कारिका-प्रकरण।
- ⁹ भामह, काव्यालंकार, प्रथम परिच्छेद।
- ¹⁰ विश्वनाथ कविराज, साहित्यदर्पण, प्रथम परिच्छेद।
- ¹¹ रेवाप्रसाद द्विवेदी, काव्यालंकारकारिका।
- ¹² साहित्यदर्पण, तृतीय परिच्छेद।
- ¹³ रेवाप्रसाद द्विवेदी, काव्यालंकारकारिका।
- ¹⁴ भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, षष्ठ अध्याय।
- ¹⁵ विश्वनाथ कविराज, साहित्यदर्पण, तृतीय परिच्छेद।
- ¹⁶ रेवाप्रसाद द्विवेदी, काव्यालंकारकारिका, रस-प्रकरण।
- ¹⁷ विश्वनाथ कविराज, साहित्यदर्पण, तृतीय परिच्छेद।
- ¹⁸ रेवाप्रसाद द्विवेदी, काव्यालंकारकारिका
- ¹⁹ वामन, काव्यालंकारसूत्रवृत्ति।
- ²⁰ विश्वनाथ कविराज, साहित्यदर्पण, अष्टम परिच्छेद।
- ²¹ रेवाप्रसाद द्विवेदी, काव्यालंकारकारिका, गुण-प्रकरण।
- ²² विश्वनाथ कविराज, साहित्यदर्पण, सप्तम एवं अष्टम परिच्छेद।
- ²³ रेवाप्रसाद द्विवेदी, काव्यालंकारकारिका, दोष-प्रकरण।
- ²⁴ वामन, काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, प्रथम अधिकरण।
- ²⁵ विश्वनाथ कविराज, साहित्यदर्पण, अष्टम परिच्छेद।
- ²⁶ रेवाप्रसाद द्विवेदी, काव्यालंकारकारिका, रीति-प्रकरण।
- ²⁷ आनन्दवर्धन, ध्वन्यालोक, प्रथम उद्योत।
- ²⁸ विश्वनाथ कविराज, साहित्यदर्पण, तृतीय परिच्छेद।
- ²⁹ रेवाप्रसाद द्विवेदी, काव्यालंकारकारिका, ध्वनि-प्रकरण।
- ³⁰ विश्वनाथ कविराज, साहित्यदर्पण, दशम परिच्छेद।
- ³¹ रेवाप्रसाद द्विवेदी, काव्यालंकारकारिका, अलंकार-प्रकरण।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- आनन्दवर्धनः. ध्वन्यालोकः (लोचन-बालप्रिया-टीकोपेतः). सम्पा. डॉ. रामसागर त्रिपाठी. वाराणसी: चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, १९९९.
- उपाध्याय, बलदेव. संस्कृत साहित्य का इतिहास. वाराणसी: शारदा निकेतन, चतुर्दश संस्करण, वि. सं. २०४८.
- द्विवेदी, रेवाप्रसाद. काव्यालङ्कारकारिका (अभिनव काव्यशास्त्रम्). वाराणसी: कालिदाससंस्थानम्, तृतीय संस्करण, २०१४.
- मम्मटः. काव्यप्रकाशः. व्याख्याकारः आचार्य विश्वेश्वर. वाराणसी: ज्ञानमण्डल लिमिटेड, षष्ठ संस्करण (पुनर्मुद्रण), २००५.
- मम्मटः. काव्यप्रकाशः ('शाङ्करी' हिन्दीव्याख्योपेतः). व्याख्या: डॉ. सत्यव्रत सिंह एवं डॉ. श्री सम्पूर्णानन्द. वाराणसी: चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, पुनर्मुद्रित संस्करण, २०१४.
- राजशेखरः. काव्यमीमांसा. अनुवादकः पं. केदारनाथ शर्मा सारस्वत. पटना: बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, द्वितीय संस्करण, १९६५.
- राजशेखरः. काव्यमीमांसा. सम्पा. डॉ. रमेश म. शुक्ल. अहमदाबाद: पार्श्व प्रकाशन, प्रथम संस्करण, १९८७.
- विश्वनाथः. साहित्यदर्पणम्. सम्पा. डॉ. सत्यव्रत सिंह. वाराणसी: चौखम्बा विद्याभवन, प्रथम संस्करण, १९७७.

भारतीय भाषाओं के राजनीतिक चिंतन और विश्लेषण में रामवृक्ष बेनीपुरी की भूमिका

मालकिया अरविंदभाई बीजलभाई

शोधच्छात्र, हिंदी भवन

सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, राजकोट, गुजरात

सारांश

यह शोध-पत्र भारतीय भाषाओं के राजनीतिक चिंतन के विकास में रामवृक्ष बेनीपुरी की भूमिका का विश्लेषण करता है। बेनीपुरी का साहित्य केवल रचनात्मक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन, समाजवादी विचारधारा और जनचेतना से संबद्ध एक सक्रिय राजनीतिक हस्तक्षेप है। उनके निबंध, रेखाचित्र, संस्मरण और पत्रकारिता राजनीतिक विश्लेषण को अभिजात वर्ग की बौद्धिक सीमाओं से निकालकर जनसामान्य की भाषा और अनुभव से जोड़ते हैं। प्रस्तुत अध्ययन में बेनीपुरी के साहित्य के माध्यम से राष्ट्रवादी चेतना, जनोन्मुख समाजवाद, मानवतावाद और सांस्कृतिक राजनीति के आयामों की विवेचना की गई है। यह शोध स्थापित करता है कि बेनीपुरी ने भारतीय भाषाओं में राजनीतिक विमर्श को लोकतांत्रिक, मानवीय और सामाजिक न्याय-केंद्रित स्वरूप प्रदान किया, जिससे साहित्य और राजनीति के पारंपरिक विभाजन को चुनौती मिली।

मुख्य शब्द: रामवृक्ष बेनीपुरी; भारतीय भाषाएँ; राजनीतिक चिंतन; राष्ट्रवाद; समाजवाद; जनचेतना।

• प्रस्तावना

रामवृक्ष बेनीपुरी का साहित्य केवल साहित्यिक कृतियों का संग्रह नहीं है, बल्कि भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन, समाजवादी विचारधारा और राष्ट्रीय चेतना का सशक्त राजनीतिक दस्तावेज़ है। उन्होंने साहित्य को समाज का दर्पण नहीं, बल्कि परिवर्तन की मशाल माना।¹ उनका राजनीतिक चिंतन औपचारिक दार्शनिक ग्रंथों के बजाय निबंधों, रेखाचित्रों, संस्मरणों और पत्रकारिता के माध्यम से विकसित हुआ। इस शोध-पत्र का उद्देश्य यह विश्लेषण करना है कि बेनीपुरी ने भारतीय भाषाओं में राजनीतिक विमर्श को जनोन्मुख, लोकतांत्रिक और मानवीय स्वरूप कैसे प्रदान किया।

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के दौर में साहित्य और राजनीति एक-दूसरे से गहराई से जुड़े हुए थे। इस काल के अनेक साहित्यकारों ने लेखन को राजनीतिक हस्तक्षेप का माध्यम बनाया। बेनीपुरी इसी परंपरा के प्रमुख प्रतिनिधि हैं, जिनका लेखन जनता की राजनीतिक चेतना से सीधे जुड़ा हुआ दिखाई देता है।²

• राष्ट्रवादी चेतना का प्रसार और सक्रिय भागीदारी

बेनीपुरी ने अपने लेखन को राष्ट्रीय आंदोलन की सक्रिय शक्ति के रूप में प्रयोग किया। 'युवक', 'जनता' और 'कर्मवीर' जैसी पत्रिकाओं के माध्यम से उन्होंने औपनिवेशिक शासन के अत्याचारों का निर्भीक विश्लेषण किया।³ उनका लेखन केवल घटनाओं का विवरण नहीं था, बल्कि जनता को राजनीतिक संघर्ष के लिए प्रेरित करने वाला वैचारिक आह्वान था।

उनके रेखाचित्र संग्रह माटी की मूरतों में चित्रित पात्र सामान्य जनजीवन से जुड़े हुए हैं, जिनके माध्यम से सामाजिक शोषण और राजनीतिक असमानता को उजागर किया गया है।⁴

- **राजनीतिक विश्लेषण का लोकतंत्रीकरण**

बेनीपुरी का सबसे बड़ा योगदान यह है कि उन्होंने राजनीतिक चिंतन को पंडितों और अभिजात वर्ग की भाषा से मुक्त कर आम जनता की भाषा में प्रस्तुत किया। उनके निबंध संग्रह गेहूँ और गुलाब में भौतिक आवश्यकताओं और सांस्कृतिक मूल्यों के द्वंद्व के माध्यम से राजनीति का विश्लेषण किया गया है।⁵ यह प्रतीकात्मक शैली किसानों, मजदूरों और मध्यम वर्ग को राजनीतिक विमर्श से जोड़ने में सफल रही।

- **समाजवादी दृष्टि और जनोन्मुख राजनीति**

बेनीपुरी का राजनीतिक चिंतन समाजवादी विचारधारा से गहराई से प्रभावित था। वे किसान और मजदूर को राजनीति के केंद्र में रखते हैं। उन्होंने ज़मींदारी प्रथा और पूँजीवादी शोषण को भारतीय लोकतंत्र की प्रमुख बाधा माना।⁶

स्वतंत्रता के बाद भी उन्होंने सत्ता-केंद्रित राजनीति और नैतिक पतन की आलोचना जारी रखी।

- **साम्राज्यवाद-विरोध और स्वतंत्रता चेतना**

स्वाधीनता आंदोलन में बेनीपुरी ने लगभग आठ वर्ष जेल में बिताए। इस अनुभव ने उनके लेखन को और अधिक धारदार बनाया। उनकी रचनाओं में साम्राज्यवाद के प्रति तीव्र विरोध और स्वतंत्रता के प्रति उत्कट आकांक्षा दिखाई देती है।⁷

रामविलास शर्मा के अनुसार, बेनीपुरी के लेखन में स्वतंत्रता आंदोलन के अंतर्विरोधों का अत्यंत सजीव चित्रण मिलता है।⁸

- **मानवतावाद और नैतिक राजनीति**

बेनीपुरी का राजनीतिक चिंतन केवल सत्ता परिवर्तन तक सीमित नहीं है। वे राजनीति को नैतिक और मानवीय मूल्यों से जोड़ते हैं। उनके लिए राजनीति का अंतिम उद्देश्य जनकल्याण और मानवीय गरिमा की रक्षा है। यह दृष्टि उनके संपूर्ण साहित्य में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।⁹

- **सांस्कृतिक राजनीति और नाट्य चेतना**

बेनीपुरी के नाटकों में भी राजनीतिक दृष्टि निहित है। अंबपाली नाटक सामाजिक रूढ़ियों, सत्ता और नैतिकता के प्रश्नों को ऐतिहासिक संदर्भ में प्रस्तुत करता है।¹⁰

इस प्रकार उनका नाट्य लेखन भारतीय भाषाओं के राजनीतिक विमर्श को सांस्कृतिक आयाम प्रदान करता है।

- **निष्कर्ष**

रामवृक्ष बेनीपुरी भारतीय भाषाओं के राजनीतिक चिंतन में एक विशिष्ट और स्थायी स्थान रखते हैं। उन्होंने साहित्य, पत्रकारिता और राजनीति के बीच की दूरी को समाप्त किया। उनका लेखन यह सिद्ध करता है कि राजनीति तभी सार्थक हो सकती है, जब वह जनसरोकारों, सामाजिक न्याय और मानवीय मूल्यों से जुड़ी हो। इस दृष्टि से बेनीपुरी का योगदान भारतीय राजनीतिक चेतना के विकास में अत्यंत महत्वपूर्ण है।

संदर्भग्रंथसूची

1. रामवृक्ष बेनीपुरी, मशाल (पटना: बेनीपुरी प्रकाशन, 1989), 12.
2. रामवृक्ष बेनीपुरी, बेनीपुरी ग्रंथावली, संपा. सुरेश शर्मा, खंड 1 (पटना: बिहार हिंदी साहित्य सम्मेलन, 2005), 21.
3. रामवृक्ष बेनीपुरी, मशाल, 35-36.
4. रामवृक्ष बेनीपुरी, माटी की मूरतें (पटना: बेनीपुरी प्रकाशन, 1990), 44.
5. रामवृक्ष बेनीपुरी, गेहूँ और गुलाब (पटना: बेनीपुरी प्रकाशन, 1992), 18.
6. रामवृक्ष बेनीपुरी, लाल तारा (पटना: बेनीपुरी प्रकाशन, 1991), 57.
7. रामवृक्ष बेनीपुरी, पतितो के देश में (पटना: बेनीपुरी प्रकाशन, 1993), 63.
8. रामविलास शर्मा, साहित्य और समाज (नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 1998), 102.
9. बेनीपुरी, बेनीपुरी ग्रंथावली, खंड 3, 88.
10. रामवृक्ष बेनीपुरी, अंबपाली (पटना: बेनीपुरी प्रकाशन, 1988), 41.

વાણીભૂષણ અને દલપત પિંગળ: ચયનિત માત્રાવૃત્તનું તુલનાત્મક અધ્યયન

- ડૉ.આનંદ ગઢવી

શોધસાર

ભારતીય કાવ્યપરંપરામાં છંદશાસ્ત્રને વિશિષ્ટ સ્થાન પ્રાપ્ત થયેલું છે. ભાષા, ભાવ અને અભિવ્યક્તિને લયબદ્ધ, સંગીતમય અને કલાત્મક બનાવવા માટે છંદનો ઉપયોગ પ્રાચીનકાલથી થતો આવ્યો છે. સંસ્કૃત સાહિત્યમાં પિંગળાચાર્યથી આરંભેલી છંદવિદ્યા અનુવર્તી આચાર્યો દ્વારા સતત વિકસતી રહી છે. આ પરંપરામાં વાણીભૂષણ જેવા ગ્રંથોએ માત્રાવૃત્તોની સમૃદ્ધ પરંપરા જાળવી રાખી છે, જ્યારે ગુજરાતી સાહિત્યમાં દલપત પિંગળ એ લોકભાષામાં છંદજ્ઞાનને સરળ અને વ્યવહારુ સ્વરૂપે રજૂ કરીને અનોખું યોગદાન આપ્યું છે.

છંદશાસ્ત્રમાં વર્ણવૃત્ત અને માત્રાવૃત્ત એમ બે મુખ્ય વિભાગો માનવામાં આવે છે. તેમાં માત્રાવૃત્તોનું સ્થાન વિશેષ મહત્વનું છે, કારણ કે તેમાં અક્ષરગણના કરતાં લઘુ-ગુરુ આધારિત માત્રાગણનાને પ્રાધાન્ય આપવામાં આવે છે. પરિણામે ભાષાની સ્વાભાવિક પ્રવાહિતા, ગેયતા અને ભાવવૈવિધ્ય વધુ સ્પષ્ટ રીતે વ્યક્ત થઈ શકે છે. વાણીભૂષણ અને દલપત પિંગળ બંને ગ્રંથોમાં દોહા અને પ્રજ્ઞટિકા વગેરે માત્રાવૃત્તોની સુંદર અને વ્યવસ્થિત ચર્ચા જોવા મળે છે.

પ્રસ્તુત સંશોધનપત્રમાં વાણીભૂષણ અને દલપત પિંગળ ગ્રંથોમાં વર્ણિત ચયનિત માત્રાવૃત્તોનું તુલનાત્મક અધ્યયન કરવામાં આવ્યું છે. બંને ગ્રંથોમાં સમાન છંદોના લક્ષણો, માત્રા-યોજનાઓ, યતિસ્થાન, ગણવિન્યાસ અને ઉદાહરણોની તુલના કરીને તેમની આંતરિક સમાનતાઓ તથા વૈવિધ્યોને પ્રકાશિત કરવાનો પ્રયાસ કરવામાં આવ્યો છે. સંસ્કૃત પરંપરાના શાસ્ત્રીય ગાંભીર્ય અને ગુજરાતી પરંપરાના લોકવ્યવહારુ સ્વરૂપ વચ્ચેનો સેતુરૂપ અભ્યાસ આ સંશોધનનું મુખ્ય કેન્દ્ર છે.

આ અભ્યાસથી સ્પષ્ટ થાય છે કે છંદ માત્ર ભાષાની ટેકનિકલ રચના નથી, પરંતુ તે સાહિત્યિક સંસ્કૃતિ, કાવ્યરસ અને પરંપરાગત જ્ઞાનનો જીવંત વારસો છે. સંસ્કૃતથી ગુજરાતી સુધીની છંદપરંપરાની સતત કડીને સમજવા માટે આ પ્રકારનું તુલનાત્મક અધ્યયન અત્યંત ઉપયોગી સાબિત થાય છે.

મુખ્ય શબ્દો : વાણીભૂષણ, દલપત પિંગળ, તુલનાત્મક અધ્યયન, માત્રાવૃત્ત, છંદશાસ્ત્ર, સંસ્કૃત સાહિત્ય, ગુજરાતી સાહિત્ય, દોહા, પ્રજ્ઞટિકા, પદ્ધતી છંદ, યતિ, માત્રાગણના, લઘુ-ગુરુ, પિંગળ પરંપરા, કાવ્યલય, કાવ્યરચના, ભારતીય કાવ્યપરંપરા.

સૌપ્રથમ આપણે આપણી દેવભાષા સંસ્કૃતનાં વિદ્વાન છંદશાસ્ત્રી એવાં આચાર્ય દામોદરજી મિશ્ર કૃત “વાણી ભૂષણ” ગ્રંથને આધારે “પ્રજ્ઞટિકા” નામક માત્રાવૃત્તનું લક્ષણ અને ઉદાહરણ તપાસીએ:

ચત્વારિ ચતુષ્કલકાનિ ઘેહિ,

તત્રાપિ જગણમન્તે નિઘેહિ ।

ભણિતા ફણિનાયકપિઙ્ગલેન,

પ્રજ્ઞટિકેયં ષોડશકલેન ॥ વાણીભૂષણ, ૧/૭૧

‘પ્રજ્ઞટિકા’ નામના આ માત્રાવૃત્તનું લક્ષણ ગ્રંથ મુજબ જોઈએ:

લક્ષણ મુજબ દરેક ચરણમાં ચાર ચતુષ્કલ એટલે કે ૪ x ૪ = ૧૬ માત્રાઓ હોય છે. દરેક ચરણના અંતમાં ‘જ’ ગણ એટલે કે જ ભા ન (લ ગા લ) પ્રયુક્ત થાય છે. આ રીતે ૧૬ માત્રા x ૪ ચરણ = ૬૪ માત્રાયુક્ત ચંદ્રની સોળ કળા સમાન પ્રતિ ચરણયુક્ત ‘પ્રજ્ઞટિકા’ છંદ બને છે. હવે ગ્રંથોક્ત ઉદાહરણ જોઈ લઈએ.

રમતે ન મનઃ પરિતાપધારિ,
ન મનાગપિ વિરમતિ નયનવારિ ।

યદવધિ હરિણીદૃકપથમ ગામિ,

તદવધિ બાધાશતમનુભવામિ ॥ વાળીભૂષણ, ૧/૭૨

ઉપરોક્ત દરેક ચરણમાં ૧૬ માત્રાઓ કુલ ૬૪ માત્રાયુક્ત પ્રજ્ઞટિકા છંદ નિર્મિત કરે છે.

પ્રથમ ચરણના અંતે – પ ધા રિ – જ ભા ન – જ ગણ

દ્વિતીય ચરણના અંતે – ન વા રિ – જ ભા ન – જ ગણ

તૃતીય ચરણના અંતે – મ ગા મિ – જ ભા ન – જ ગણ

તેમજ ચતુર્થ ચરણના અંતે – ભ વા મિ – જ ભા ન – જ ગણ

આમ, ગણનું નિર્માણ થાય છે. લક્ષણ અને ઉદાહરણ એકબીજા સાથે સુસંગત જણાય છે. હવે કવિશ્વર દલપતરામે “દલપત પિંગળ” ગ્રંથમાં ઉપરોક્ત સંસ્કૃત માત્રાવૃત્તને “પદ્ધરી” નામાભિધાન આપ્યું છે જે નામ “પ્રજ્ઞટિકા” છંદનું તદ્ભવ છે.

પદ્ધરી છંદ- માત્રા ૧૬, તાળ ૪.

“પ્રતિચરણ સોળ માત્રા પ્રમાણ, તે ચરણ અંત તો જગણ આણ;

ત્રણ ચક્ર રુદ્ર રત્નેજ તાળ, પદ્ધરી છંદનો એજ ઢાળ.” (દલપત પિંગળ, પદ્ય ક્રમાંક: ૮૭)

અહીં પ્રત્યેક ચરણમાં સોળ માત્રા રાખીને ચરણનાં અંતે જ ગણ (જ ભા ન લગાવ) રાખવાનું પ્રાવધાન દલપતરામે આપેલ છે. હવે આપણે લક્ષણ મુજબ ઉદાહરણ સુસંગત છે કે કેમ તે અંગે ઉદાહરણ તપાસીશું.

“ભજ ભાવ રાખિ ભગવાન નામ, સૌ યામ સઘ તો સફળ કામ;

દિલ શુદ્ધ રાખિ જો થાય દાસ, પ્રભુ દૂર છે ન, છે સર્વ પાસ.

તું જીવ સર્વને મિત્ર જાણ, પૂરણ પ્રકાશથી પ્રેમ આણ;

ભીતરથી તોડ તું વૈરભાવ, તજ દ્વેષ ક્લેશકારી બનાવ.” (દલપત પિંગળ, પદ્ય ક્રમાંક: ૮૮, ૮૯)

ઉપરોક્ત ઉદાહરણ એ લક્ષણ સાથે સુસંગત છે. માત્રિક વૃત્તમાં હવે આપણે ‘દોહા’નું લક્ષણ ‘વાણીભૂષણ’ મુજબ જોઈએ.

ષટ્કલતુરગૌ ત્રિકલમપિ વિષમપદે વિનિધેહિ ।

સમપાદાન્તે ચૈકૈકલમિતિ દોહાનામવધેહિ ॥ વાળીભૂષણ, ૧/૫૫

અર્થાત્ સૂર્યના ૭ અશ્વ (તુરંગ) અને ષટ્કલ (૬ માત્રા) ને જોડવાથી ૧૩ માત્રાઓ થાય છે. (6+7=13) પ્રથમ પદમાં આટલી માત્રા રાખીને બાકીના ત્રણ ચરણોમાં સમાન માત્રાઓ રાખવાની છે એવું દોહા નામક માત્રાવૃત્ત છે. આમાં અન્ય ત્રણ ચરણોમાં સમાન માત્રાઓનો ઉલ્લેખ છે પણ કેટલી? જો શ્લોકમાં ઊંડા ઉતરીશું તો ખબર પડે છે કે સૂર્યના તુરંગો એટલે કે ૭ અશ્વોને ત્રિકલની ૩ માત્રા સાથે મેળવીએ તો 7+3=10 માત્રા થાય છે. આ શ્લોકમાં ચતુર્થ ચરણમાં ‘ચૈકૈકલમિતિ’ શબ્દ એક માત્રા વધારવાનો નિર્દેશ કરે છે તેથી 7+3+1=11 માત્રાઓ થાય છે. વિખ્યાત છંદશાસ્ત્રી ગંગાદાસજી એ પણ દોહાનું લક્ષણ આ રીતે આપેલ છે:

માત્રા ત્રયોદશકં યદિ, પૂર્વ લઘુકવિરામિ ।

પશ્ચાદેકાદશકન્તુ, દોહડિકા દ્વિગુણેન ॥ (છન્દોમજ્જરી, ૬/૩૧)

અર્થાત્ ૧૩ માત્રાઓ પ્રયોજીને યતિ સ્થાને લઘુ માત્રા રાખવી ત્યારબાદ ૧૧ માત્રાઓ રાખીને ચાર ચરણમાં “દોહડિકા” અર્થાત્ “દોહા” છંદ પ્રયોજવો. આમ, $૧૩+૧૧+૧૩+૧૧= ૪૮$ માત્રાઓયુક્ત દોહા છંદ બને છે. કાલિકાવસર્વજ્ઞ યતિ હેમચંદ્રાચાર્યજી એ “દોહક” નામે દોહા છંદનું લક્ષણ આ રીતે આપેલ છે:

સમે દ્વાદશ ઓજ ચતુઃદશ દોહકઃ ॥ (છન્દોનુશાસન, ૬/૨૦/૪૨)

અર્થાત્ દરેક ચરણમાં ૧૨ માત્રાઓ રાખીને ચાર ચરણોયુક્ત દોહક / દોહા છંદ બને છે. તેમનાં મતાનુસાર આ લક્ષણમાં નિર્દેશ છે કે $૧૨+૧૨+૧૨+૧૨= ૪૮$ માત્રાઓયુક્ત દોહા છંદ નિર્માણ પામે છે. શું લક્ષણો ઉદાહરણ મુજબ છે? આપણે ઉદાહરણ જોઈએ છીએ.

“ચરણસરોરુહમસ્તુ હૃદિ, મે વદને તવ નામ ।

ચક્ષુષિ રૂપં યાવદસુ, રમય મનો મમ રામ ॥ (વાણીભૂષણ, ૧/૫૬)

ઉપરોક્ત ઉદાહરણમાં પ્રથમ ચરણમાં ૧૨, દ્વિતીય ચરણમાં ૧૧, તૃતીય ચરણમાં ૧૧ અને ચતુર્થ ચરણમાં ૧૧ માત્રાઓ છે. ગંગાદાસે ‘છંદોમંજરી’ ની અંદર આ મતનું સમર્થન કર્યું છે. અર્થાત્ ૧૩ માત્રા પ્રથમ ચરણ પછીના ચરણોમાં $1+10=11$ માત્રાઓ ‘દોહડિકા’ (દોહા) નામક માત્રાવૃત્ત નિર્મિત કરે છે.

તેરહ મત્તા પઢમ પઞ, પુણુ એઆરહ દેહ ।

પુણુ તેરહ એઆરહૃ, દોહા લક્ષણ એહ ॥ (પ્રાકૃતપૈગલમ્, માત્રાવૃત્તે પદ્ય, ૭૮)

‘પ્રાકૃતપૈગલમ્’ માં યતિ હેમચંદ્રાચાર્યજીના મતનું ખંડન કરીને અન્ય લક્ષણ આપવામાં આવ્યું છે:

પ્રથમ પાદ કે ચરણમાં ૧૩ માત્રા, ત્યારબાદ દ્વિતીય ચરણમાં ૧૧ માત્રાઓ અને તૃતીય-ચતુર્થ ચરણમાં ૧૩, ૧૧ નું પુનરાવર્તન એ ‘દોહા’ નું લક્ષણ છે. એટલે કે $13 + 11 + 13 + 11 = 48$ માત્રાઓ દોહા વૃત્ત નિર્મિત કરે છે.

મતના વૈવિધ્યને કારણે આપણે તમામ મતોનું સન્માન કરવું જોઈએ. વિદ્વાન લોકોની આ જ સુંદરતા છે કે તેઓ વિભિન્ન મતો દ્વારા આપણી વિવિધ વૈચારિક વિભાવનાઓ નિર્મિત કરે છે.

“પ્રાકૃતપૈગલમ્” ગ્રંથમાં ૪૮ માત્રાઓયુક્ત દોહા વૃત્તના ૨૩ ભેદ આપે છે:

ભ્રમર, ભ્રામર, શરભ, શ્યેન, મંડૂક, મર્કટ, કરભ, નર, મરાલ, મદકલ, પયોધર, બલ, વાનર, ત્રિકલ, કચ્છપ, મત્સ્ય, શાર્દૂલ, અહિવર, વ્યાઘ્ર, બિડાલ, શુનક, ઉંદુર અને સર્પ ઇત્યાદિ.

(પ્રાકૃતપૈગલમ્, માત્રાવૃત્તે પદ્ય, ૮૦)

કવિશ્વર દલપતરામજી પોતાનાં ગ્રંથમાં “દોહા” છંદનું આ મુજબ લક્ષણ આપે છે:

૩૧. દોહરા છંદ—માત્રા ૪૮, તાળ ૧૨.

“પહેલે ત્રીજે તેર કળ, અપર પડે અગિયાર;

ભૂ, ભૂતે તે ભક્તિએ, તાળ દોહરે ધાર.” (દલપત પિંગળ, પદ્ય ક્રમાંક: ૧૩૭)

અર્થાત્ પ્રથમ અને તૃતીય ચરણમાં ૧૩ માત્રાઓ અને દ્વિતીય- ચતુર્થ ચરણમાં ૧૧ માત્રાઓ સહિત ૪૮ માત્રાઓયુક્ત “દોહરા”/“દોહા” છંદ બને છે. આપણે તેમનું લક્ષણોક્ત ઉદાહરણ જોઈએ.

“ભાન ખાન ને પાનનું, ગાનતાન ગુલતાન;

જ્ઞાન વિના વિદ્વાનનું, માન ધરે નાદાન.” (દલપત પિંગળ, પદ્ય ક્રમાંક: ૧૩૮)

ઉક્ત લક્ષણ મુજબનું આપણને ઉદાહરણ પ્રાપ્ત થાય છે. “પ્રાકૃતપૈગલમ્” ગ્રંથમાં જે રીતે દોહાનાં ૨૩ પ્રભેદો પ્રાપ્ત થાય છે તે જ રીતે ચારણી સાહિત્યનાં છંદશાસ્ત્રમાં પણ એ જ મુજબનાં પ્રભેદો સાંપડે છે. આ પ્રભેદો અને તેની માત્રાઓ અંગે ગહન સંશોધન કરીને મે એક તાલિકાનું નિર્માણ કરેલ છે જે સંશોધક વર્ગને સહાયકારી નીવડશે. આ ૨૩ નામાભિધાન ચારણી સાહિત્યનાં અપ્રકાશિત ગ્રંથો “હરિપિંગળ” તેમજ “રસપિંગળ” આધારિત છે.

ક્રમ	દોહા પ્રભેદનું નામ	ગુરુ માત્રા (x૨)	લઘુ માત્રા (x ૧)	કુલ માત્રા
૧	ભ્રમર	૨૨ (૪૪)	૦૪	૪૮
૨	ભ્રામરો	૨૧ (૪૨)	૦૬	૪૮
૩	સરભ	૨૦ (૪૦)	૦૮	૪૮
૪	સેનો	૧૮ (૩૮)	૧૦	૪૮
૫	મંડૂક	૧૮ (૩૬)	૧૨	૪૮
૬	મરકટ	૧૭ (૩૪)	૧૪	૪૮
૭	કરભ	૧૬ (૩૨)	૧૬	૪૮
૮	નારૌ	૧૫ (૩૦)	૧૮	૪૮
૯	મરાલ	૧૪ (૨૮)	૨૦	૪૮
૧૦	મદકલ	૧૩ (૨૬)	૨૨	૪૮
૧૧	પયોધર	૧૨ (૨૪)	૨૪	૪૮
૧૨	ચલ	૧૧ (૨૨)	૨૬	૪૮
૧૩	વાનર	૧૦ (૨૦)	૨૮	૪૮
૧૪	ત્રિકલ	૦૯ (૧૮)	૩૦	૪૮
૧૫	કછ	૦૮ (૧૬)	૩૨	૪૮
૧૬	મછ	૦૭ (૧૪)	૩૪	૪૮
૧૭	સાદૂલ	૦૬ (૧૨)	૩૬	૪૮
૧૮	અહિવર	૦૫ (૧૦)	૩૮	૪૮
૧૯	વાઘ	૦૪ (૦૮)	૪૦	૪૮
૨૦	બિડાલ	૦૩ (૦૬)	૪૨	૪૮
૨૧	સુનુક	૦૨ (૦૪)	૪૪	૪૮
૨૨	ઊંદરો	૦૧ (૦૨)	૪૬	૪૮
૨૩	સર્પ	૦૦ (૦૦)	૪૮	૪૮

આમ, ૧ ગુરુ માત્રા ઘટાડતા અને ૨ લઘુ માત્રાઓ વધારતા દુહાનાં ૨૩ પ્રકારો પડે છે. નાના બંધારણયુક્ત આ દુહાનો જે પ્રચૂર માત્રામાં ઉપયોગ થતો નિહાળ્યો છે તેનાં પરથી એક તારણ તો અવશ્ય કાઢી શકાય કે સંસ્કૃતમાં જે રીતે અનુષ્ટુપ છંદ વિપુલ પ્રમાણમાં પ્રયોજાયો છે તે પરથી કહી શકાય કે, દુહો એ “લોકનો અનુષ્ટુપ” છે.

● ઉપસંહાર

પ્રસ્તુત સંશોધનપત્રમાં વાણીભૂષણ અને દલપત પિંગળ માં વર્ણિત ચયનિત માત્રાવૃત્તોનું તુલનાત્મક અધ્યયન કરતાં સ્પષ્ટ થાય છે કે ભારતીય છંદપરંપરાનો મૂળ આધાર એકરૂપ હોવા છતાં ભાષાનુસાર તેના સ્વરૂપોમાં રસપ્રદ પરિવર્તનો જોવા મળે છે. સંસ્કૃતના શાસ્ત્રીય ગ્રંથ વાણીભૂષણ માં માત્રાવૃત્તોના લક્ષણો સૂત્રાત્મક, ગૂઢ અને પાંડિત્યસભર રીતે રજૂ થયા છે, જ્યારે દલપત પિંગળ એ એ જ પરંપરાને ગુજરાતી ભાષામાં સરળ, સુગમ અને પ્રયોગલક્ષી સ્વરૂપે લોકસુલભ બનાવી છે.

દોહા અને પ્રજ્ઞટિકા જેવા છંદોના અભ્યાસથી જાણવા મળે છે કે બંને ગ્રંથોમાં માત્રાગણના, યતિ, ગતિ અને અંત્યવિન્યાસનો મૂળભૂત આધાર સમાન છે. છતાં ભાષાના સ્વભાવ, ઉચ્ચારણભેદ, પ્રાદેશિક અભિવ્યક્તિ અને કવિપ્રવૃત્તિ અનુસાર રચનાત્મક વૈવિધ્ય જોવા મળે છે. વાણીભૂષણ માં શાસ્ત્રીય પરંપરાનું સંરક્ષણ છે, જ્યારે દલપત પિંગળમાં તે પરંપરાનું લોકરૂપાંતરણ છે.

આ તુલનાત્મક અભ્યાસ એ પણ દર્શાવે છે કે ગુજરાતી છંદવિદ્યા સ્વતંત્ર રીતે વિકસેલી હોવા છતાં તેનો પાયો સંસ્કૃત પિંગળશાસ્ત્રમાં જિત છે. ગુજરાતી કવિઓએ સંસ્કૃત પરંપરાને અનુસરીને પોતાના ભાષાસ્વરૂપમાં નવી અભિવ્યક્તિ આપી છે. આથી દલપત પિંગળ માત્ર અનુવાદી કે અનુસારી ગ્રંથ નથી, પરંતુ સર્જનાત્મક રૂપાંતરણનો ઉત્તમ દાખલો છે.

સંદર્ભ ગ્રંથ સૂચિ

- મિશ્ર, દામોદરજી. વાણીભૂષણ, વારાણસી: ચૌખંબા સંસ્કૃત સિરીઝ ઓફિસ, પુનર્મુદ્રણ સંસ્કરણ, ૧૯૮૫.
- દલપતરામ (કવિશ્વર દલપતરામ). દલપત પિંગળ, અમદાવાદ: ગુજરાતી સાહિત્ય પરિષદ, પુનર્મુદ્રણ સંસ્કરણ, ૧૯૮૮.
- હેમચંદ્રાચાર્ય. છંદોનુશાસન, સંપા. મુનિ જિનવિજયજી. અમદાવાદ: સિંધી જૈન ગ્રંથમાળા, દ્વિતીય સંસ્કરણ, ૧૯૬૪.
- ગંગાદાસ. છંદોમંજરી, વારાણસી: ચૌખંબા વિદ્યાભવન, પુનર્મુદ્રણ સંસ્કરણ, ૨૦૦૨.
- અજ્ઞાત. પ્રાકૃતપિંગલમ્ (માત્રાવૃત્ત પ્રકરણ), પટણા: બિહાર રાષ્ટ્રભાષા પરિષદ, સંપાદિત સંસ્કરણ, ૧૯૬૮.
- પિંગળાચાર્ય. છંદ:શાસ્ત્ર (પિંગળ સૂત્ર), વારાણસી: ચૌખંબા પ્રકાશન, પુનર્મુદ્રણ સંસ્કરણ, ૧૯૭૬.
- શર્મા, કેદારનાથ. ભારતીય છંદશાસ્ત્રનો ઇતિહાસ, દિલ્હી: મોતીલાલ બનારસીદાસ, પ્રથમ સંસ્કરણ, ૧૯૭૨.
- ત્રિવેદી, રમેશચંદ્ર. ગુજરાતી છંદવિદ્યા, અમદાવાદ: યુનિવર્સિટી ગ્રંથનિર્માણ બોર્ડ, પ્રથમ સંસ્કરણ, ૧૯૮૮.
- જોશી, ઉમાશંકર. ગુજરાતી કાવ્યપરંપરા, અમદાવાદ: યુનિવર્સિટી ગ્રંથનિર્માણ બોર્ડ, પુનર્મુદ્રણ સંસ્કરણ, ૧૯૮૧.
- અપ્રકાશિત ચારણી ગ્રંથો – હરિપિંગળ તથા રસપિંગળ, (હસ્તલિખિત પાઠ, વ્યક્તિગત સંશોધન સંગ્રહ), અપ્રકાશિત.

માધ્યમિક શાળાના સામાજિક વિજ્ઞાન વિષયના એકમોના અધ્યાપન માટે કમ્પ્યુટર આધારિત સામગ્રીનું નિર્માણ અને તેની અસરકારકતા

ડૉ. રીનાબેન વી. ખાણીયા
(એમ.એ., એમ.એડ., એમ.ફિલ., પીએચ.ડી.)

સારાંશ

આ સંશોધન લેખમાં માધ્યમિક શાળાના સામાજિક વિજ્ઞાન વિષયના પસંદ કરાયેલા એકમોના અધ્યાપન માટે કમ્પ્યુટર આધારિત શૈક્ષણિક સામગ્રીનું નિર્માણ કરી તેની અસરકારકતાનો અભ્યાસ કરવામાં આવ્યો છે. ૨૧મી સદીમાં માહિતી અને સંચાર ટેકનોલોજીના ઝડપી વિકાસને કારણે શિક્ષણ ક્ષેત્રે નોંધપાત્ર પરિવર્તન આવ્યું છે. પરંપરાગત અધ્યાપન પદ્ધતિ દ્વારા સામાજિક વિજ્ઞાનના અમૂર્ત અને જટિલ ખ્યાલો સમજાવવામાં મુશ્કેલી પડતી હોવાથી વિદ્યાર્થીઓમાં રસ અને શૈક્ષણિક સિદ્ધિ પર તેની નકારાત્મક અસર જોવા મળે છે.

આ સંશોધન માટે પ્રયોગાત્મક પદ્ધતિનો ઉપયોગ કરીને નિયંત્રિત સમૂહ અને પ્રયોગાત્મક સમૂહની રચના કરવામાં આવી હતી. પ્રયોગાત્મક સમૂહને કમ્પ્યુટર આધારિત સામગ્રી દ્વારા અધ્યાપન આપવામાં આવ્યું, જ્યારે નિયંત્રિત સમૂહને પરંપરાગત પદ્ધતિથી ભણાવવામાં આવ્યો. પૂર્વ-કસોટી અને ઉત્તર-કસોટી દ્વારા માહિતી એકત્રીકરણ કરવામાં આવ્યું અને t-test દ્વારા વિશ્લેષણ કરવામાં આવ્યું.

અભ્યાસના પરિણામો દર્શાવે છે કે કમ્પ્યુટર આધારિત સામગ્રી દ્વારા ભણતા વિદ્યાર્થીઓની શૈક્ષણિક સિદ્ધિ પરંપરાગત પદ્ધતિથી ભણતા વિદ્યાર્થીઓ કરતાં નોંધપાત્ર રીતે વધુ છે. આ સંશોધન પરથી એ તારણ નીકળે છે કે સામાજિક વિજ્ઞાનના અધ્યાપનમાં કમ્પ્યુટર આધારિત સામગ્રીનો ઉપયોગ શિક્ષણને વધુ અસરકારક, રસપ્રદ અને વિદ્યાર્થી કેન્દ્રિત બનાવે છે.

કુંજ શબ્દો (Key Words): માધ્યમિક શાળા, સામાજિક વિજ્ઞાન, કમ્પ્યુટર આધારિત અધ્યાપન, શૈક્ષણિક સામગ્રી, ICT, પ્રયોગાત્મક પદ્ધતિ, શૈક્ષણિક સિદ્ધિ, પૂર્વ-કસોટી, ઉત્તર-કસોટી, સ્માર્ટ ક્લાસરૂમ

• પ્રસ્તાવના

આધુનિક યુગમાં શિક્ષણનું મુખ્ય લક્ષ્ય માત્ર માહિતી આપવાનું નથી, પરંતુ વિદ્યાર્થીઓમાં વિચારશક્તિ, વિશ્લેષણ ક્ષમતા અને જીવન ઉપયોગી કુશળતાઓ વિકસાવવાનું છે. ૨૧મી સદીમાં માહિતી અને સંચાર ટેકનોલોજી (ICT)ના ઝડપી વિકાસને કારણે શિક્ષણ ક્ષેત્રે મહત્વપૂર્ણ પરિવર્તન આવ્યું છે. માધ્યમિક શાળાનો તબક્કો વિદ્યાર્થીઓના બુદ્ધિ, ભાવનાત્મક અને સામાજિક વિકાસ માટે અત્યંત મહત્વનો છે. આ તબક્કે ‘સામાજિક વિજ્ઞાન’ વિષય વિદ્યાર્થીઓમાં ઈતિહાસ, ભૂગોળ, નાગરિક શાસ્ત્ર અને અર્થશાસ્ત્ર અંગેની મૂળભૂત સમજ વિકસાવે છે.

પરંપરાગત ચોક-એન્ડ-ટોક પદ્ધતિમાં અમૂર્ત ખ્યાલો સમજાવવામાં મુશ્કેલી પડતી હોવાથી વિદ્યાર્થીઓમાં રસ ઘટતો જોવા મળે છે. આ સંદર્ભમાં કમ્પ્યુટર આધારિત અધ્યાપન સામગ્રીનો ઉપયોગ કરીને અધ્યાપન પ્રક્રિયાને વધુ જીવંત, અસરકારક અને વિદ્યાર્થી કેન્દ્રિત બનાવી શકાય છે. આ સંશોધન લેખમાં માધ્યમિક શાળાના સામાજિક વિજ્ઞાન વિષયના એકમોના અધ્યાપન માટે કમ્પ્યુટર આધારિત સામગ્રીનું નિર્માણ કરી તેની અસરકારકતાનો અભ્યાસ કરવામાં આવ્યો છે.

- સંશોધનના ઉદ્દેશ્યો

આ સંશોધનના મુખ્ય ઉદ્દેશ્યો નીચે મુજબ છે:

1. માધ્યમિક શાળાના સામાજિક વિજ્ઞાન વિષયના અઘરા અને અમૂર્ત એકમો માટે કમ્પ્યુટર આધારિત શૈક્ષણિક સામગ્રીનું નિર્માણ કરવું.
2. પરંપરાગત અધ્યાપન પદ્ધતિ અને કમ્પ્યુટર આધારિત અધ્યાપન પદ્ધતિ દ્વારા પ્રાપ્ત શૈક્ષણિક સિદ્ધિની સરખામણી કરવી.
3. વિદ્યાર્થીઓના અભ્યાસમાં રસ, સમજશક્તિ અને સક્રિય ભાગીદારી પર કમ્પ્યુટર આધારિત સામગ્રીની અસર તપાસવી.
4. સામાજિક વિજ્ઞાનના અધ્યાપનમાં માહિતી અને સંચાર ટેકનોલોજીની શૈક્ષણિક ઉપયોગિતા નિર્ધારિત કરવી.

- સંશોધનની પરિકલ્પનાઓ

- ✓ **H0 (શૂન્ય પરિકલ્પના) :** પરંપરાગત પદ્ધતિથી ભણતા વિદ્યાર્થીઓ અને કમ્પ્યુટર આધારિત સામગ્રી દ્વારા ભણતા વિદ્યાર્થીઓની સરાસરી સિદ્ધિ વચ્ચે કોઈ અર્થસૂચક તફાવત નથી.
- ✓ **H1 (વૈકલ્પિક પરિકલ્પના) :** કમ્પ્યુટર આધારિત સામગ્રી દ્વારા ભણતા વિદ્યાર્થીઓની શૈક્ષણિક સિદ્ધિ પરંપરાગત પદ્ધતિથી ભણતા વિદ્યાર્થીઓ કરતાં વધુ જોવા મળે છે.

- સંશોધન પદ્ધતિ અને પ્રયોગાત્મક પ્રક્રિયા

આ સંશોધન માટે પ્રયોગાત્મક પદ્ધતિ (Experimental Method) નો ઉપયોગ કરવામાં આવ્યો હતો. જેમાં 'નિયંત્રિત જૂથ' (Controlled Group) અને 'પ્રાયોગિક જૂથ' (Experimental Group) ની રચના કરવામાં આવી હતી.

- ✓ **નમૂનો (Sample) :** માધ્યમિક શાળાના ધોરણ-૮ ના કુલ ૬૦ વિદ્યાર્થીઓની પસંદગી કરવામાં આવી (૩૦ નિયંત્રિત જૂથમાં અને ૩૦ પ્રાયોગિક જૂથમાં).
- ✓ **સામગ્રીનું નિર્માણ :** સામાજિક વિજ્ઞાનના અઘરા એકમો (દા.ત. ભારતનું ભૂપૃષ્ઠ, આબોહવા, અને સ્વાતંત્ર્ય આંદોલનો) માટે પાવરપોઈન્ટ પ્રેઝન્ટેશન, એનિમેશન લિંક્સ, અને ડિજિટલ ફોર્મ્સ (Google Forms) નું નિર્માણ કરવામાં આવ્યું.
- ✓ **માહિતી એકત્રીકરણના સાધનો :** સંશોધક દ્વારા તૈયાર કરાયેલી ૪૦ ગુણની સ્વનિર્મિત 'પૂર્વ-કસોટી' (Pre-test) અને 'ઉત્તર-કસોટી' (Post-test).

- માહિતીનું વિશ્લેષણ અને અર્થઘટન

બંને જૂથોના ગુણોની સરાસરી અને તફાવતની સાર્થકતા તપાસવા માટે t-test નો ઉપયોગ કરવામાં આવ્યો હતો.

જૂથ (Group)	વિદ્યાર્થીઓની સંખ્યા (N)	પૂર્વ-કસોટી સરાસરી (Pre-test Mean)	ઉત્તર-કસોટી સરાસરી (Post-test Mean)	t-મૂલ્ય (t-value)
નિયંત્રિત જૂથ (પરંપરાગત પદ્ધતિ)	૩૦	૧૮.૫	૨૨.૪	—
પ્રાયોગિક જૂથ (કમ્પ્યુટર આધારિત)	૩૦	૧૮.૨	૩૪.૮	૭.૪૫*

* 0.01 કક્ષાએ અર્થસૂચક તફાવત દર્શાવે છે.

મુખ્ય તારણો : પૂર્વ-ક્સોટીમાં બંને જૂથો સમાન સ્તર પર હતા. પરંતુ, ઉત્તર-ક્સોટીમાં પ્રાયોગિક જૂથની સરાસરી (૩૪.૮) એ નિયંત્રિત જૂથની સરાસરી (૨૨.૪) કરતાં નોંધપાત્ર રીતે વધુ જોવા મળી છે. આથી શૂન્ય પરિકલ્પના (H0) નો અસ્વીકાર થાય છે.

• શૈક્ષણિક અસરો અને ઉપયોગિતા

- ✓ અમૂર્ત ખ્યાલોનું સરળીકરણ : ભૂગોળમાં પૃથ્વીની ગતિઓ અને નકશા વાચન કમ્પ્યુટર સ્ક્રીન પર 3D-ડી મોડેલ દ્વારા સરળતાથી સમજાવી શકાય છે.
- ✓ લાંબા ગાળાની સ્મૃતિ : શ્રાવ્ય-દ્રશ્ય (Audio-Visual) માધ્યમોના ઉપયોગથી વિદ્યાર્થીઓમાં જ્ઞાનનું દૃઢીકરણ લાંબા સમય સુધી રહે છે.
- ✓ સ્વ-ગતિએ અધ્યયન : નબળા વિદ્યાર્થીઓ પોતાની ગતિએ વિડીયો રિવાઈન્ડ કરીને જોઈ શકે છે અને શીખી શકે છે.

• ઉપસંહાર

આ સંશોધન પરથી કહી શકાય કે માધ્યમિક શાળામાં સામાજિક વિજ્ઞાન જેવા વિષયોને માત્ર ગોખાણપટ્ટીથી દૂર રાખી, જો કમ્પ્યુટર આધારિત સામગ્રી (CAL) નો વિનિયોગ કરવામાં આવે, તો વર્ગખંડ જીવંત બને છે અને વિદ્યાર્થીઓની શૈક્ષણિક સિદ્ધિમાં ગુણાત્મક સુધારો થાય છે. શાળા કક્ષાએ સ્માર્ટ ક્લાસરૂમનો મહત્તમ ઉપયોગ આ દિશામાં આશીર્વાદરૂપ સાબિત થઈ શકે છે.

સંદર્ભ સૂચિ

- બુચ, એમ. બી. (1991). *શૈક્ષણિક સંશોધન અને આંકડાશાસ્ત્ર*. અમદાવાદ: ગુજરાત યુનિવર્સિટી ગ્રંથનિર્માણ બોર્ડ.
- મંગલ, એસ. કે. (2014). *Educational Technology*. નવી દિલ્હી: PHI Learning.
- ગુજર, એસ. જી. (2015). *શિક્ષણમાં માહિતી અને સંચાર ટેકનોલોજી*. અમદાવાદ: દીપ પ્રકાશન.
- ભારત સરકાર. (2020). *રાષ્ટ્રીય શિક્ષણ નીતિ 2020*. નવી દિલ્હી: શિક્ષણ મંત્રાલય.

કાલિદાસીય કાવ્યોનું અલંકારશાસ્ત્રી આચાર્ય ભાનુદત્તના વિચારોના પરિપ્રેક્ષ્યમાં અધ્યયન

ડૉ. દિલીપકુમાર એ. મકવાણા
(એમ.એ., એમ.એડ., એમ.ફિલ., પીએચ.ડી.)

સારાંશ

પ્રસ્તુત સંશોધન પત્રમાં સંસ્કૃત મહાકવિ કાલિદાસની કાવ્યસૃષ્ટિનું અધ્યયન અલંકારશાસ્ત્રી આચાર્ય ભાનુદત્તના કાવ્યશાસ્ત્રીય વિચારોના પરિપ્રેક્ષ્યમાં કરવામાં આવ્યું છે. કાલિદાસના કાવ્યોમાં રસ, ભાવ અને અલંકારનો જે સુસંગત સંયોજન જોવા મળે છે, તેનું વિવેચન ભાનુદત્તના 'રસમંજરી', 'રસતરંગિણી' અને 'અલંકારતિલક' જેવા ગ્રંથોમાં પ્રતિપાદિત સિદ્ધાંતોના આધારે કરવામાં આવ્યું છે.

આચાર્ય ભાનુદત્તે નાયક-નાયિકા ભેદ, રસના વિવિધ પ્રકારો, વિપ્રલંભ અને સંયોગ શૃંગારની દશાઓ તેમજ અલંકારોની રસપોષક ભૂમિકા વિષે જે સૂક્ષ્મ અને મૌલિક વિચાર પ્રસ્તુત કર્યા છે, તે કાલિદાસના 'રઘુવંશ', 'કુમારસંભવ' અને 'મેઘદૂત' જેવી કૃતિઓમાં જીવંત સ્વરૂપે પ્રતિબિંબિત થાય છે. વિશેષ કરીને શૃંગાર રસ, વિયોગની માનસિક સ્થિતિઓ અને પ્રકૃતિના નાયિકાકરણમાં કાલિદાસની કાવ્યપ્રતિભા ભાનુદત્તના સિદ્ધાંતોને પ્રાયોગિક સ્વરૂપે સાબિત કરે છે.

આ અભ્યાસથી સ્પષ્ટ થાય છે કે કાલિદાસનું કાવ્ય માત્ર સૌંદર્યપ્રધાન નથી, પરંતુ તે ભારતીય કાવ્યશાસ્ત્રના પરિપક્વ સિદ્ધાંતોનું સજીવ રૂપ છે. ભાનુદત્તના વિચારોથી કાલિદાસના કાવ્યોનું મૂલ્યાંકન કરવાથી તેમની આંતરિક કાવ્યસૌંદર્ય અને રસાત્મક ઊંડાણ વધુ સ્પષ્ટ રીતે ઉજાગર થાય છે.

કુંજ શબ્દો : કાલિદાસ, આચાર્ય ભાનુદત્ત, રસમંજરી, રસતરંગિણી, અલંકારતિલક, શૃંગાર રસ, વિપ્રલંભ શૃંગાર, નાયક-નાયિકા ભેદ, અલંકાર, સંસ્કૃત કાવ્યશાસ્ત્ર

• પ્રસ્તાવના

સંસ્કૃત સાહિત્યની કાવ્યપરંપરામાં મહાકવિ કાલિદાસનું સ્થાન અદ્વિતીય છે. તેમની કૃતિઓમાં રસ, અલંકાર, ભાવ અને ધ્વનિનો એવો સુમેળ જોવા મળે છે કે તેઓ ભારતીય કાવ્યસૌંદર્યના પરમ પ્રતિનિધિ બની જાય છે. કાલિદાસના કાવ્યો માત્ર કાવ્યરસની અનુભૂતિ પૂરતા મર્યાદિત નથી, પરંતુ ભારતીય કાવ્યશાસ્ત્રીય સિદ્ધાંતોનું જીવંત પ્રયોગરૂપ સ્વરૂપ પ્રસ્તુત કરે છે.

બીજી તરફ, ઉત્તરકાલીન અલંકારશાસ્ત્રી આચાર્ય ભાનુદત્તે રસશાસ્ત્ર અને નાયક-નાયિકા ભેદ અંગે જે સૂક્ષ્મ અને વૈજ્ઞાનિક અભિગમ વિકસાવ્યો, તે સંસ્કૃત કાવ્યવિચારધારામાં મહત્વપૂર્ણ વળાંકરૂપ છે. 'રસમંજરી', 'રસતરંગિણી' અને 'અલંકારતિલક' જેવા ગ્રંથોમાં તેમણે રસને કાવ્યનો આત્મા માનીને અલંકારોને રસપોષક તત્વ તરીકે સ્થાપિત કર્યા છે.

આ સંશોધન પત્રનો મુખ્ય ઉદ્દેશ કાલિદાસના કાવ્યોનું મૂલ્યાંકન આચાર્ય ભાનુદત્તના કાવ્યશાસ્ત્રીય વિચારોના પરિપ્રેક્ષ્યમાં કરીને, સિદ્ધાંત અને પ્રયોગ વચ્ચેના સુમેળને સ્પષ્ટ કરવાનો છે.

• આચાર્ય ભાનુદત્તનો કાવ્યશાસ્ત્રીય અભિગમ

આચાર્ય ભાનુદત્તે કાવ્યમાં 'રસ' ને સર્વોપરી માન્યો છે, પરંતુ રસની અભિવ્યક્તિ માટે તેમણે જે ભાવોનું વર્ગીકરણ કર્યું છે તે વિશિષ્ટ છે:

- ✓ નાયક-નાયિકા ભેદ : તેમણે નાયિકાઓના સ્વકીયા, પરકીયા અને સામાન્ય જેવા ભેદોનું અત્યંત ઝીણવટભર્યું વર્ણન કર્યું છે.
- ✓ રસ અને ભાવોનું નૂતન વિશ્લેષણ : સ્થાયી ભાવ, વિભાવ, અનુભાવ અને વ્યભિચારી ભાવોની સાથે 'સાત્ત્વિક ભાવો' ના પ્રગટીકરણ પર તેમણે ભાર મૂક્યો છે.
- ✓ અલંકાર અને રસનો સંબંધ : અલંકાર એ માત્ર બાહ્ય સજાવટ નથી, પણ રસને ઉત્કર્ષ આપનારું તત્ત્વ છે.
- **કાવિદાસના કાવ્યોમાં ભાનુદત્ત પ્રણીત 'રસ' અને 'ભાવ' નું દર્શન**

કાવિદાસને 'ઉપમા કાવિદાસસ્ય' તરીકે ઓળખવામાં આવે છે, પરંતુ તેમનો મૂળ આત્મા 'શૃંગાર રસ' છે. ભાનુદત્તના પરિપ્રેક્ષ્યમાં તેનું અધ્યયન નીચે મુજબ કરી શકાય:

 - ક) **નાયિકા ભેદ અને કાવિદાસની પાત્રો**

ભાનુદત્તે 'રસમંજરી' માં નાયિકાની મુગ્ધા, મધ્યા અને પ્રગલ્ભા જેવી અવસ્થાઓ વર્ણવી છે.

 - ✓ મુગ્ધા નાયિકા: 'કુમારસંભવ' માં પાર્વતીનું પ્રારંભિક શિવ પ્રત્યેનું આકર્ષણ અને લજ્જા એ ભાનુદત્તની 'મોગ્ધા નાયિકા' નું શ્રેષ્ઠ ઉદાહરણ છે.
 - ✓ સ્વકીયા પ્રૌઢા નાયિકા: 'રઘુવંશ' માં સીતાનું ચરિત્ર ભાનુદત્તના 'સ્વકીયા' અને 'ધીરા/અધીરા' ના લક્ષણો સાથે સુસંગત બેસે છે, જ્યાં તે ગર્ભવતી હોવા છતાં ત્યાગ સહન કરે છે.
 - ખ) **વિપ્રલંભ શૃંગાર અને ભાનુદત્તની 'દશા'**

ભાનુદત્તે વિયોગ (વિપ્રલંભ) શૃંગારની વિવિધ દશાઓ (અભિલાષા, ચિંતા, સ્મૃતિ, ગુણકથન વગેરે) આવેખી છે.

 - ✓ મેઘદૂત: 'મેઘદૂત' નો યક્ષ એ વિપ્રલંભ શૃંગારની પરાકાષ્ઠા છે. ભાનુદત્ત જે 'ઉન્માદ' કે 'વ્યાધિ' જેવી વિરલ દશાઓ વર્ણવે છે, તે મેઘદૂતના ઉત્તરમેઘમાં યક્ષિણીની સ્થિતિમાં અદ્ભુત રીતે ચરિતાર્થ થાય છે.
- **અલંકાર વિવેચન : ભાનુદત્ત વિરુદ્ધ કાવિદાસની સૃષ્ટિ**

ભાનુદત્તે તેમના ગ્રંથ 'અલંકારતિલક' માં અલંકારણની સ્વાભાવિકતા પર ભાર મૂક્યો છે. કાવિદાસના કાવ્યોમાં અલંકાર ક્યારેય બોજ બનતા નથી, તે રસના પોષક બને છે.

કાવિદાસની કૃતિ	વપરાયેલો મુખ્ય અલંકાર	ભાનુદત્તના મતે રસ-પોષકતા
રઘુવંશ (દિલીપ-ગૌસેવા)	ઉપમા, અર્થાન્તરન્યાસ	રાજાની ભક્તિ અને કર્તવ્યભાવ (શાંત/વીર રસ) ને પુષ્ટ કરે છે.
કુમારસંભવ (વસંત વર્ણન)	ઉત્પ્રેક્ષા, રૂપક	કામદેવના પ્રભાવ દ્વારા શૃંગાર રસના ઉદ્દીપન વિભાવનું કામ કરે છે.
મેઘદૂત	માનવીકરણ (સમાસોક્તિ)	અચેતન મેઘને ચેતન બનાવી વિરલની તીવ્રતા વધારે છે.
- **સંશોધનાત્મક તારણો**
 - ✓ સિદ્ધાંત અને પ્રયોગનો સમન્વય : કાવિદાસ ભાનુદત્ત કરતાં સદીઓ પહેલાં થઈ ગયા, છતાં ભાનુદત્તે આપેલા નાયિકા ભેદના સૂક્ષ્મ નિયમો કાવિદાસની કાવ્યસૃષ્ટિમાં પહેલેથી જ જીવંત સ્વરૂપે મોજૂદ હતા.
 - ✓ રસની પ્રધાનતા : ભાનુદત્તનો 'રસતરંગિણી' નો સિદ્ધાંત સાબિત કરે છે કે કાવિદાસના અલંકારો માત્ર ચમત્કૃતિ માટે નથી, પણ તે 'રસધ્વનિ' ના અંગ તરીકે પ્રગટે છે.
 - ✓ પ્રકૃતિનું નાયિકાકરણ : ભાનુદત્તના પરકીયા કે અભિસારિકાના લક્ષણો કાવિદાસે પ્રકૃતિ (જેમ કે નદીઓ, લતાઓ) પર ઘટિત કરીને કાવ્યને વધુ સભર બનાવ્યું છે.
- **ઉપસંહાર**

નિષ્કર્ષ રૂપે કહી શકાય કે આચાર્ય ભાનુદત્તના કાવ્યશાસ્ત્રીય વિચારો કાવિદાસના કાવ્યોની આંતરિક સુંદરતાને સમજવા માટેની એક અદ્ભુત ચાવી પૂરી પાડે છે. કાવિદાસના કાવ્યો વ્યવહારિક ઉદાહરણો છે, જ્યારે ભાનુદત્તના વિચારો તેનું સૈદ્ધાંતિક સમર્થન છે. આ બંનેનો પરસ્પર અભ્યાસ સંસ્કૃત સાહિત્ય અને અલંકારશાસ્ત્રની સમૃદ્ધિને છતી કરે છે.

સંદર્ભ ગ્રંથસૂચિ

- ભાનુદત્ત. રસમંજરી. ચૌખમ્બા સંસ્કૃત સીરીઝ, વારાણસી, 2012.
- ભાનુદત્ત. રસતરંગિણી. ચૌખમ્બા વિદ્યાભવન, વારાણસી, 2014.
- ભાનુદત્ત. અલંકારતિલક. ચૌખમ્બા સંસ્કૃત સીરીઝ, વારાણસી, 2010.
- કાલિદાસ. કાલિદાસ ગ્રંથાવલી. સંપા. રેવાપ્રસાદ દ્વિવેદી, મોતીલાલ બનારસીદાસ, દિલ્હી, 2008.
- કાણે, પી.વી. સંસ્કૃત કાવ્યશાસ્ત્રનો ઇતિહાસ. મોતીલાલ બનારસીદાસ, દિલ્હી, 1997.

Technology and the Transformation of Research in the Arts and Humanities

Dr. Iros Vaja

**M. A. (English), M. A. (Philosophy), LL. B., D.C.E. (IGNOU),
M.J.M.C. (Uni. First), Ph. D. (English), Ph. D. (Journalism)**

**Associate Professor,
Department of English,
MVM Arts College, Kalawad Road, Rajkot.**

Abstract

The integration of technology into research in the arts and humanities is often described in terms of accessibility, efficiency and innovation. While these descriptors highlight practical advantages, they overlook a more fundamental concern: the extent to which technology reshapes the epistemological foundations of humanistic inquiry. This paper argues that technology is not merely an external aid but an active force that reconfigures how knowledge is produced, organised and interpreted. Drawing on insights from Michel Foucault, Jacques Derrida, Edward Said and contemporary digital theorists, it examines how digital environments influence reading practices, interpretation and scholarly authority. It also situates these developments within the Indian academic context, particularly in relation to the National Education Policy 2020. While acknowledging the benefits of digital access and collaboration, the paper raises concerns about the erosion of deep reading and the privileging of speed over reflection. It ultimately contends that technology must remain an instrument guided by human judgement rather than a force that determines the direction of inquiry.

Keywords: Technology, Digital Humanities, Epistemology, Interpretation, Knowledge Systems, Humanities Research

The question of technology in the arts and humanities cannot be reduced to a simple opposition between tradition and innovation, nor can it be adequately addressed through the familiar rhetoric of progress versus resistance. Such binaries, while convenient, tend to flatten the complexity of contemporary research practices. They suggest a choice where, in reality, there is a condition-one in which scholars already find themselves working within technologically mediated environments. The humanities today do not stand outside technology, evaluating it from a distance; rather, they operate from within it. To frame the discussion in terms of acceptance or rejection is therefore to misrecognise the nature of the transformation. What requires attention is not the presence of technology as such, but the ways in which it reconfigures the intellectual terrain of research. Technology is no longer an external aid that can be adopted or set aside at will; it has become embedded in the very structure of scholarly practice. From the initial stages of locating material to the processes of reading, analysing and presenting arguments, digital systems play a constitutive role. Databases, search engines and algorithmically organised platforms do not merely facilitate access; they shape it. They influence what is encountered, what is prioritised and, just as significantly, what remains obscured.

The issue, therefore, is not whether technology should be used, but how its pervasive presence alters the conditions under which knowledge is produced and understood. This shift demands a movement away from instrumental thinking toward a more reflective, theoretically informed engagement. To treat technology as a neutral tool is to overlook its capacity to organise knowledge according to its own logics - logics that privilege speed, visibility and quantifiability. Such tendencies, if left unexamined, risk reorienting research away from interpretative depth toward procedural efficiency.

This paper proceeds from a clear and deliberate proposition: technology in the humanities is not neutral. It participates actively in shaping the processes of inquiry. It structures the ways in which questions are framed, sources are accessed and arguments are constructed. At times, it expands the scope of research; at others, it imposes subtle constraints, directing attention along certain pathways while rendering others less visible. To engage with technology responsibly, therefore, requires more than technical proficiency. It demands critical awareness - an ability to recognise the underlying assumptions embedded within technological systems and to question their influence on scholarly practice.

Such an approach does not call for the rejection of technology, but for its interrogation. It asks that scholars remain attentive to the conditions under which their work is produced and that they resist the tendency to equate technological advancement with intellectual progress. The task, ultimately, is to ensure that the humanities retain their capacity for critical reflection, even as they adapt to new modes of research. Only through such vigilance can technology be integrated in a manner that supports, rather than reshapes, the fundamental aims of humanistic inquiry.

The traditional model of humanities research has long been grounded in slow, deliberate engagement. A literary text demands close reading; a philosophical argument unfolds through careful reasoning; a historical document requires contextual interpretation. These practices are not merely techniques but modes of thinking. They assume that meaning is layered, that understanding develops over time and that interpretation is an active, reflective process. The increasing presence of digital technologies introduces a different logic - one that privileges speed, accessibility and breadth. While these qualities are undoubtedly valuable, they are not without consequences.

Michel Foucault's analysis of knowledge as a function of power provides a useful framework for understanding this shift. If knowledge is shaped by the systems through which it is organised and disseminated, then digital technologies must be seen as active participants in this process. Databases, search engines and digital platforms do not simply store information; they structure it. They determine what is visible, what is prioritised and what remains marginal. In this sense, technology participates in the production of knowledge by shaping its accessibility and hierarchy.

This insight becomes particularly relevant when one considers the everyday practices of research. A student beginning a research project today is likely to turn first to digital platforms. Online journals, searchable databases and institutional repositories offer immediate access to a vast range of material. In the Indian context, initiatives such as the National Digital Library of India have played a crucial role in expanding access to knowledge. For students in institutions with limited physical libraries, such platforms are invaluable. Yet, the ease of access also creates a certain illusion - that the availability of material is equivalent to understanding. The act of research risks becoming one of accumulation rather than interpretation.

Jacques Derrida's reflections on textuality further complicate this situation. If meaning is always deferred and mediated, then the shift from print to digital forms introduces new layers of mediation. A printed text encourages a linear mode of reading; a digital text invites movement - scrolling, linking, jumping between sources. This altered mode of engagement has implications for how meaning is constructed. The reader is no longer anchored in a single textual space but moves across multiple fragments. While this can open new interpretative possibilities, it can also fragment attention.

The transformation of attention is perhaps one of the most significant yet least discussed consequences of technological integration. N. Katherine Hayles distinguishes between "deep attention," characterised by sustained focus and "hyper attention," marked by rapid shifts in engagement. The latter aligns closely with digital environments, where information is abundant and constantly updated. However, the humanities have traditionally relied on deep attention. A poem, a philosophical text, or a historical narrative cannot be understood through fragmented reading. It demands time, patience and immersion.

In classroom settings, this tension becomes particularly visible. Students demonstrate remarkable efficiency in locating information, yet often struggle with sustained analysis. Assignments may include numerous references but lack interpretative depth. This is not a failure of ability, but a reflection of changing habits of engagement. The role of the teacher, therefore, becomes more complex. It is no longer sufficient to guide students toward sources; one must also guide them toward modes of reading.

The rise of digital humanities must be understood within this broader context. While it has opened new methodological possibilities, it has also introduced new assumptions about knowledge. The use of computational tools to analyse large corpora, for instance, allows for the identification of patterns at a scale previously unimaginable. Rob Kitchin's discussion of the "data revolution" highlights this shift toward large-scale analysis. Yet, patterns do not interpret themselves. They require contextualisation and context is precisely what the humanities provide. Without interpretation, data remains inert.

Edward Said's work on representation offers an important corrective to the apparent neutrality of digital knowledge systems. Said reminds us that knowledge is shaped by cultural and ideological forces. In digital environments, where certain sources gain prominence through algorithms and institutional visibility, there is a risk that dominant narratives become further entrenched. Marginal voices, already underrepresented, may become even less visible. This raises critical questions about the politics of knowledge in the digital age.

The increasing emphasis on interdisciplinarity, particularly in policy frameworks such as the National Education Policy 2020, further reinforces the role of technology in shaping research. While interdisciplinary approaches can enrich understanding, they also require careful integration. The methods of one discipline cannot simply be transferred to another without reflection. When computational methods are applied to humanities research, they must be adapted to the interpretative nature of the field. Otherwise, there is a risk of reducing complex cultural phenomena to simplified data points.

The visualisation of research through digital tools presents another dimension of this transformation. Graphs, maps and timelines can illuminate patterns that are not immediately visible in textual analysis. They can make research more accessible, particularly to non-specialist audiences. However, visual clarity should not be mistaken for conceptual clarity. A map may show movement, but it does not explain it. Interpretation remains essential.

Ethical considerations acquire new urgency in this context. The ease of access to digital material has made issues of plagiarism and intellectual property more complex. The boundaries between original work and borrowed material can become blurred, particularly for students. At the same time, the digitisation of cultural materials raises questions about ownership and representation. Who has the right to digitise, archive and disseminate cultural artifacts? These are not merely technical questions; they are deeply ethical ones.

The emergence of artificial intelligence introduces yet another layer of complexity. Tools capable of generating text, summarising arguments and analysing data are becoming increasingly integrated into research practices. While they offer certain advantages, they also challenge fundamental assumptions about authorship and originality. If interpretation is central to the humanities, it cannot be delegated to automated systems. The role of the researcher is not merely to produce text, but to think.

At this point, it becomes necessary to restate the central argument of this paper. Technology is not an external tool that can be added or removed without consequence. It is an environment within which research now takes place. As such, it shapes not only what we study, but how we study it. To engage with technology uncritically is to risk allowing it to determine the terms of inquiry.

This does not imply that technology should be rejected. On the contrary, its contributions are undeniable. It has expanded access, facilitated collaboration and introduced new methods of analysis. The task, however, is to use technology without being used by it. This requires a conscious effort to maintain the interpretative depth that defines the humanities.

The integration of technology into research in the arts and humanities must be understood as a complex and ongoing negotiation rather than a straightforward progression. It undoubtedly offers new tools, new methods and new forms of scholarly engagement, enabling access to materials, fostering collaboration and opening up alternative modes of analysis. Yet, these advantages cannot be considered in isolation from the transformations they bring about. Technology does not merely add to existing practices; it subtly alters the conditions under which research is imagined and conducted. It reshapes habits of reading, encouraging movement over immersion; it modifies forms of attention, privileging speed and simultaneity over depth and continuity; and it reorganises structures of knowledge, often according to visibility to what is most searchable rather than what is most significant.

The challenge, therefore, is not simply to incorporate technology into research, but to remain critically aware of its implications. The future of humanities research depends on the ability of scholars to inhabit this tension without surrendering to it. To navigate this landscape responsibly requires a reaffirmation of the interpretative ethos that has long defined the humanities. Technology, however sophisticated, cannot determine meaning; it can only assist in its exploration. If allowed to assume an autonomous role, it risks reducing inquiry to procedure and understanding to pattern recognition.

It is in this context that the distinction between instrument and authority becomes crucial. Technology must remain an instrument - powerful, flexible and capable of extending the reach of research, yet ultimately subordinate to human judgement. Its value lies not in replacing thought, but in supporting it; not in accelerating interpretation, but in enabling it under conditions that remain critically examined. The humanities, at their core, are concerned with meaning as a lived and contested experience, one that resists reduction to data or

quantification. Meaning emerges through questioning, through hesitation, through the willingness to dwell within ambiguity.

To preserve this dimension is to preserve the integrity of the humanities themselves. No algorithm, however advanced, can replicate the interpretative act that arises from historical awareness, cultural sensitivity and intellectual reflection. The task of the humanities scholar, therefore, remains fundamentally unchanged even in a technologically saturated age: to read with care, to think with rigour and to interpret with responsibility. Technology may assist in this task, but it cannot perform it. The future of research in the arts and humanities will depend not on the tools we adopt, but on the critical frameworks within which we choose to use them.

Works Cited:

- Berry, David M. *Understanding Digital Humanities*. Palgrave Macmillan, 2012.
- Burdick, Anne, et al. *Digital Humanities*. MIT Press, 2012.
- Foucault, Michel. *The Archaeology of Knowledge*. Routledge, 2002.
- Derrida, Jacques. *Of Grammatology*. Johns Hopkins University Press, 1976.
- Hayles, N. Katherine. *How We Think: Digital Media and Contemporary Technogenesis*. University of Chicago Press, 2012.
- Kitchin, Rob. *The Data Revolution: Big Data, Open Data, Data Infrastructures and Their Consequences*. Sage, 2014.
- Said, Edward. *Orientalism*. Penguin, 2003.
- Schreibman, Susan, Ray Siemens and John Unsworth, editors. *A Companion to Digital Humanities*. Blackwell Publishing, 2004.
- Terras, Melissa, Julianne Nyhan and Edward Vanhoutte, editors. *Defining Digital Humanities: A Reader*. Routledge, 2013.

=====

वाल्मीकि रामायण में पुरुषपात्र एक अध्ययन

डॉ.अशोकभाई केशवलाल श्रीमाली

शोधछात्र (पीएच.डी.),

सौराष्ट्र युनिवर्सिटी, राजकोट

shrimali.ashok23@gmail.com

सारांश

प्रस्तुत शोध-पत्र में आदिकवि महर्षि वाल्मीकि विरचित 'वाल्मीकि रामायण' के प्रमुख एवं गौण पुरुष पात्रों के चरित्र-चित्रण का आलोचनात्मक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। काव्यशास्त्र में वर्णित धीरोदत्त नायक के आदर्शों के अनुरूप श्रीराम के बहुआयामी चरित्र (सुन्दर, पराक्रमी, मातृभक्त, पितृभक्त, गुरुभक्त, आदर्श पति एवं प्रजानुरंजक रूप) के साथ-साथ भ्रातृ-प्रेम एवं भक्ति के प्रतीक लक्ष्मण, शत्रुघ्न, और भरत के चारित्रिक वैशिष्ट्य को रेखांकित किया गया है। इसके अतिरिक्त, कथावस्तु को गति प्रदान करने वाले अन्य राजस, तामस एवं ऋषि पात्रों-जैसे दशरथ, सुग्रीव, विभीषण, प्रतिनायक रावण, कुम्भकर्ण, मेघनाद, विश्वामित्र, बाली, कुलगुरु वशिष्ठ, जनक, गृधराज जटायु तथा स्वयं महर्षि वाल्मीकि के साहित्यिक एवं नीतिपरक महत्त्व का सांगोपांग विवेचन संदर्भ ग्रंथों के साक्ष्यों के साथ किया गया है। यह अध्ययन सिद्ध करता है कि वाल्मीकि रामायण के पात्र केवल पौराणिक चरित्र नहीं, अपितु शाश्वत मानवीय मूल्यों और सामाजिक व्यवस्था के जीवंत संवाहक हैं।

कुंजी शब्द : वाल्मीकि रामायण, पुरुष पात्र, चरित्र-चित्रण, धीरोदत्त नायक, श्रीराम, भ्रातृ-भक्ति, प्रतिनायक, नीतिशास्त्र, मानवीय मूल्य, संदर्भ ग्रंथ सूची।

• प्रस्तावना

आचार्य आनंदवर्धन के मतानुसार अपार काव्य-संसार में कवि ही प्रजापति है। कवि की जैसी रुचि होती है, वैसे ही वह काव्य-संसार में परिवर्तन करता है।¹ आचार्य मम्मट कवि-भारती को प्रजापति की सृष्टि से उत्कृष्ट बताते हैं। उनके मतानुसार कवि-वाणी नियतिकृत, नियमरहित, केवल आनंददायिनी, अनन्यपरतन्त्र तथा नवरसों से युक्त होकर रुचिर होती है।²

इस प्रकार कवि काव्य-रचना में पूर्णतया स्वतंत्र होता है। प्रत्येक महाकाव्य में घटनाक्रम को संचालित करने के लिए महाकवि कतिपय पात्रों की सृष्टि करता है। ये पात्र ही चरित्र के तत्त्व कहे जाते हैं। बाह्य उपादानों की अपेक्षा ये पात्र महाकाव्य की प्राणशक्ति के अधिक घनिष्ठ होते हैं। महाकवि अपना व्यापक उद्देश्य इन्हीं पात्रों के माध्यम से व्यक्त करता है। नाटक या महाकाव्य के पात्र कवि और काव्य के उद्देश्यों के संवाहक कहे जा सकते हैं। पात्रों के माध्यम से ही कवि मानवीय चेतनाओं का सूक्ष्मतम विश्लेषण कर पाता है। महर्षि वाल्मीकि ने अपने काव्य में जिन-जिन पुरुष पात्रों का चरित्र-चित्रण किया है, वह निम्नानुसार प्रस्तुत है।

(1) राम

वाल्मीकि रामायण के राम धीरोदत्त नायक हैं। राम-चरित्र का ही यहाँ प्रधान रूप से वर्णन किया गया है। यहाँ राम का पात्र आदर्श है, जो नैतिकता और धार्मिकता की कसौटी पर पूर्णतः खरा उतरता है।

अतः इनके गुणों का आश्रय लेकर ही काव्याचार्यों ने नायक के गुणों का विभाजन किया है। प्रस्तुत महाकाव्य के राम से लोक को 'रामादित्वत् प्रवर्तितव्यं न रावणादित्वत्'।³ इस उपदेशमय आदर्श की शिक्षा मिलती है।

सुन्दर राम : बालकाण्ड में नारद जी वाल्मीकि जी को राम के विषय में बताते हुए उनके शारीरिक सौन्दर्य का विशद वर्णन करते हैं।⁴ सुन्दरकाण्ड में सीता को विश्वास दिलाने के लिए हनुमान राम के अंग-प्रत्यंग का सविस्तार वर्णन करते हैं। यथा-

तां तु रामकथां श्रुत्वा वैदेहि वानरर्षभात् ।

उवाच वचनं सान्त्वमिदं मधुरया गिरा ॥⁵

अन्य स्थलों पर राम के मुख की उपमा चन्द्रमा से दी गई है।⁶ इसके अतिरिक्त उनकी शारीरिक कोमलता के लिए बार-बार कमल की उपमा दी गई है।⁷ राम के शरीर से लावण्य, तेज एवं कान्ति प्रस्फुटित होती है, जिसके कारण वे अश्विनीकुमार, गान्धर्वराज तथा विष्णु के सदृश प्रतीत होते हैं।⁸

पराक्रमी राम : विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा करते समय राम ने सुबाहु और ताड़का का वध कर मारीच को मानवास्त्र द्वारा सौ योजन दूर समुद्र में फेंक दिया। राम के पराक्रम की तुलना यमराज, इन्द्र और भगवान विष्णु से की गई है। राम की अतुलनीय शक्ति का सामना करने का साहस किसी में भी नहीं है। राम अपने शौर्य, वीर्य और पराक्रम के कारण प्रजा के प्रिय हैं।⁹

मातृभक्त राम : वाल्मीकि रामायण में राम की मातृभक्ति का विशद चित्रण किया गया है। वाल्मीकि ने राम का अपनी माता कौशल्या के प्रति विशिष्ट भक्तिभाव प्रदर्शित किया है। वे अपने राज्याभिषेक की सूचना सर्वप्रथम माता कौशल्या को देते हैं।¹⁰ वनगमन के समय भी वे अपनी माता के लिए अत्यन्त दुःखी दिखाई देते हैं तथा सीता को उनकी सेवा करने के लिए कहते हैं।¹¹

राम की मातृभक्ति केवल कौशल्या के प्रति ही नहीं, अपितु अपनी विमाताओं के प्रति भी है। अन्तःपुर की स्त्रियाँ कहती हैं-

कौशल्यां यथा युक्तो जनन्यां वर्तते सदा ।

तथैव वर्ततेऽस्मासु जन्मप्रभृति राघवः ॥¹²

पितृभक्त राम : महर्षि वाल्मीकि ने राम को पिता की सेवा में तत्पर तथा उनकी प्रसन्नता को बढ़ाने वाला कहा है।¹³ उन्होंने राम को नम्र एवं श्रद्धावान पुत्र के रूप में चित्रित किया है। वनवास का आदेश प्राप्त होने पर भी वे कर्तव्य से विमुख नहीं होते, बल्कि पिता की आज्ञा-पालन को अपना परम धर्म मानते हैं।¹⁴

गुरुभक्त राम : वाल्मीकि रामायण में राम की श्रद्धा एवं भक्ति सभी गुरुजनों के प्रति दृष्टिगोचर होती है। रामायण में विश्वामित्र तथा महर्षि वशिष्ठ को विशेष रूप से 'गुरु' कहा गया है। वशिष्ठ राजगुरु के रूप में वर्णित हैं। उन्होंने ही राम का नामकरण संस्कार सम्पन्न कराया।¹⁵

आदर्श पति राम : महर्षि वाल्मीकि ने राम को एक आदर्श पति के रूप में चित्रित किया है। वे अपने जीवन में पत्नी के प्रति कर्तव्य एवं प्रेम का पूर्ण निर्वाह करते हैं। सीता को सुख-दुःख में सहचारिणी बनाते हैं। राम ने एकपत्नी-व्रत का पालन किया, जो उनके पत्नी-प्रेम का उत्कृष्ट उदाहरण है। अश्वमेध यज्ञ में सीता की स्वर्ण-प्रतिमा को पत्नी-रूप में स्थापित करना उनके आदर्श दाम्पत्य का प्रतीक है।¹⁶

प्रजानुरंजक राम : राम अपनी प्रजा का पालन पुत्र से भी बढ़कर वात्सल्य-भाव से करते हैं। वे सदा प्रजा के हित में संलग्न रहते हैं। यही कारण है कि अयोध्यावासियों का उन पर अद्भुत प्रेम है। जब राम वन जाने लगे, तब अधिकांश प्रजाजन उनके साथ चल पड़े। राम के समझाने पर भी वे लौटने को तैयार नहीं हुए।

अन्ततः राम उन्हें सोते हुए छोड़कर वन को चले गये। उस समय पशु-पक्षी भी राम-वियोग से व्याकुल दिखाई देते हैं।¹⁷

(2) लक्ष्मण

वाल्मीकि रामायण में आदिकवि ने चारों भाइयों में लक्ष्मण को राम के प्रति सहज अनुराग और भक्ति से युक्त बताया है।¹⁸ वनगमन का समाचार सुनते ही लक्ष्मण अत्यन्त क्रुद्ध हो उठते हैं तथा अवसरानुकूल अपना क्षोभ व्यक्त करते हुए पिता के चरित्र की भी कटु आलोचना करते हैं।¹⁹ इतना ही नहीं, वे क्रोध की पराकाष्ठा में अनेक गर्वोक्तियों एवं कटोक्तियों का प्रयोग भी करते हैं।²⁰

यदि राम को अग्नि या वन में प्रवेश करना पड़े, तो लक्ष्मण पहले जाने के लिए तैयार रहते हैं। राम के बिना उन्हें स्वर्ग अथवा प्रभुत्व कुछ भी प्रिय नहीं है। यद्यपि वे राम के अनुज हैं, तथापि राम के गुणों के कारण स्वयं को उनका क्रीतदास कहते हैं। राम के प्रति लक्ष्मण का यह दास्य-भाव भक्ति का श्रेष्ठतम भाव माना गया है।²¹

(3) शत्रुघ्न

वाल्मीकि रामायण में शत्रुघ्न को एक प्रमुख पात्र के रूप में अंकित किया गया है। शत्रुघ्न मौनकर्मी, प्रेमी, सदाचारी, मितभाषी, सत्यवादी, विषय-विरागी, सरल, तेजस्वी, गुरुजनों के अनुगामी तथा वीर थे। शत्रुघ्न सुमित्रा के गर्भ से उत्पन्न हुए और भरत को प्राणों से भी अधिक प्रिय थे।²²

(4) भरत

भरत का चरित्र अत्यन्त उज्ज्वल एवं आदर्श है। उनमें कहीं भी दोष दृष्टिगोचर नहीं होता। उनकी महिमा अपार है। उनका चरित्र उन्हें साधु-शिरोमणि, आदर्श स्वामीभक्त, महात्मा तथा भक्ति-प्रधान कर्मयोगी सिद्ध करता है। भरत धर्म और नीति के ज्ञाता, सद्गुण-संपन्न, त्यागी, संयमी, सदाचारी, प्रेम और विनय की मूर्ति, श्रद्धालु तथा अत्यन्त बुद्धिमान हैं। वैराग्य, दया, वात्सल्य, सौम्यता, सरलता, मधुरता, गम्भीरता एवं सहृदयता आदि गुण उनमें विकसित थे। भ्रातृ-प्रेम की तो वे मानो सजीव प्रतिमा ही थे।

(5) लव-कुश

वाल्मीकि रामायण में सीता-परित्याग के पश्चात् राजा राम के पुत्रों का जन्म महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में हुआ। महर्षि ने इन जुड़वाँ बालकों का नाम लव और कुश रखा। वाल्मीकि आश्रम में कठोर अनुशासन एवं महर्षि की देखरेख में उनकी बहुमुखी शिक्षा-दीक्षा सम्पन्न हुई। शस्त्र एवं युद्ध-कला में पारंगत होने के कारण उन्हें वीर योद्धा के रूप में वर्णित किया गया है।²³

(6) हनुमान

वाल्मीकि रामायण में हनुमान राम के सर्वोत्तम दास-भक्त हैं। उनका जन्म वायुदेव के अंश से तथा माता अंजनी के गर्भ से हुआ। हनुमान बालब्रह्मचारी, महावीर, बुद्धिमान, चतुरशिरोमणि, विद्वान, सेवाधर्म के आचार्य, निर्भय, सत्यवादी, स्वामीभक्त तथा सदाचारी महात्मा हैं। वे युद्धविद्या में अत्यन्त निपुण, इच्छानुसार रूप धारण करने में समर्थ तथा नाम, गुण, स्वरूप एवं लीला के महान रसिक हैं।

जब सीता की खोज के लिए वानरों को विभिन्न दिशाओं में भेजने की योजना बन रही थी, उस समय सुग्रीव का हनुमान पर कितना गहरा विश्वास था तथा राम को भी उनकी कार्यकुशलता पर पूर्ण भरोसा था, इसका वर्णन रामायण में प्राप्त होता है। हनुमान नीतिशास्त्र, बुद्धिमत्ता, पराक्रम एवं देशकाल की समझ जैसे गुणों से सम्पन्न हैं।²⁴

(7) दशरथ

वाल्मीकि रामायण में दशरथ का चित्रण एक राजसी पात्र के रूप में हुआ है। मानवीय स्तर पर उनका चित्रण अयोध्या के राजा के रूप में किया गया है।²⁵ दशरथ स्वयं अपने कुल के आदर्शों की चर्चा लक्ष्मण से करते हैं²⁶ तथा उन्हीं आदर्शों का पालन भी करते हैं। रामायण में उनके राजनीतिज्ञ रूप की विशेष प्रधानता है। वे स्वयं तेजस्वी राजाधिराज हैं तथा समय-समय पर मन्त्रियों की सम्मति लेते हैं।²⁷

दशरथ का राज्य विस्तृत एवं समृद्ध था।²⁸ वे राम को भी राजोचित कर्तव्यों के पालन का उपदेश देते हैं।²⁹ उनके चार पुत्र थे, जिनसे वे अत्यन्त स्नेह करते थे, किन्तु राम के प्रति उनका विशेष भावुक स्नेह था।³⁰

(8) सुग्रीव

सुग्रीव वाल्मीकि रामायण के एक राजस पात्र हैं। राजनीतिक दृष्टि से सुग्रीव और राम की सन्धि द्वारा अनेक आवश्यक कार्य सम्पन्न हुए। सुग्रीव की राम के प्रति सख्य-भावना के माध्यम से राजनीतिक कार्यों को विशेष महत्त्व प्राप्त हुआ। उनकी सख्य-भक्ति अर्जुन के समान मानी गई है।³¹

सुग्रीव राम की मैत्री के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हैं तथा स्वयं राम भी सुग्रीव के मित्र-रूप की प्रशंसा करते हैं।³²

(9) विभीषण

विभीषण राक्षस पात्रों में राजसी वृत्ति वाले पात्र हैं। उनका स्वरूप एक राजनीतिज्ञ तथा भक्त-दोनों रूपों में दिखाई देता है। रामायण में विभीषण के भक्त-रूप को अधिक महत्त्व दिया गया है। विभीषण के पिता को अनुमान था कि वह धर्मात्मा होगा।³³

अपनी तपस्या के अंत में भी उसने ब्रह्मा से यही वरदान माँगा कि परम संकट की स्थिति में भी उसकी धार्मिक बुद्धि बनी रहे।³⁴

(10) रावण

महाकाव्य में संघर्षमूलक किसी महान घटना के प्रदर्शन के लिए प्रतिनायक की स्थापना आवश्यक होती है। उसके बिना संघर्ष की प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति सम्भव नहीं हो सकती। रामायण की मूल कथा में नायक के जन्म से पूर्व ही प्रतिनायक की स्थापना हो जाती है। उसके विनाश के लिए ही राम अवतार ग्रहण करते हैं।

रावण असत् एवं तामस प्रवृत्ति का पात्र है। उसके विराट असत् तत्त्व के विनाश हेतु सत् तत्त्व का जन्म होता है। तामस पात्र होते हुए भी रामायण में रावण का चित्रण अत्यन्त ऐश्वर्ययुक्त, शोभासम्पन्न तथा शौर्य-पराक्रम से युक्त किया गया है।

(11) कुम्भकर्ण

प्रतिनायक रावण के भाई कुम्भकर्ण को रामायण में महाबली, तेजस्वी एवं युद्धकला में निष्णात बताया गया है।³⁵ वह विश्रवा और कैकेयी का द्वितीय पुत्र था।³⁶ कुम्भकर्ण और उसका ज्येष्ठ भ्राता रावण दोनों ही लोक में भय एवं उद्वेग उत्पन्न करने वाले थे।

वह भोजन से कभी तृप्त नहीं होता था और तीनों लोकों में घूम-घूमकर महर्षियों का भक्षण करता था। ब्रह्मा ने उसे शाप दिया था कि वह छह मास तक सोएगा तथा केवल एक दिन के लिए जागेगा। वह राजनीति में भी अत्यन्त विशारद था।

(12) मेघनाद

मेघनाद मन्दोदरी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। जन्म के समय वह मेघ के समान गम्भीर नाद करने लगा, जिससे सम्पूर्ण लंका स्तब्ध हो गई। इसी कारण उसके पिता रावण ने उसका नाम 'मेघनाद' रखा।³⁷

उसने माहेश्वर यज्ञ का अनुष्ठान कर इन्द्र को पराजित कर बंदी बना लिया था। वह अतुलनीय शौर्य एवं पराक्रम से सम्पन्न, याज्ञिक तथा मायावी योद्धा था। यज्ञबल के कारण उसमें अन्तर्धान होने की शक्ति भी थी।

(13) विश्वामित्र

विश्वामित्र राम के आचार्य, अनेक कथाओं के उपदेशक तथा विवाहादि कार्यों के प्रधान संचालक हैं। भूख-प्यास के कष्ट से मुक्ति दिलाने वाली 'बला' और 'अतिबला' नामक विद्याएँ उन्होंने ही राम को प्रदान की थीं।³⁸

वशिष्ठ के साथ उनका कामधेनु के लिए भयंकर युद्ध हुआ, किन्तु वे पराजित हो गये। अंततः घोर तपस्या कर उन्होंने ब्रह्मत्व की प्राप्ति की।

(14) बाली

बाली सुग्रीव के ज्येष्ठ भ्राता थे तथा उनसे शत्रुता रखते थे। बाली ने सुग्रीव को राज्य से निकाल दिया था। भयभीत एवं व्याकुल होकर सुग्रीव ने राम से बाली से रक्षा करने की प्रार्थना की। यह सुनकर राम ने बाली-वध की प्रतिज्ञा की।³⁹

बाली अत्यन्त वीर एवं पराक्रमी था। राम ने छिपकर उस पर बाण चलाया, जिससे उसकी मृत्यु हो गई। मरते समय बाली ने राम के इस कार्य की निन्दा भी की।⁴⁰

(15) वशिष्ठ

महर्षि वशिष्ठ इक्ष्वाकुवंश के कुलगुरु, धर्मज्ञ तथा वेद-वेदांगों के महान ज्ञाता थे।⁴¹ रामायण में उनका चरित्र अत्यन्त गौरवपूर्ण एवं प्रभावशाली रूप में चित्रित हुआ है। वे राजा दशरथ के राजपुरोहित एवं मार्गदर्शक थे। राज्य के सभी धार्मिक एवं राजकीय कार्य उनकी देखरेख में सम्पन्न होते थे।

वशिष्ठ अत्यन्त धैर्यवान्, उदार तथा तपोनिष्ठ ऋषि थे। वे राम सहित समस्त राजकुमारों को धर्म, नीति एवं सदाचार का उपदेश देते थे। राम के वनगमन के समय उन्होंने दशरथ को धैर्य धारण करने की प्रेरणा दी तथा राजपरिवार को धर्मानुसार आचरण करने का उपदेश दिया।⁴²

(16) जनक

मिथिला नरेश जनक वाल्मीकि रामायण के एक आदर्श राजर्षि पात्र हैं।⁴³ वे विदेह कहलाते थे, क्योंकि वे सांसारिक मोह-माया से रहित थे। जनक धर्म, ज्ञान, तप, त्याग तथा न्यायप्रियता के लिए प्रसिद्ध थे। सीता के स्वयंवर में उन्होंने भगवान् शिव के धनुष को प्रत्यंचा चढ़ाने की शर्त रखी थी। श्रीराम द्वारा धनुष भंग किए जाने पर उन्होंने अत्यन्त प्रसन्न होकर सीता का विवाह राम के साथ सम्पन्न किया। जनक एक आदर्श पिता एवं आदर्श शासक के रूप में चित्रित हुए हैं।⁴⁴

(17) जटायु

जटायु वाल्मीकि रामायण का अत्यन्त मार्मिक एवं आदर्श पात्र है। वह गृध्रराज तथा राजा दशरथ का परम मित्र था।⁴⁵ जब रावण सीता का हरण कर लंका की ओर जा रहा था, तब जटायु ने सीता की रक्षा के लिए रावण से युद्ध किया।

यद्यपि वह वृद्ध था, तथापि उसने अद्भुत साहस एवं पराक्रम का परिचय दिया। रावण ने उसके पंख काट दिए, जिससे वह भूमि पर गिर पड़ा। बाद में राम एवं लक्ष्मण ने जटायु को अंतिम समय में देखा। जटायु ने सीता-हरण का वृत्तांत सुनाया और राम के समक्ष प्राण त्याग दिए।⁴⁶

जटायु का चरित्र मित्रता, निष्ठा, त्याग एवं कर्तव्यपरायणता का सर्वोत्तम उदाहरण प्रस्तुत करता है।

(18) वाल्मीकि

महर्षि वाल्मीकि संस्कृत साहित्य के आदिकवि माने जाते हैं।⁴⁷ उन्होंने 'रामायण' जैसे महान महाकाव्य की रचना कर भारतीय साहित्य को अमूल्य धरोहर प्रदान की। वाल्मीकि का जीवन तप, साधना, ज्ञान एवं काव्यप्रतिभा से ओत-प्रोत था।

कहा जाता है कि पूर्वकाल में वे रत्नाकर नामक व्याध थे, किन्तु नारद जी के उपदेश से उन्होंने तपस्या आरम्भ की और महान ऋषि बने। वाल्मीकि ने ही रामकथा को श्लोकबद्ध रूप प्रदान किया। उनके आश्रम में ही लव-कुश का पालन-पोषण एवं शिक्षण हुआ।⁴⁸

वाल्मीकि का चरित्र भारतीय साहित्य में गुरु, कवि एवं महर्षि-तीनों आदर्शों का समन्वय प्रस्तुत करता है।

• निष्कर्ष

वाल्मीकि रामायण के पुरुष पात्र भारतीय संस्कृति एवं आदर्श जीवन मूल्यों के प्रतिनिधि हैं। राम, लक्ष्मण, भरत, हनुमान आदि पात्र धर्म, त्याग, सेवा, कर्तव्यपरायणता तथा आदर्श जीवन का संदेश देते हैं। वहीं रावण, कुम्भकर्ण एवं मेघनाद जैसे पात्र अहंकार, अधर्म एवं तामस प्रवृत्तियों के दुष्परिणामों को स्पष्ट करते हैं।

महर्षि वाल्मीकि ने प्रत्येक पात्र के माध्यम से मानवीय चेतना, नैतिकता एवं सामाजिक मूल्यों का अत्यन्त सूक्ष्म एवं प्रभावशाली चित्रण किया है। यही कारण है कि वाल्मीकि रामायण केवल धार्मिक ग्रंथ न होकर भारतीय जीवन-दर्शन का महान स्रोत मानी जाती है।

पादनों

1. ध्वन्यालोक, पृ. 312
2. काव्यप्रकाश, 1/1
3. साहित्यदर्पण, प्रथम परिच्छेद, पृ. 9
4. वाल्मीकि रामायण, 1/1/9-11
5. वाल्मीकि रामायण, 5/35/1
6. वाल्मीकि रामायण, 1/1/18
7. वाल्मीकि रामायण, 2/61/8
8. वाल्मीकि रामायण, 1/48/3, 2/2/43, 2/37/11
9. वाल्मीकि रामायण, 2/2/44
10. वाल्मीकि रामायण, 2/4/35-36
11. वाल्मीकि रामायण, 2/26/44
12. वाल्मीकि रामायण, 2/20/3
13. वाल्मीकि रामायण, 1/18/24
14. वाल्मीकि रामायण, 2/23/41
15. वाल्मीकि रामायण, 1/18/21-22
16. वाल्मीकि रामायण, 7/91/25
17. वाल्मीकि रामायण, 7/47/13-14

18. वाल्मीकि रामायण, 1/18/28-29
19. वाल्मीकि रामायण, 2/21/1-7
20. वाल्मीकि रामायण, 2/21/10
21. वाल्मीकि रामायण, 4/4/12, 2/31/10
22. वाल्मीकि रामायण, 1/18/32-33
23. वाल्मीकि रामायण, 7/94/16
24. वाल्मीकि रामायण, 4/44/4
25. वाल्मीकि रामायण, 1/7/1-10
26. वाल्मीकि रामायण, 2/1/5
27. वाल्मीकि रामायण, 2/2/1-8
28. वाल्मीकि रामायण, 1/5/5-10
29. वाल्मीकि रामायण, 2/3/11
30. वाल्मीकि रामायण, 2/4/12
31. वाल्मीकि रामायण, 4/5/18
32. वाल्मीकि रामायण, 4/8/15
33. वाल्मीकि रामायण, 7/10/14
34. वाल्मीकि रामायण, 7/10/30-31
35. वाल्मीकि रामायण, 6/61/1
36. वाल्मीकि रामायण, 7/1/45
37. वाल्मीकि रामायण, 7/26/18
38. वाल्मीकि रामायण, 1/22/9
39. वाल्मीकि रामायण, 4/11/12
40. वाल्मीकि रामायण, 4/18/1-20
41. वाल्मीकि रामायण, 1/7/5
42. वाल्मीकि रामायण, 2/58/24
43. वाल्मीकि रामायण, 1/66/13
44. वाल्मीकि रामायण, 1/73/26
45. वाल्मीकि रामायण, 3/14/5
46. वाल्मीकि रामायण, 3/68/25
47. वाल्मीकि रामायण, 1/2/7
48. वाल्मीकि रामायण, 7/96/18

संदर्भ ग्रंथ सूची

- (१) काव्यप्रकाश - आचार्य मम्मट प्रणीत, व्याख्याकार आचार्य विश्वेश्वर, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी - षष्ठ संस्करण, पुनर्मुद्रण, २००५
- (२) ध्वन्यालोक - आचार्य आनन्दवर्धन प्रणीत, व्याख्याकार आचार्य विश्वेश्वर, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, तृतीय संस्करण-२००९, पुनर्मुद्रण
- (३) साहित्यदर्पण - विश्वनाथ, साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ, तृतीय संस्करण- २०११
- (४) वाल्मीकि रामायण - आदिकवि वाल्मीकि विरचित, गीताप्रेस गोरखपुर, वि.सं. २०६८
- (५) संस्कृत बृहत् कोशः, शिवराम आप्टे, प्रा. रतिलाल सं. नायक, अक्षरा प्रकाशन, अहमदाबाद, बी. आर. २००५
- (६) संस्कृत हिन्दी कोश, वामन शिवराम आप्टे, ओरियण्टल बुक सेन्टर, दिल्ली, १९७७

संस्कृत साहित्य के माध्यम से भारतीय संस्कृति संरक्षण : एक समीक्षात्मक अध्ययन

डॉ. जिज्ञासा वी. सोलंकी

व्याख्याता सहायक,

आर्ट्स एण्ड कॉमर्स कॉलेज, खेडा (गुजरात)

सारांश

भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम एवं महान संस्कृतियों में से एक है। इसकी मूल भावना मानव कल्याण, आध्यात्मिकता, नैतिकता, समन्वय तथा विश्वबंधुत्व पर आधारित है। संस्कृत साहित्य भारतीय संस्कृति का प्रमुख संवाहक एवं संरक्षक रहा है। वेद, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, पुराण, स्मृतियाँ तथा संस्कृत काव्य-साहित्य भारतीय जीवन-मूल्यों, संस्कारों एवं आदर्शों का सशक्त प्रस्तुतीकरण करते हैं। संस्कृत साहित्य केवल धार्मिक या दार्शनिक ज्ञान का भंडार ही नहीं, अपितु सामाजिक, सांस्कृतिक एवं नैतिक चेतना का भी आधार है।

प्रस्तुत शोध-पत्र में भारतीय संस्कृति की अवधारणा, उसके मूल तत्त्व तथा संस्कृति संरक्षण में संस्कृत साहित्य की भूमिका का समीक्षात्मक अध्ययन किया गया है। संस्कृत साहित्य में निहित सत्य, अहिंसा, दया, परोपकार, वसुधैव कुटुम्बकम्, मातृ-पितृ भक्ति एवं विश्वकल्याण की भावना आज भी मानव समाज के लिए प्रेरणास्रोत है। आधुनिक युग में सांस्कृतिक मूल्यों के क्षरण को देखते हुए संस्कृत साहित्य का पुनः अध्ययन एवं प्रचार अत्यंत आवश्यक है।

मुख्य शब्द : भारतीय संस्कृति, संस्कृत साहित्य, संस्कृति संरक्षण, जीवन-मूल्य, आध्यात्मिकता, संस्कार, वसुधैव कुटुम्बकम्

• प्रस्तावना

संस्कृति किसी भी समाज की आत्मा होती है। यह मनुष्य के सामाजिक जीवन का प्राण है। संस्कृति मनुष्य को संस्कार प्रदान करती है तथा उसकी चेतना का परिष्कार कर उसे सामान्य प्राणी से विशिष्ट बनाती है। मनुष्य एवं समाज का सर्वांगीण विकास उसकी संस्कृति में निहित होता है। अतः संस्कृति किसी राष्ट्र की पहचान भी होती है। संस्कृति और संस्कार दोनों शब्द परस्पर निकटवर्ती हैं। संस्कार संस्कृति के साधन हैं तथा संस्कृति जीवन की पूर्णता का बोध कराती है।

‘संस्कृति’ शब्द संस्कृत भाषा के ‘सम्’ उपसर्ग, ‘कृ’ धातु तथा ‘क्तिन्’ प्रत्यय से निर्मित हुआ है। इसका अर्थ है- परिष्कार करना, सजाना, शुद्ध करना एवं उन्नत बनाना। संस्कृति का उद्देश्य मानव जीवन को श्रेष्ठ एवं कल्याणकारी बनाना है।

के. एम. मुन्शी के अनुसार- “हमारे रहन-सहन के पीछे जो मानसिक अवस्था है, जिसका उद्देश्य जीवन को परिष्कृत, शुद्ध एवं पवित्र बनाना है, वही संस्कृति है।”²

मैथ्यू आर्नोल्ड के अनुसार- “किसी समाज एवं राष्ट्र की श्रेष्ठतम उपलब्धियाँ ही संस्कृति कहलाती हैं।”

इतिहासकार वाचस्पति गैरोला ने भारतीय संस्कृति को मानव-मंगल की भावना से ओत-प्रोत बताया है। भारतीय संस्कृति सत्य, शिव एवं सुंदर के शाश्वत तत्त्वों पर आधारित है।

• भारतीय संस्कृति का स्वरूप

भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृति मानी जाती है। इसकी विशेषता यह है कि इसमें केवल व्यक्तिगत विकास को ही महत्त्व नहीं दिया गया, अपितु सामूहिक एवं सामाजिक कल्याण पर भी विशेष बल दिया गया है। वेदों में समष्टि-भावना एवं सामाजिक सद्भाव की प्रार्थनाएँ की गई हैं। सामाजिक समानता, परस्पर विश्वास एवं सद्भाव भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषताएँ रही हैं।

रवीन्द्रनाथ टैगोर के अनुसार- “भारतीय संस्कृति की आध्यात्मिकता एवं मानवता की भावना अनुकरणीय है।”

भारतीय संस्कृति में सत्य, दया, प्रेम, सहयोग, समन्वय एवं सहिष्णुता को अत्यधिक महत्त्व प्रदान किया गया है। यह संस्कृति “वसुधैव कुटुम्बकम्” की भावना पर आधारित है।

संस्कृत साहित्य और भारतीय संस्कृति

संस्कृत साहित्य भारतीय समाज के उत्कृष्ट जीवन-मूल्यों, आध्यात्मिक चेतना तथा सांस्कृतिक परम्पराओं का दर्पण है। संस्कृत साहित्य भारतीय संस्कृति का संवाहक एवं संरक्षक दोनों है। महर्षि वाल्मीकि, वेदव्यास, कालिदास, भवभूति, बाणभट्ट तथा दण्डी आदि महाकवियों ने अपने साहित्य में भारतीय संस्कृति के आदर्श स्वरूप का चित्रण किया है।

भारतीय संस्कृति का मूल स्वरूप वेदों, उपनिषदों, रामायण, महाभारत तथा स्मृतियों में प्राप्त होता है। संस्कृत साहित्य में सर्वजन-कल्याण की भावना प्रमुख रूप से विद्यमान है-

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्॥

अर्थात् सभी सुखी हों, सभी निरोग हों तथा किसी को दुःख प्राप्त न हो।

वेदों में अग्नि को कल्याणकारी शक्ति मानते हुए सम्पूर्ण मानव समाज के मंगल की कामना की गई है। “मातृदेवो भव”, “पितृदेवो भव”, “आचार्यदेवो भव” तथा “सत्यं वद” जैसे उपनिषद्-वाक्य भारतीय संस्कृति के मूल आदर्श हैं।³

• आध्यात्मिकता और संस्कृत साहित्य

भारतीय संस्कृति का आधार आध्यात्मिकता है। संस्कृत साहित्य में आत्मज्ञान, धर्म, दया, प्रेम एवं परोपकार को विशेष महत्त्व दिया गया है। भगवद्गीता में कर्मयोग का उपदेश देते हुए कहा गया है-

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥⁴

भारतीय दर्शन में आत्मा की अमरता का प्रतिपादन किया गया है-

न जायते म्रियते वा कदाचित्।

नायं भूत्वा भविता वा न भूयः॥⁵

भारतीय संस्कृति में सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह तथा ब्रह्मचर्य को पंचमहाव्रत कहा गया है।⁶

संस्कृत साहित्य मानव को दया, करुणा एवं विश्वबंधुत्व की शिक्षा प्रदान करता है-

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।

उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥⁷

इसी प्रकार परोपकार की भावना को संस्कृत साहित्य में अत्यधिक महत्त्व दिया गया है-

परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः परोपकाराय वहन्ति नद्यः।
परोपकाराय दुहन्ति गावः परोपकारार्थमिदं शरीरम्॥^८

• भारतीय संस्कृति में संस्कार एवं नैतिकता

भारतीय संस्कृति में सोलह संस्कारों की परिकल्पना मानव जीवन के शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास के लिए की गई है। गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि तक मनुष्य के जीवन को संस्कारित करने की व्यवस्था भारतीय संस्कृति की विशेषता है।

भारतीय संस्कृति में बड़ों के प्रति सम्मान की भावना पर बल दिया गया है-

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।

चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्॥^९

भारतीय संस्कृति परिवार-व्यवस्था की समर्थक रही है। इसमें केवल मानव समाज ही नहीं, अपितु पशु-पक्षियों एवं सम्पूर्ण प्रकृति के कल्याण की भावना विद्यमान है।

• संस्कृति संरक्षण में संस्कृत साहित्य की भूमिका

संस्कृत साहित्य भारतीय संस्कृति के संरक्षण का प्रमुख माध्यम रहा है। इसमें वर्णित संस्कार, आश्रम-व्यवस्था, गुरु-शिष्य परम्परा, नैतिक शिक्षाएँ तथा धार्मिक आदर्श समाज को संस्कारित करते हैं। संस्कृत साहित्य केवल अतीत का गौरव नहीं, बल्कि वर्तमान एवं भविष्य के लिए भी मार्गदर्शक है।

आज वैश्वीकरण एवं भौतिकवाद के युग में सांस्कृतिक मूल्यों का क्षरण हो रहा है। ऐसे समय में संस्कृत साहित्य मानव समाज को नैतिकता, समन्वय एवं आध्यात्मिकता की दिशा प्रदान कर सकता है। भारतीय संस्कृति की वैश्विक प्रासंगिकता संस्कृत साहित्य के माध्यम से ही विश्व में स्थापित की जा सकती है।

• उपसंहार

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि संस्कृत साहित्य भारतीय संस्कृति का प्राणतत्त्व है। इसमें निहित आदर्श, संस्कार एवं जीवन-मूल्य मानवता के कल्याण के लिए अत्यंत उपयोगी हैं। भारतीय संस्कृति के संरक्षण एवं संवर्धन में संस्कृत साहित्य की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। वर्तमान समय में आवश्यकता है कि संस्कृत साहित्य का व्यापक अध्ययन, प्रचार एवं प्रसार किया जाए, जिससे भारतीय संस्कृति की गौरवशाली परम्परा सुरक्षित रह सके तथा भावी पीढ़ी उससे प्रेरणा प्राप्त कर सके।

पाद नोंध

1. वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत-हिन्दी कोश, नवीन संशोधित संस्करण, पृ. 356
2. डॉ. बी. के. श्रीवास्तव (सम्पा.), भारतीय संस्कृति की रूपरेखा, प्रथम संस्करण, पृ. 13
3. तैत्तिरीयोपनिषद्, शिक्षावल्ली, अनुवाक-11, पुनर्मुद्रित संस्करण, पृ. 42
4. श्रीमद्भगवद्गीता 2/47, पृ. 118
5. श्रीमद्भगवद्गीता 2/20, पृ. 109
6. पतञ्जलि, योगसूत्र 2/30, द्वितीय संस्करण, पृ. 84
7. हितोपदेश, मित्रलाभ 1/14, तृतीय संस्करण, पृ. 27
8. सुभाषितरत्नभाण्डागारम्, प्रथम संस्करण, पृ. 95
9. मनुस्मृति 2/121, नवीन संस्करण, पृ. 73

संदर्भ ग्रंथ सूची

- आप्टे, वामन शिवराम। संस्कृत-हिन्दी कोश, नवीन संशोधित संस्करण। वाराणसी : चौखम्बा संस्कृत सीरीज़ ऑफिस, 2018
- श्रीवास्तव, डॉ. बी. के. (सम्पादक), भारतीय संस्कृति की रूपरेखा, प्रथम संस्करण, नई दिल्ली : साहित्य प्रकाशन, 2012
- तैत्तिरीयोपनिषद्, शिक्षावल्ली, अनुवाक-११, गोरखपुर : गीताप्रेस। पुनर्मुद्रित संस्करण, 2020
- महाभारत-अनुशासनपर्व, गोरखपुर : गीताप्रेस, संशोधित संस्करण, 2019
- कालिदास, कुमारसंभवम्, सम्पा. पं. हरगोविन्द शास्त्री। द्वितीय संस्करण, वाराणसी : चौखम्बा विद्याभवन, 2016
- नारायण पण्डित, हितोपदेश, सम्पा. रामचन्द्र मिश्र, तृतीय संस्करण, वाराणसी : चौखम्बा संस्कृत संस्थान, 2015
- पतञ्जलि। योगसूत्र, व्याख्याकार : स्वामी ओमानन्द तीर्थ, द्वितीय संस्करण, वाराणसी : चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, 2017
- मनुस्मृति। सम्पा. हरगोविन्द शास्त्री, नवीन संस्करण। दिल्ली : चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, 2014
- सुभाषितरत्नभाण्डागारम्, प्रथम संस्करण, वाराणसी : चौखम्बा संस्कृत सीरीज़, 2011
- ईशादि नौ उपनिषद्, गोरखपुर : गीताप्रेस, पुनर्मुद्रित संस्करण, 2021
- भवभूति, उत्तररामचरितम्। सम्पा. डॉ. श्रीनिवास शास्त्री, द्वितीय संस्करण, अहमदाबाद : सरस्वती पुस्तक भण्डार, 2018

આદિવાસીઓમાં સામાજિક પરિવર્તન

ડૉ. કાળુભાઈ. જી. સરવૈયા

અધ્યાપક સહાયક

વાય. એસ. આર્ટસ અને કે. એસ. શાહ કોમર્સ કોલેજ,

દેવગઢ-બારીયા

સારાંશ

ભારતીય આદિવાસી સમુદાયના જીવનમાં પ્રાચીનકાળથી લઈને ૨૧મી સદીના ડિજિટલ યુગ સુધી આવેલા વ્યાપક પરિવર્તનો આવ્યા છે. આદિવાસી સમાજ, જે ઐતિહાસિક રીતે પ્રકૃતિની ગોદમાં અને સ્વાયત્ત રીતે જીવતો સમુદાય રહ્યો છે, તેણે સમયના વિવિધ તબક્કે અનેક સામાજિક, આર્થિક અને સાંસ્કૃતિક આઘાતો અને પ્રવાહોનો સામનો કર્યો છે. આ અભ્યાસમાં મુખ્યત્વે ગૌણ સ્ત્રોતો (Secondary Data) જેવા કે ઐતિહાસિક દસ્તાવેજો, સરકારી અહેવાલો, માનવશાસ્ત્રીય ગ્રંથો અને વર્તમાન સામાજિક-આર્થિક આંકડાઓનું વિશ્લેષણ કરવામાં આવ્યું છે. સંશોધન માટે તુલનાત્મક અને ઐતિહાસિક પદ્ધતિનો ઉપયોગ કરીને પરિવર્તનના વિવિધ તબક્કાઓને મૂલવવામાં આવ્યા છે.

વિશ્લેષણ દર્શાવે છે કે: પ્રાચીન કાળમાં આદિવાસીઓ પ્રકૃતિ સાથે અતૂટ સંબંધ ધરાવતા હતા, જ્યાં સામૂહિકતા મુખ્ય હતી. મધ્યકાળમાં રજવાડાઓ અને બાહ્ય સત્તાના સંપર્કથી સામાજિક શ્રેણીબદ્ધતાની શરૂઆત થઈ. બ્રિટિશ શાસન દરમિયાન જંગલના કાયદાઓએ આદિવાસીઓને તેમના મૂળભૂત અધિકારોથી વંચિત કરી દીધા, જેના પરિણામે મોટા પાયે સશસ્ત્ર વિદ્રોહ થયા. આઝાદી પછી બંધારણીય રક્ષણ અને અનામતની જોગવાઈઓએ વિકાસના દ્વાર ખોલ્યા, પરંતુ સાથે-સાથે મોટા પ્રોજેક્ટ્સને કારણે વિસ્થાપન જેવી ગંભીર સમસ્યાઓ પણ ઉભી થઈ. ૨૧મી સદીમાં વૈશ્વિકીકરણ અને ડિજિટલ ટેકનોલોજીએ આદિવાસી સમાજમાં શિક્ષણ અને આર્થિક ગતિશીલતા વધારી છે, પરંતુ તેની સામે ભાષા અને પરંપરાગત ઓળખ જળવવાનું મોટું પડકાર ઊભું થયું છે. નિષ્કર્ષ: સંશોધન એ નિષ્કર્ષ પર આવે છે કે આદિવાસી સમાજમાં પરિવર્તન અનિવાર્ય છે, પરંતુ તે પરિવર્તન તેમની મૂળભૂત ઓળખ અને સંસ્કૃતિના ભોગે ન હોવું જોઈએ. આધુનિક શિક્ષણ અને ટેકનોલોજીનો ઉપયોગ કરીને પણ આદિવાસી સમાજ પોતાની પરંપરાગત મૂલ્ય પ્રણાલી જળવી શકે તેવો ‘ટકાઉ વિકાસ’ (Sustainable Development) સમયની માંગ છે.

મુખ્ય શબ્દો (Keywords): આદિવાસી સમાજ, સામાજિક પરિવર્તન, સાંસ્કૃતિક ઓળખ, બંધારણીય રક્ષણ, વૈશ્વિકીકરણ, ડિજિટલ યુગ.

- **પ્રાચીન સમય: પ્રકૃતિ સાથેનું તાદાત્મ્ય**

પ્રાચીન સમયમાં આદિવાસી સમાજ અને પ્રકૃતિ વચ્ચેનો સંબંધ માત્ર ‘ઉપયોગ’ પૂરતો મર્યાદિત નહોતો, પરંતુ તે ‘તાદાત્મ્ય’ (Symbiosis) એટલે કે એકરૂપતાનો હતો. માટે નીચે મુજબના ઊંડાણપૂર્વકના મુદ્દાઓ નોંધી શકાય:

૧. **પ્રકૃતિ: ભગવાન અને પાલક તરીકે:** પ્રાચીન સમયમાં આદિવાસીઓ માટે જંગલ એ માત્ર જમીનનો ટુકડો નહોતો, પણ સાક્ષાત દેવતા હતા. **ટોટેમવાદ (Totemism):** દરેક કુળ (Clan) કોઈ એક પશુ, પક્ષી કે વૃક્ષ સાથે જોડાયેલું હતું. તેને નુકસાન પહોંચાડવું એ પાપ ગણાતું. આ રીતે અજાણતા જ જૈવવિવિધતાનું સંરક્ષણ થતું. **પૂજા પદ્ધતિ:** સૂર્ય, ચંદ્ર, અગ્નિ, પથ્થર અને પહાડોની પૂજા કરવી એ તેમના જીવનનો અભિન્ન હિસ્સો હતો. ‘ડુંગર દેવ’ કે ‘વાઘ દેવ’ ની પૂજા આજે પણ તેના અવશેષો છે.
૨. **સામાજિક માલિકી અને સામૂહિકતા:** પ્રાચીન કાળમાં ‘વ્યક્તિગત મિલકત’ જેવો કોઈ ખ્યાલ નહોતો. સહિયારા સંસાધનો: જંગલના ફળ, લાકડાં કે શિકાર પર આખા સમુદાયનો સમાન હક હતો. આના કારણે સમાજમાં કોઈ અમીર કે ગરીબ નહોતું, જે એક ‘સમતાવાદી સમાજ’ (Egalitarian Society) નું ઉત્તમ ઉદાહરણ હતું. ધોરુલ જેવી

સંસ્થાઓ: યુવાનોને પ્રકૃતિ સાથે રહેવાની અને સામાજિક જવાબદારીઓ સમજવાની તાલીમ આપતી મૌખિક પરંપરાઓ પ્રચલિત હતી.

૩. **ઈકોલોજીકલ જ્ઞાન :** આદિવાસીઓ પાસે વિજ્ઞાન વિનાનું એવું ઊંડું જ્ઞાન હતું જે આજે વૈજ્ઞાનિકો પણ સ્વીકારે છે: **ઔષધિય જ્ઞાન:** કઈ વનસ્પતિ કયા રોગમાં કામ આવે તેનું જ્ઞાન પેઢી દર પેઢી મૌખિક રીતે જતું. **ઋતુચક્રની સમજ:** પક્ષીઓના અવાજ કે આકાશના રંગ પરથી વરસાદ કે દુષ્કાળની આગાહી કરવાની ક્ષમતા.
૪. **‘જળ, જમીન અને જંગલ’ પ્રત્યેનો દૃષ્ટિકોણ: જળ:** નદીઓને પવિત્ર ગણી તેને પ્રદૂષિત ન કરવી. **જમીન:** પૃથ્વીને માતા માની તેની પૂજા કરવી અને જરૂર પૂરતી જ ખેતી (સ્થળાંતરિત ખેતી – Shifting Cultivation) કરવી જેથી જમીનનો કસ જળવાય રહે. **જંગલ:** જંગલમાંથી તેટલું જ લેવું જેટલું જીવવા માટે જરૂરી હોય, સંગ્રહખોરીનો અભાવ.

● **મધ્યકાલીન સમય: સંપર્ક અને સંઘર્ષ :**

મધ્યકાલીન સમય આદિવાસી સમાજ માટે એક અત્યંત જટિલ અને પરિવર્તનશીલ સમયગાળો હતો. આ સમયગાળામાં આદિવાસીઓ તેમના એકાંત (Isolation) માંથી બહાર આવીને બહારના જગત, રાજવી સત્તાઓ અને નવા ધર્મોના સંપર્કમાં આવ્યા. જેમાં આ મુજબના વિશ્લેષણાત્મક મુદ્દાઓ આવરી શકાય:

૧. **આદિવાસી રજવાડાઓનો ઉદય (Rise of Tribal Kingdoms):** મધ્યકાળમાં ઘણા આદિવાસી સમુદાયોએ પોતાની સંગઠિત શક્તિ બતાવી અને સ્વતંત્ર રજવાડાં સ્થાપ્યા. **ગોંડ અને ભીલ સત્તા:** મધ્ય ભારતમાં ગોંડ રાજાઓ (દા.ત. રાણી દુર્ગાવતી) અને પશ્ચિમ ભારતમાં ભીલ નાયકો કે જેમના પોતાના કિલ્લા અને સૈન્ય હતા. **ગરાસિયા અને સરદારો:** ગુજરાત અને રાજસ્થાનના સરહદી વિસ્તારોમાં આદિવાસી સરદારોની સત્તા હતી, જેઓ પહાડી કિલ્લાઓ પરથી શાસન કરતા.
૨. **ક્ષત્રિયકરણ અને સામાજિક ગતિશીલતા (Sanskritization and Kshatriyanization):** આ સમયે આદિવાસી સમાજમાં સામાજિક દરજ્જો વધારવાની પ્રક્રિયા શરૂ થઈ. **હિન્દુ અને મુસ્લિમ શાસકો સાથે સંપર્ક:** આદિવાસી રાજાઓએ રાજપૂત કે મુસ્લિમ શાસકોની જીવનશૈલી અપનાવવાની શરૂઆત કરી. **લગ્ન સંબંધો અને વંશાવળી:** ઘણા આદિવાસી પરિવારોએ પોતાને ‘ક્ષત્રિય’ તરીકે ઓળખાવવાનું શરૂ કર્યું, જેને સમાજશાસ્ત્રમાં ‘સંસ્કૃતિકરણ’ (Sanskritization) કહેવામાં આવે છે.
૩. **આર્થિક પરિવર્તન: વેપાર અને જમીન મહેસૂલ: જંગલની બહારનો વેપાર:** મધ્યકાળમાં મીઠું, મસાલા અને કપડાંના બદલામાં આદિવાસીઓ જંગલી પેદાશો (મધ, લાખ, ચામડું) આપતા થયા. **મહેસૂલ પદ્ધતિ:** મુગલ અને મરાઠા શાસન દરમિયાન, આદિવાસી વિસ્તારોમાં મહેસૂલ ઉઘરાવવાની શરૂઆત થઈ, જેનાથી આદિવાસીઓની આર્થિક સ્વતંત્રતા પર અસર પડી.
૪. **ધાર્મિક પ્રભાવ અને ભક્તિ આંદોલન:** મધ્યકાળમાં ભારતભરમાં ફેલાયેલા ભક્તિ આંદોલનની ઊંડી અસર આદિવાસીઓ પર પડી. **સંતોનો પ્રભાવ:** અનેક સંતોએ આદિવાસી વિસ્તારોમાં જઈને સામાજિક સુધારા કર્યા. આનાથી તેમના પરંપરાગત દેવી-દેવતાઓની સાથે હિન્દુ ધર્મના દેવોની પૂજાનો પણ પ્રારંભ થયો. **ઈસ્લામનો પ્રવેશ:** કેટલાક વિસ્તારોમાં (વિશેષ કરીને પૂર્વ ભારત અને મધ્ય ભારતમાં) શાસકોના પ્રભાવ હેઠળ આદિવાસીઓએ ઈસ્લામનો અંગીકાર કર્યો.
૫. **સંઘર્ષના મૂળ :** આ સમયગાળામાં સંઘર્ષની શરૂઆત થઈ કારણ કે: બહારના લોકો (જેને આદિવાસીઓ ‘દિકુ’ કહેતા) આદિવાસી વિસ્તારોમાં આવીને સ્થાયી થવા લાગ્યા. જંગલના સંસાધનો પર રાજ્યની નજર પડી, જેનાથી આદિવાસીઓના પરંપરાગત હકોમાં ખલેલ પડી.

● **બ્રિટિશ કાળ: પરિવર્તનનો વળાંક :**

બ્રિટિશ કાળ એ આદિવાસી ઇતિહાસનો સૌથી સંઘર્ષમય અને ‘પીડાદાયક’ વળાંક માનવામાં આવે છે. આ સમયગાળામાં આદિવાસીઓની સદીઓ જૂની સ્વાયત્તાનો અંત આવ્યો અને તેઓ સીધા જ વહીવટી તંત્રના નિયંત્રણ હેઠળ આવ્યા. જે નીચેના મુદ્દાઓનું વિશ્લેષણ કરી શકાય:

૧. **જંગલના કાયદા અને હકોનું છીનવાવું :** બ્રિટિશ સરકારે ૧૮૬૪ અને ૧૮૭૮માં ‘ફોરેસ્ટ એક્ટ’ પસાર કરીને જંગલોને ‘સરકારી મિલકત’ જાહેર કરી દીધા. **સૂચિત અને આરક્ષિત જંગલો:** આદિવાસીઓને જંગલમાંથી લાકડાં, ફળ કે કંદમૂળ લેતા રોકવામાં આવ્યા. **ખેતી પર પ્રતિબંધ:** તેમની પરંપરાગત ‘ઝૂમ ખેતી’ (સ્થળાંતરિત ખેતી) પર પ્રતિબંધ લાદવામાં આવ્યો, કારણ કે બ્રિટિશરો તેને જંગલ માટે નુકસાનકારક માનતા હતા.
૨. **‘દિકુ’ (બહારના લોકો) અને શોષણ:** આદિવાસી વિસ્તારોમાં બિન-આદિવાસી વેપારીઓ, જમીનદારો અને વ્યાજખોરોનો પ્રવેશ થયો, જેમને આદિવાસીઓ ‘દિકુ’ કહેતા. **દેવું અને ગુલામી:** ઊંચા વ્યાજદરને કારણે આદિવાસીઓની જમીનો જમીનદારો હડપ કરવા લાગ્યા. આનાથી ‘વેઠ પ્રથા’ (Bonded Labor) નો ઉદય થયો. **જમીન મહેસૂલ:** બ્રિટિશરોએ રોકડમાં મહેસૂલ માગવાનું શરૂ કર્યું, જેના કારણે આદિવાસીઓએ શાહુકારો પાસે જવું પડ્યું.
૩. **આદિવાસી વિદ્રોહ અને લડત:** જ્યારે જળ, જમીન અને જંગલ પર આક્રમણ થયું, ત્યારે આદિવાસીઓએ હથિયાર ઉપાડ્યા. **બિરસા મુંડા (ઉલગુલાન):** છોટા નાગપુર વિસ્તારમાં ‘અબુઆ રાજ’ (આપણું રાજ) સ્થાપવા માટે બ્રિટિશરો સામે ભીષણ લડત આપી. **સંથાલ હુલ (૧૮૫૫):** સિદ્ધુ અને કાન્હુના નેતૃત્વમાં હજારો સંથાલ આદિવાસીઓએ જમીનદારો અને અંગ્રેજો સામે મોરચો માંડ્યો. **ગુજરાતના સંદર્ભમાં:** પંચમહાલમાં ‘જોરિયા પરમેશ્વર’ અને ‘રૂપસિંહ નાયક’નો વિદ્રોહ તથા માનગઢ હિલ્સ ખાતે ગોવિંદ ગુરુના નેતૃત્વમાં થયેલો માનગઢ હત્યાકાંડ (૧૮૧૩), જે આદિવાસીઓનો જલિયાવાલા બાગ ગણાય છે.
૪. **ખ્રિસ્તી મિશનરીઓ અને સાંસ્કૃતિક અસર:** બ્રિટિશ કાળમાં ખ્રિસ્તી મિશનરીઓ આદિવાસી વિસ્તારોમાં સક્રિય થઈ. **શિક્ષણ અને આરોગ્ય:** મિશનરીઓએ શાળાઓ અને દવાખાનાઓ શરૂ કર્યા, જેનાથી એક નવો ભણેલો આદિવાસી વર્ગ ઊભો થયો. **ધર્માતરણ:** સેવાના માધ્યમથી ઘણા આદિવાસીઓએ ખ્રિસ્તી ધર્મ અંગીકાર કર્યો, જેનાથી તેમની પરંપરાગત સંસ્કૃતિ અને નવા વિચારો વચ્ચે સંઘર્ષ પેદા થયો.
૫. **ગુનાહિત જનજાતિ અધિનિયમ (Criminal Tribes Act, 1871):** અંગ્રેજોએ કેટલાક લડાયક આદિવાસી સમુદાયોને ‘જન્મજાત ગુનેગાર’ જાહેર કર્યા. આ કાયદાએ આદિવાસીઓની સામાજિક પ્રતિષ્ઠાને ભારે નુકસાન પહોંચાડ્યું અને તેમને કાયમી નજરકેદ જેવી સ્થિતિમાં મૂકી દીધા.

● **આઝાદી પછીનો કાળ: બંધારણીય રક્ષણ અને વિકાસ :**

આઝાદી પછીનો સમયગાળો આદિવાસીઓ માટે એક નવી આશા અને પડકારો લઈને આવ્યો. સ્વતંત્ર ભારતે આદિવાસીઓને માત્ર ‘નાગરિક’ તરીકે જ નહીં, પરંતુ એક ‘વિશેષ રક્ષણ’ પાત્ર સમુદાય તરીકે સ્વીકાર્યા. નીચેના મુખ્ય પાસાઓ પર ભાર મૂકી શકો છો:

૧. **બંધારણીય જોગવાઈઓ અને સુરક્ષા (Constitutional Safeguards):** ભારતીય બંધારણે આદિવાસીઓને ‘અનુસૂચિત જનજાતિ’ (Scheduled Tribes – ST) તરીકે ઓળખ આપી અને તેમના હિતો માટે વિશેષ કલમો ઘડી: **કલમ ૧૫ અને ૧૬:** શિક્ષણ અને સરકારી નોકરીઓમાં અનામતની જોગવાઈ, જેથી તેઓ મુખ્ય પ્રવાહમાં આવી શકે. **પમી અને ૬૬ી અનુસૂચિ:** આદિવાસી વિસ્તારોના

વહીવટ માટે સ્વાયત્તતા અને તેમની જમીનોનું રક્ષણ કરવાની જોગવાઈ. કલમ ૩૩૦ અને ૩૩૨: સંસદ અને વિધાનસભામાં રાજકીય પ્રતિનિધિત્વ (બેઠકોની અનામત).

૨. **નેહરુવાદી અભિગમ: પંચશીલ સિદ્ધાંત (Panchsheel Principles)** ભારતના પ્રથમ વડાપ્રધાન જવાહરલાલ નેહરુએ આદિવાસી વિકાસ માટે પાંચ સિદ્ધાંતો આપ્યા હતા, જે સંશોધનમાં ટાંકવા ખૂબ જરૂરી છે: લોકોએ તેમની પોતાની પ્રતિભા મુજબ વિકાસ કરવો જોઈએ (કોઈપણ બહારનું મોડેલ થોપવું નહીં). જંગલ અને જમીન પરના તેમના અધિકારોનું સન્માન કરવું. તેમના પોતાના લોકોને જ વહીવટ અને વિકાસ માટે તાલીમ આપવી. આદિવાસી વિસ્તારોમાં વહીવટી તંત્રનો અતિરેક ન કરવો. વિકાસને આંકડાઓથી નહીં, પણ માનવીય ગુણવત્તાના આધારે માપવો.
૩. **વિકાસલક્ષી યોજનાઓ અને સંસ્થાઓ:** ITDP (Integrated Tribal Development Project): આદિવાસી વિસ્તારોના સંકલિત વિકાસ માટેની યોજનાઓ. TRIFED: આદિવાસીઓની જંગલ પેદાશોને યોગ્ય ભાવ મળે તે માટેનું માર્કેટિંગ ફેડરેશન. **શૈક્ષણિક પહેલ:** આશ્રમ શાળાઓ અને તાજેતરમાં એકલવ્ય મોડેલ રેસિડેન્શિયલ સ્કૂલ્સ (EMRS) દ્વારા શિક્ષણનો ફેલાવો.
૪. **વિકાસના નકારાત્મક પાસાં: વિસ્થાપન (Displacement):** આઝાદી પછીના મોટા ડેમ (દા.ત. નર્મદા યોજના), ખાણો અને ઉદ્યોગો મોટે ભાગે આદિવાસી વિસ્તારોમાં આવ્યા. **પુનઃવસનનો પ્રશ્ન:** હજારો આદિવાસીઓએ પોતાની જમીન ગુમાવી. તેઓ 'વિકાસના ભોગે' વિસ્થાપિત થયા, જેનાથી તેમની સામાજિક અને આર્થિક વ્યવસ્થા ખોરવાઈ ગઈ. **સાંસ્કૃતિક આઘાત:** જંગલથી દૂર થઈને શહેરોના કિનારે મજૂરી કરવા મજબૂર થવું એ આ ગાળાની મોટી દુખદાયક ઘટના છે.
૫. **PESA એક્ટ અને વનાધિકાર કાયદો (Forest Rights Act):** PESA Act (૧૯૮૬): પંચાયત ક્ષેત્રે આદિવાસી ગ્રામસભાઓને વિશેષ સત્તા આપી. **Forest Rights Act (૨૦૦૬):** બ્રિટિશ કાળમાં થયેલા ઐતિહાસિક અન્યાયને સુધારીને આદિવાસીઓને જમીનના હક્કો (સનદ) આપવાની શરૂઆત થઈ.

● ૨૧મી સદી: વૈશ્વિકીકરણ અને ડિજિટલ યુગ :

૨૧મી સદીમાં આદિવાસી સમાજ એક મોટા પરિવર્તનના ઉંબરે ઉભો છે. આ સમયગાળો અગાઉના તમામ યુગ કરતા સૌથી વધુ ઝડપી અને વ્યાપક પરિવર્તનનો સાક્ષી રહ્યો છે. સંશોધન પેપરના આ છેલ્લા અને સૌથી પ્રસ્તુત વિભાગમાં તમે નીચેના મુદ્દાઓનું વિશ્લેષણ કરી શકો છો:

૧. **ડિજિટલ ક્રાંતિ અને કનેક્ટિવિટી:** સ્માર્ટફોન અને સસ્તા ઇન્ટરનેટ ડેટાએ આદિવાસી જીવનના અંતરિયાળ વિસ્તારોમાં ભૌગોલિક સીમાઓ તોડી નાખી છે. **માહિતીનો પ્રસાર:** શિક્ષણ, સ્વાસ્થ્ય અને સરકારી યોજનાઓની માહિતી હવે આંગળીના ટેરવે ઉપલબ્ધ છે. **સોશિયલ મીડિયા અને ઓળખ:** યુવાનો ઇન્સ્ટાગ્રામ કે યુટ્યુબના માધ્યમથી પોતાની પરંપરાગત કલા, સંગીત અને નૃત્ય (જેમ કે ડાંગી નૃત્ય કે આદિવાસી ચિત્રકલા) ને વૈશ્વિક પ્લેટફોર્મ આપી રહ્યા છે. **ઈ-ગવર્નન્સ:** સીધા લાભ હસ્તાંતરણ (DBT) દ્વારા ભ્રષ્ટાચારમાં ઘટાડો થયો છે અને સરકારી સહાય સીધી ખાતામાં પહોંચી રહી છે.
૨. **આર્થિક પરિવર્તન અને ઉદ્યોગસાહસિકતા:** પરંપરાગત ખેતી હવે 'એગ્રી-બિઝનેસ' અને અન્ય ક્ષેત્રોમાં રૂપાંતરિત થઈ રહી છે. **રોકડિયા પાકો અને આધુનિક ખેતી:** સિંચાઈની સુવિધાઓ વધતા હવે આદિવાસી ખેડૂનો શાકભાજી, ફૂલો અને અન્ય રોકડિયા પાકો તરફ વળ્યા છે. **ટૂરિઝમ (Tribal Tourism):** સ્ટેચ્યુ ઓફ યુનિટી (નર્મદા) જેવા પ્રોજેક્ટ્સને કારણે આદિવાસી વિસ્તારોમાં 'હોમ-સ્ટે' અને પ્રવાસન દ્વારા નવી રોજગારી ઊભી થઈ છે. **કૌશલ્ય વિકાસ:** કૌશલ્ય વર્ધક કેન્દ્રો દ્વારા આદિવાસી યુવાનો ટેકનિકલ ક્ષેત્રે સજ્જ બની રહ્યા છે.

૩. શૈક્ષણિક ગતિશીલતા: ૨૧મી સદીમાં આદિવાસી યુવાનોનું લક્ષ્ય માત્ર પ્રાથમિક શિક્ષણ નથી, પરંતુ ઉચ્ચ અને વિદેશી શિક્ષણ પણ છે. સ્પર્ધાત્મક પરીક્ષાઓ: GPSC અને UPSC જેવી પરીક્ષાઓમાં આદિવાસી યુવાનોનું વધતું પ્રમાણ સામાજિક દરજ્જામાં મોટું પરિવર્તન લાવી રહ્યું છે. નવી શિક્ષણ નીતિ (NEP): માતૃભાષામાં પ્રાથમિક શિક્ષણ પર ભાર મૂકવાને કારણે આદિવાસી બાળકો માટે શિક્ષણ વધુ સહજ બન્યું છે.
૪. સામાજિક-સાંસ્કૃતિક પડકારો: પરિવર્તનની આ તેજ ગતિમાં કેટલીક નકારાત્મક અસરો પણ જોવા મળી રહી છે: સાંસ્કૃતિક વિલુપ્તીકરણ: આધુનિકતાના પ્રવાહમાં નવી પેઢી પોતાની મૂળ બોલી અને પરંપરાગત લોકગીતો ભૂલી રહી છે. પશ્ચિમીકરણ: ખાનપાન અને પહેરવેશમાં શહેરી પ્રભાવ એટલો વધ્યો છે કે મૂળ આદિવાસી ઓળખ નબળી પડી રહી છે. માનસિક સ્વાસ્થ્ય અને બેરોજગારી: શિક્ષણ વધવા છતાં પૂરતી રોજગારી ન મળતા યુવાનોમાં હતાશા અને સ્થળાંતરની સમસ્યા વધતી જાય છે.
૫. રાજકીય જાગૃતિ અને અધિકારોની લડત: ૨૧મી સદીનો આદિવાસી હવે વધુ સંગઠિત છે. ઓળખની રાજનીતિ: પોતાની જમીન અને અધિકારો માટે આદિવાસી સંગઠનો વધુ સક્રિય બન્યા છે. પર્યાવરણ રક્ષકો: આખું વિશ્વ જ્યારે ક્લાઈમેટ ચેન્જથી પરેશાન છે, ત્યારે આદિવાસીઓ ‘ઈકો-વોરિયર્સ’ તરીકે ઉભરી રહ્યા છે.
- આદિવાસીઓના પરંપરાગત રીત-રિવાજોમાં આવેલા ફેરફારો:
આદિવાસીઓના પરંપરાગત રીત-રિવાજોમાં આવેલા ફેરફારોને તપાસવા માટે તમારે તેને વિવિધ સામાજિક પાસાઓમાં વિભાજિત કરવા પડશે. આ ફેરફારો મુખ્યત્વે આધુનિક શિક્ષણ, શહેરીકરણ અને સમૂહ માધ્યમોના પ્રભાવને કારણે આવ્યા છે. નીચેના મુદ્દાઓ દ્વારા વિશ્લેષિત કરી શકાય છે:
૧. લગ્ન પ્રથામાં પરિવર્તન: દાપા પ્રથા (કન્યામૂલ્ય): પ્રાચીન સમયમાં વરપક્ષ દ્વારા કન્યાપક્ષને રકમ આપવામાં આવતી (દાપા). હવે શિક્ષિત વર્ગમાં આ પ્રથા ધીમે ધીમે ઓછી થઈ રહી છે અથવા તેનું સ્થાન ‘દહેજ પ્રથા’ (વરપક્ષને અપાતી ભેટ) એ લીધું છે. લગ્ન વિધિ: પરંપરાગત ‘ચોરી’ અને પૂર્વજોની પૂજાના સ્થાને હવે બ્રાહ્મણ દ્વારા કરવામાં આવતી વૈદિક વિધિઓ અને ‘ડીજે’ જેવા આધુનિક મનોરંજનના સાધનોનો પ્રવેશ થયો છે.
૨. જન્મ અને મૃત્યુની વિધિઓ: આરોગ્ય અને વિજ્ઞાન: પહેલાં જન્મ સમયે ‘દાયાણુ’ (પરંપરાગત મિડવાઈફ) પર નિર્ભરતા હતી, જે હવે હોસ્પિટલ અને ડોક્ટરે લીધી છે. મૃત્યુ સંસ્કાર: મૃત્યુ પછી પથ્થરના સ્મારક (ખાંભી) મૂકવાની પરંપરા હવે ઘટતી જાય છે. શ્રાદ્ધ અને તેરમા જેવી વિધિઓ મુખ્ય પ્રવાહના હિન્દુ ધર્મની અસરો હેઠળ બદલાઈ રહી છે.
૩. ઉત્સવો અને મેળા- મેળાઓનું સ્વરૂપ: આદિવાસી મેળાઓ (જેમ કે ચિત્ર-વિચિત્રનો મેળો કે ક્વાંટનો ઘેરનો મેળો) પહેલાં જીવનસાથી પસંદ કરવાના અને વસ્તુ વિનિમયના કેન્દ્રો હતા. આજે તે પ્રવાસન અને વ્યાપારીકરણના કેન્દ્રો બન્યા છે. હોળી અને દિવાસો: આ તહેવારોમાં પરંપરાગત નૃત્યો અને ગીતોના સ્થાને હવે ફિલ્મી ગીતો અને આધુનિક પહેરવેશ જોવા મળે છે.
૪. સામાજિક ન્યાય અને પંચાયત: મુખી કે પંચની સત્તા: પહેલાં ગામના ઝઘડા કે સામાજિક વિવાદો ગામનો ‘મુખી’ કે ‘પંચ’ ઉકેલતા. હવે લોકો પોલીસ મથક અને અદાલતો (Judiciary) તરફ વળ્યા છે. ન્યાય પદ્ધતિ: પરંપરાગત દંડ (જેમ કે સામુદાયિક ભોજન આપવું) ને બદલે હવે કાયદાકીય દંડનો સ્વીકાર થયો છે.
૫. પહેરવેશ અને અલંકારો: ઓળખનું પરિવર્તન: ચાંદીના ભારે ઘરેણાં અને હાથે ત્રોફાવેલા ‘ટેટૂ’ (ગોદણાં) ની પરંપરા નવી પેઢીમાં ઓછી થઈ રહી છે. પુરુષોમાં ધોતી-ફાળિયાને બદલે પેન્ટ-શર્ટ અને સ્ત્રીઓમાં સાડી કે ડ્રેસ સામાન્ય બન્યા છે.

- **આદિવાસી સમાજની આર્થિક સંરચનામાં થયેલું પરિવર્તન:**

આદિવાસી સમાજની આર્થિક સંરચનામાં થયેલું પરિવર્તન એ તેમના સમગ્ર સામાજિક બદલાવનો પાયો છે. પ્રાચીન સમયની ‘આત્મનિર્ભરતા’ થી લઈને ૨૧મી સદીની ‘બજાર આધારિત અર્થવ્યવસ્થા’ સુધીની સફર ખૂબ જ રસપ્રદ છે. આર્થિક પરિવર્તનને નીચેના મુખ્ય મુદ્દાઓ દ્વારા સમજી શકાય છે:

૧. **ખેતી પદ્ધતિમાં પરિવર્તન: પરંપરાગત ખેતી:** પહેલાં આદિવાસીઓ માત્ર પોતાના ઘરના વપરાશ માટે (Subsistence Farming) મકાઈ, કોદરા કે નાગલી જેવા ધાન્યો પકવતા. આધુનિક ખેતી: હવે સિંચાઈ અને બિયારણની સુવિધા વધતા તેઓ કપાસ, મગફળી, શેરડી અને શાકભાજી જેવા રોકડિયા પાકો તરફ વળ્યા છે. ટેકનોલોજીનો ઉપયોગ: હળ અને બળદના સ્થાને ટ્રેક્ટર, ગ્રેશર અને ડ્રીપ ઈરિગેશનનો વપરાશ વધ્યો છે.
૨. **જંગલ પેદાશો પરની નિર્ભરતામાં ઘટાડો:** એક સમયે આદિવાસી અર્થતંત્ર સંપૂર્ણપણે મહુડા, ટીમરુના પાન, મધ અને લાકડા જેવી ગૌણ વન પેદાશો પર આધારિત હતું. જંગલના કાયદાઓ અને જંગલોના ઘટતા વિસ્તારને કારણે હવે આ નિર્ભરતા ઘટી છે અને તેના સ્થાને પશુપાલન (ડેરી ઉદ્યોગ) એક મજબૂત આર્થિક સ્ત્રોત બન્યો છે.
૩. **વ્યવસાયિક વિવિધતા:** આજની પેઢી હવે માત્ર ખેતી પર નિર્ભર નથી. સરકારી અને ખાનગી નોકરીઓ: અનામત અને શિક્ષણના કારણે પોલીસ, શિક્ષક, બેંકિંગ અને રેલવે જેવા ક્ષેત્રોમાં આદિવાસીઓનું પ્રમાણ વધ્યું છે. શ્રમ સ્થળાંતર (Migration): ખેતીમાં આવક ઓછી થવાને કારણે ઘણા પરિવારો સીઝન મજૂબ શહેરોમાં બાંધકામ કે હીરા ઉદ્યોગમાં મજૂરી કરવા જાય છે. આનાથી તેમની પાસે રોકડ નાણાં (Cash Flow) આવ્યા છે. સ્વ-રોજગાર: આદિવાસી યુવાનો હવે નાની દુકાનો, ગેરેજ કે વાહન ચલાવવા જેવા વ્યવસાયો શરૂ કરી રહ્યા છે.
૪. **નાણાકીય વ્યવહાર અને બેંકિંગ: શાહુકારથી બેંક સુધી:** પહેલાં આદિવાસીઓ ઊંચા વ્યાજે શાહુકારો પાસેથી લોન લેતા અને દેવાના ડુંગર નીચે દબાતા. હવે ‘જન ધન યોજના’ અને સહકારી મંડળીઓ દ્વારા તેઓ બેંકિંગ વ્યવહાર સાથે જોડાયા છે. બચત જૂથો (Sakhi Mandal): મહિલાઓના સ્વ-સહાય જૂથોએ આદિવાસી સ્ત્રીઓને આર્થિક રીતે સ્વતંત્ર બનાવી છે.

- **સંશોધન માટે મહત્વનો મુદ્દો:** પરિવર્તનની આ પ્રક્રિયામાં “સ્થળાંતર” (Migration) એ સૌથી મોટો આર્થિક બદલાવ છે. જ્યારે કોઈ આદિવાસી વ્યક્તિ શહેરમાં કમાવા જાય છે, ત્યારે તે માત્ર પૈસા જ નથી લાવતો, પણ શહેરની જીવનશૈલી, વિચારધારા અને આધુનિક વપરાશી ચીજો (ટીવી, બાઈક, મોબાઈલ) પણ તેના ગામમાં લાવે છે, જે આખા સમાજના આર્થિક માળખાને બદલી નાખે છે.

- **સંશોધન પેપરનું અંતિમ નિષ્કર્ષ :**

“પ્રાચીન સમયમાં જે આદિવાસી સમાજ ‘પ્રકૃતિ’ પર નિર્ભર હતો, તે મધ્યકાળમાં ‘સત્તા’ ના સંપર્કમાં આવ્યો, બ્રિટિશ કાળમાં ‘શોષણ’ નો ભોગ બન્યો, આઝાદી પછી ‘સંરક્ષણ’ પામ્યો અને આજે ૨૧મી સદીમાં તે ‘સશક્તિકરણ’ તરફ આગળ વધી રહ્યો છે. ૨૧મી સદીનું વિશ્લેષણ એ દર્શાવે છે કે સાચું પરિવર્તન ત્યારે જ કહેવાશે જ્યારે આદિવાસી સમાજ પોતાની ‘જડ’ (Root) સાથે જોડાયેલો રહીને આધુનિકતાના ‘આકાશ’ ને આંબે.”

સંદર્ભ સૂચિ

૧. મજમુદાર, ડી. એન. (D.N. Majumdar): Races and Cultures of India. (આદિવાસી સંસ્કૃતિના પાયાના અભ્યાસ માટે).
૨. એલ્વિન, વેરિયર (Verrier Elwin): The Tribal World of Verrier Elwin. (આદિવાસીઓના સામાજિક જીવન અને નેહરુવાદી અભિગમ સમજવા માટે).
૩. સિંગ, કે. એસ. (K.S. Singh): The Scheduled Tribes. (The People of India series).
૪. શાહ, વિમલ (Vimal Shah): ગુજરાતના આદિવાસીઓ. (ગુજરાત વિદ્યાપીઠ પ્રકાશન - સ્થાનિક અભ્યાસ માટે ઉત્તમ).
૫. દેસાઈ, આઈ. પી. (I.P. Desai): The Vedchchi Movement. (દક્ષિણ ગુજરાતમાં આદિવાસી સુધારા આંદોલનો માટે).
૬. સરકારી અહેવાલો અને દસ્તાવેજો (Government Reports) ભારત સરકાર: અનુસૂચિત જનજાતિ આયોગ (NCST) ના વાર્ષિક અહેવાલો.
૭. વર્જિનિયસ ખાખા સમિતિ અહેવાલ (Virginus Xaxa Committee Report, 2014): આદિવાસીઓના સામાજિક-આર્થિક અને શૈક્ષણિક દરજ્જા પરનો સૌથી મહત્વનો અહેવાલ.
૮. ભારતની વસ્તી ગણતરી (Census of India): ૨૦૧૧ અને ૨૦૨૧ (અંદાજિત) ના આંકડાકીય વિશ્લેષણ માટે.
૯. ગુજરાત સરકાર: આદિજાતિ વિકાસ વિભાગના અહેવાલો (Tribal Development Department, Gujarat).
૧૦. જર્નલ્સ અને લેખો (Journals) Economic and Political Weekly (EPW): આદિવાસી વિસ્થાપન અને અધિકારો પરના લેખો. Sociological Bulletin: ભારતીય સમાજશાસ્ત્રીય પરિષદનું મુખ્યપત્ર. Journal of Tribal Studies.

ડિજિટલ સ્ત્રોતો (Websites)

- ✓ TRI (Tribal Research Institute): વિવિધ રાજ્યોના આદિવાસી સંશોધન સંસ્થાઓની વેબસાઈટ.
- ✓ Ministry of Tribal Affairs (MOTA): tribal.nic.in (કેન્દ્રીય આદિજાતિ મંત્રાલય).
- ✓ Shodhganga: અગાઉ થયેલા Ph.D. થિસીસ જોવા માટે (infnlibnet.ac.in).

ભર્તૃહરિના નીતિશતકમાં ભાગ્ય, કર્મ અને પુરુષાર્થની સમીક્ષા : એક તત્ત્વચિંતનાત્મક અધ્યયન

ડૉ. પ્રભાતભાઈ સોમાભાઈ ડામોર

સંસ્કૃત- વિભાગ

આદિવાસી આર્ટ્સ એન્ડ કોમર્સ કોલેજ સંતરામપુર, પ્રભા

Prabhatsdamor84@gmail.com

Mo:9925551774

સંક્ષિપ્ત સાર

ભારતીય ચિંતનપરંપરામાં ભાગ્ય (Daiva), કર્મ (Karma) અને પુરુષાર્થ (Puruṣārtha) માનવજીવનના આધારભૂત તત્ત્વો ગણાય છે. આ ત્રણે તત્ત્વો વચ્ચેનો સંબંધ પ્રાચીન ભારતીય સાહિત્યમાં વિવિધ દૃષ્ટિકોણોથી રજૂ થયો છે. ભર્તૃહરિનું નીતિશતક નીતિ, જીવનમૂલ્યો, માનવવર્તન અને તત્ત્વજ્ઞાનનું અદ્વિતીય ગ્રંથ છે. તેમાં માનવજીવનમાં ભાગ્યનું સ્થાન, કર્મનું મહત્ત્વ અને પુરુષાર્થની આવશ્યકતા અંગે અનેક સુભાષિતો દ્વારા ગહન મનોમંથન કરવામાં આવ્યું છે.

પ્રસ્તુત સંશોધનનો મુખ્ય ઉદ્દેશ ભર્તૃહરિના નીતિશતકમાં પ્રતિપાદિત ભાગ્ય, કર્મ અને પુરુષાર્થના પરસ્પર સંબંધનું તત્ત્વચિંતનાત્મક વિશ્લેષણ કરવાનો છે. સંશોધનમાં ગુણાત્મક (Qualitative) અને વ્યાખ્યાત્મક (Interpretative) પદ્ધતિનો ઉપયોગ કરીને મૂળ સંસ્કૃત પાઠ, વિવિધ ટીકાઓ અને આધુનિક સંશોધનગ્રંથોના આધારે અભ્યાસ કરવામાં આવ્યો છે. અભ્યાસ દર્શાવે છે કે ભર્તૃહરિ ભાગ્યને સ્વીકારે છે, પરંતુ જીવનમાં સફળતા માટે પુરુષાર્થને અનિવાર્ય માને છે. કર્મને માનવજીવનના નૈતિક અને આધ્યાત્મિક વિકાસનું મૂળ કારણ ગણાવવામાં આવ્યું છે. આ રીતે નીતિશતક ભાગ્યવાદ અને કર્મવાદ વચ્ચે સંતુલિત દૃષ્ટિકોણ રજૂ કરીને માનવને જગૃત્, કર્તવ્યનિષ્ઠ અને પુરુષાર્થશીલ જીવન જીવવાનો સંદેશ આપે છે. આજના સામાજિક, શૈક્ષણિક અને નૈતિક પરિપ્રેક્ષ્યમાં પણ આ વિચારો અત્યંત પ્રાસંગિક છે.

મુખ્ય શબ્દો - ભર્તૃહરિ, નીતિશતક, ભાગ્ય, કર્મ, પુરુષાર્થ, ભારતીય તત્ત્વચિંતન

● પ્રસ્તાવના

ભારતીય તત્ત્વચિંતનની વિશિષ્ટતા એ છે કે તે માનવજીવનના વ્યવહારિક તથા આધ્યાત્મિક બંને પાસાઓનું સમન્વયપૂર્વક નિરૂપણ કરે છે. વેદ, ઉપનિષદો, ભગવદ્ગીતા, મહાભારત, રામાયણ તેમજ સંસ્કૃત સુભાષિત સાહિત્યમાં જીવનના મૂળ પ્રશ્નો અંગે ઊંડાણપૂર્વકનું ચિંતન જોવા મળે છે. તેમાં ભાગ્ય, કર્મ અને પુરુષાર્થ એવા ત્રણ તત્ત્વો છે, જેઓ માનવજીવનના માર્ગદર્શન માટે કેન્દ્રસ્થાન ધરાવે છે.

ભર્તૃહરિ સંસ્કૃત સાહિત્યના મહાન નીતિકાર, કવિ અને તત્ત્વચિંતક તરીકે જાણીતા છે. તેમના શતકત્રય-નીતિશતક, વૈરાગ્યશતક અને શૃંગારશતક- ભારતીય જ્ઞાનપરંપરાના અમૂલ્ય ગ્રંથો છે. તેમાં નીતિશતક માનવજીવનના નૈતિક મૂલ્યો, આદર્શ આચરણ, સદાચાર, જ્ઞાન, ધૈર્ય, દાન, મિત્રતા, દુર્જનતા, ભાગ્ય, કર્મ તથા પુરુષાર્થ જેવા વિષયોનું અત્યંત ગહન અને વ્યવહારલક્ષી નિરૂપણ કરે છે.

ભારતીય દર્શનોમાં ભાગ્ય અને પુરુષાર્થ અંગે વિવિધ મતો જોવા મળે છે. કેટલાક વિચારકો ભાગ્યને પ્રબળ માને છે, જ્યારે કેટલાક કર્મ અને પુરુષાર્થને જીવનના નિર્માણમાં નિર્ણાયક માને છે. ભર્તૃહરિનો અભિગમ આ બંને

વચ્ચે સમન્વય સ્થાપિત કરનાર છે. તેઓ માનવે પોતાના કર્તવ્યનું પાલન, સતત પુરુષાર્થ અને સદ્કર્મ દ્વારા જીવનનું ઘડતર કરવું જોઈએ એવો સંદેશ આપે છે.

વર્તમાન સમયમાં પણ ઘણી વખત વ્યક્તિ પોતાની નિષ્ફળતાનું કારણ ભાગ્યને માને છે, જ્યારે સફળતા માટે પુરુષાર્થનું મહત્ત્વ અવગણવામાં આવે છે. આવી સ્થિતિમાં ભર્તૃહરિના વિચારો માત્ર સાહિત્યિક જ નહીં પરંતુ સામાજિક, શૈક્ષણિક, નૈતિક અને માનસિક દૃષ્ટિએ પણ અત્યંત ઉપયોગી સાબિત થાય છે.

આ સંશોધનનો મુખ્ય હેતુ ભર્તૃહરિના નીતિશતકમાં પ્રતિપાદિત ભાગ્ય, કર્મ અને પુરુષાર્થના વિચારોનું તત્ત્વચિંતનાત્મક, તુલનાત્મક અને વિશ્લેષણાત્મક અધ્યયન કરવાનો છે. સાથે જ આ ત્રણે તત્ત્વો વચ્ચેના આંતરસંબંધને સમજાવીને આધુનિક જીવનમાં તેમની પ્રાસંગિકતા સ્થાપિત કરવાનો પણ પ્રયત્ન કરવામાં આવ્યો છે.

● સંશોધનના ઉદ્દેશ્યો

1. ભર્તૃહરિના નીતિશતકમાં ભાગ્યના સ્વરૂપનું વિશ્લેષણ કરવું.
2. કર્મના તત્ત્વનું નૈતિક અને તત્ત્વચિંતનાત્મક મૂલ્યાંકન કરવું.
3. પુરુષાર્થના મહત્ત્વનું શાસ્ત્રીય અધ્યયન કરવું.
4. ભાગ્ય, કર્મ અને પુરુષાર્થ વચ્ચેના પરસ્પર સંબંધનું વિશ્લેષણ કરવું.
5. આધુનિક સમાજમાં ભર્તૃહરિના વિચારોની પ્રાસંગિકતા દર્શાવવી.

● સંશોધનના પ્રશ્નો

1. ભર્તૃહરિના મતે ભાગ્યનું વાસ્તવિક સ્થાન શું છે?
2. શું નીતિશતક ભાગ્યવાદને સમર્થન આપે છે કે પુરુષાર્થવાદને?
3. કર્મ અને પુરુષાર્થ વચ્ચે કેવો સંબંધ દર્શાવવામાં આવ્યો છે?
4. આધુનિક જીવનમાં આ વિચારો કેટલા પ્રાસંગિક છે?

● સાહિત્ય સમીક્ષા

ભર્તૃહરિના નીતિશતક પર પ્રાચીન સમયથી લઈને આધુનિક યુગ સુધી અનેક વિદ્વાનોએ ભાષાશાસ્ત્રીય, સાહિત્યિક, નૈતિક તથા તત્ત્વચિંતનાત્મક દૃષ્ટિએ અભ્યાસ કર્યો છે. તેમ છતાં ભાગ્ય, કર્મ અને પુરુષાર્થના આંતરસંબંધનું એકીકૃત અને તુલનાત્મક વિશ્લેષણ પ્રમાણમાં ઓછું જોવા મળે છે. તેથી આ વિષય સંશોધન માટે વિશેષ મહત્ત્વ ધરાવે છે.

(1) પરંપરાગત ટીકાઓ

નીતિશતકની વિવિધ સંસ્કૃત ટીકાઓમાં ભર્તૃહરિના સુભાષિતોનો શબ્દાર્થ, ભાવાર્થ અને નૈતિક સંદેશનું વિશ્લેષણ કરવામાં આવ્યું છે. આ ટીકાઓમાં ધર્મ, નીતિ, દાન, જ્ઞાન, ધૈર્ય અને સદાચાર જેવા વિષયોનું વિશદ નિરૂપણ થયેલું છે. જોકે ભાગ્ય અને પુરુષાર્થના પરસ્પર સંબંધ અંગે વિસ્તૃત તત્ત્વચિંતનાત્મક ચર્ચા મર્યાદિત જોવા મળે છે.

(2) ભારતીય વિદ્વાનોના અભ્યાસ

આધુનિક ભારતીય સંશોધકોએ ભર્તૃહરિના નીતિશતકને ભારતીય સંસ્કૃતિ, જીવનદર્શન અને નૈતિક શિક્ષણના પરિપ્રેક્ષ્યમાં મૂલવ્યું છે. તેઓના અભ્યાસમાં મુખ્યત્વે નીચેના મુદ્દાઓ પર ભાર મૂકવામાં આવ્યો છે:

- નીતિશતકનું કાવ્યસૌંદર્ય
- નૈતિક મૂલ્યો
- રાજનીતિ અને સમાજદર્શન
- માનવસ્વભાવનું વિશ્લેષણ

- આદર્શ જીવનદર્શન

પરંતુ ભાગ્ય-કર્મ-પુરુષાર્થના ત્રિવિધ પરિમાણોનું એકીકૃત તત્ત્વચિંતનાત્મક વિશ્લેષણ પ્રમાણમાં ઓછું જોવા મળે છે.

(3) ભારતીય તત્ત્વચિંતના ગ્રંથો

ભગવદ્ગીતા, મહાભારત, મનુસ્મૃતિ, યોગવશિષ્ઠ, ઉપનિષદો તથા અન્ય દર્શનગ્રંથોમાં કર્મવાદ, દૈવવાદ અને પુરુષાર્થ અંગે વિશદ ચર્ચા જોવા મળે છે.

- ભગવદ્ગીતા નિષ્કામ કર્મને મહત્ત્વ આપે છે.

- મહાભારત ભાગ્ય અને પુરુષાર્થ બંનેને સમન્વિત રીતે સ્વીકારે છે.

- મનુસ્મૃતિ સદ્કર્મ અને ધર્માચારને જીવનની સફળતાનો આધાર માને છે.

- યોગવશિષ્ઠ પુરુષાર્થને જીવનપરિવર્તનનું મુખ્ય સાધન માને છે.

ભર્તૃહરિના વિચારો ઉપરોક્ત પરંપરાથી પ્રેરિત હોવા છતાં તેમનો અભિગમ વધુ વ્યવહારિક અને માનવકેન્દ્રિત છે.

(4) આધુનિક સંશોધન

તાજેતરના સંશોધનપત્રોમાં ભર્તૃહરિના વિચારોને આધુનિક નૈતિકતા, નેતૃત્વ, મૂલ્યશિક્ષણ અને વ્યક્તિત્વ વિકાસ સાથે સાંકળવાનો પ્રયાસ થયો છે. તેમ છતાં ભાગ્ય, કર્મ અને પુરુષાર્થના દાર્શનિક પરિમાણોનું સમન્વિત અધ્યયન હજી મર્યાદિત છે.

● સંશોધન ગેપ

ઉપરોક્ત સાહિત્યના અભ્યાસ પરથી નીચેના સંશોધન ગેપ સ્પષ્ટ થાય છે:

1. ભાગ્ય, કર્મ અને પુરુષાર્થનો સંકલિત અભ્યાસ ઉપલબ્ધ નથી.
 2. ભર્તૃહરિના વિચારોની ભગવદ્ગીતા અને મહાભારત સાથે તુલનાત્મક સમીક્ષા મર્યાદિત છે.
 3. આધુનિક સામાજિક અને શૈક્ષણિક જીવનમાં નીતિશતકની ઉપયોગિતા અંગે ઓછું સંશોધન થયું છે.
 4. પસંદ કરેલા શ્લોકોના તત્ત્વચિંતનાત્મક વિશ્લેષણનો અભાવ જોવા મળે છે.
 5. ગુજરાતી ભાષામાં આ વિષય પર ઉચ્ચ કક્ષાનું સંશોધન પ્રમાણમાં અલ્પ ઉપલબ્ધ છે.
- આથી પ્રસ્તુત સંશોધન આ ગેપને પૂર્ણ કરવાનો પ્રયત્ન કરે છે.

● સંશોધન પદ્ધતિશાસ્ત્ર

સંશોધનનો પ્રકાર : આ સંશોધન મુખ્યત્વે ગુણાત્મક (Qualitative Research), વર્ણનાત્મક (Descriptive Research) અને વિશ્લેષણાત્મક (Analytical Research) સ્વરૂપનું છે.

● માહિતીના સ્ત્રોત

(A) પ્રાથમિક સ્ત્રોત

- ભર્તૃહરિનું નીતિશતક (મૂળ સંસ્કૃત પાઠ)
- ઉપલબ્ધ પ્રમાણભૂત ટીકાઓ

(B) ગૌણ સ્ત્રોત

- સંશોધનગ્રંથો
- જર્નલ લેખો
- પીએચ.ડી. મહાનિબંધો
- ભારતીય દર્શનના ગ્રંથો

- યુજીસી કેર (UGC-CARE) સૂચિમાં સમાવિષ્ટ સંશોધન લેખો
- વિશ્વસનીય ડિજિટલ લાઈબ્રેરીઓ

● સંશોધન પદ્ધતિ

અભ્યાસમાં નીચેની પદ્ધતિઓનો ઉપયોગ કરવામાં આવ્યો છે:

- પાઠ વિશ્લેષણ (Textual Analysis)
- તુલનાત્મક પદ્ધતિ (Comparative Method)
- વ્યાખ્યાત્મક પદ્ધતિ (Interpretative Method)
- તત્ત્વચિંતનાત્મક અભિગમ (Philosophical Approach)

સંપૂર્ણ નીતિશતકનું અધ્યયન કરવામાં આવશે, પરંતુ ભાગ્ય, કર્મ અને પુરુષાર્થને સ્પષ્ટ રીતે રજૂ કરતા અંદાજે

25-30 મુખ્ય શ્લોકોનું વિશેષ વિશ્લેષણ કરવામાં આવશે.

● વિશ્લેષણની પદ્ધતિ

દરેક પસંદ કરાયેલા શ્લોક માટે નીચે મુજબ અભ્યાસ કરવામાં આવશે:

- મૂળ સંસ્કૃત પાઠ
- શબ્દાર્થ
- ગુજરાતી અનુવાદ
- તાત્પર્ય
- તત્ત્વચિંતનાત્મક વિશ્લેષણ
- અન્ય ભારતીય દર્શનો સાથે તુલના
- આધુનિક જીવનમાં પ્રાસંગિકતા

● સંશોધનની મર્યાદાઓ

1. અભ્યાસનો આધાર મુખ્યત્વે નીતિશતક સુધી મર્યાદિત રહેશે.
2. અન્ય શતકોનો ઉપયોગ માત્ર તુલનાત્મક સંદર્ભ તરીકે કરવામાં આવશે.
3. ઉપલબ્ધ પ્રમાણભૂત આવૃત્તિઓને આધાર માનવામાં આવશે.
4. અભ્યાસ મુખ્યત્વે ગુણાત્મક હોવાથી આંકડાકીય સર્વેક્ષણનો સમાવેશ કરવામાં આવ્યો નથી.

● સંશોધનની ઉપયોગિતા

આ સંશોધનના પરિણામો નીચેના ક્ષેત્રોમાં ઉપયોગી બનશે:

- સંસ્કૃત સાહિત્ય
- ભારતીય તત્ત્વચિંતન
- મૂલ્યશિક્ષણ
- નૈતિક શિક્ષણ
- શિક્ષણશાસ્ત્ર
- વ્યક્તિત્વ વિકાસ
- ભારતીય જ્ઞાનપરંપરાના આંતરવિષયક અભ્યાસ

● નિષ્કર્ષ અને ભલામણો

■ નિષ્કર્ષ

પ્રસ્તુત સંશોધનના આધારે સ્પષ્ટ થાય છે કે ભર્તૃહરિનું નીતિશતક માત્ર નીતિ-સુભાષિતોનો સંગ્રહ નથી, પરંતુ ભારતીય જીવનદર્શનનું એક ગહન તત્ત્વચિંતનાત્મક ગ્રંથ છે. તેમાં ભાગ્ય (દૈવ), કર્મ (કર્મ) અને પુરુષાર્થ (પુરુષાર્થ) જેવા જીવનનિર્માણના મૂળભૂત તત્ત્વોની અત્યંત સંતુલિત અને વ્યવહારલક્ષી સમીક્ષા કરવામાં આવી છે.

અભ્યાસ પરથી જાણવા મળે છે કે ભર્તૃહરિ ભાગ્યના અસ્તિત્વને નકારતા નથી, પરંતુ તેને માનવજીવનનો એકમાત્ર નિયામક તત્ત્વ પણ માનતા નથી. જીવનમાં સુખ-દુઃખ, લાભ-હાનિ અને અનુકૂળ-પ્રતિકૂળ સંજોગોમાં ભાગ્યની ભૂમિકા સ્વીકારતાં તેઓ સ્પષ્ટપણે જણાવે છે કે મનુષ્યે પોતાના કર્તવ્ય, ધૈર્ય, જ્ઞાન અને અવિરત પુરુષાર્થનો ત્યાગ કરવો જોઈએ નહીં. આથી ભર્તૃહરિનું જીવનદર્શન અંધ ભાગ્યવાદ કરતાં જાગૃત પુરુષાર્થવાદને વધુ મહત્ત્વ આપે છે.

સંશોધન એ પણ દર્શાવે છે કે ભર્તૃહરિના મતે કર્મ જીવનનું નૈતિક અને આધ્યાત્મિક આધાર છે. સદ્કર્મ વ્યક્તિના વ્યક્તિત્વ, સમાજજીવન અને રાષ્ટ્રજીવનને સુદૃઢ બનાવે છે, જ્યારે દુષ્કર્મ વ્યક્તિના નૈતિક અધઃપતનનું કારણ બને છે. કર્મ અને પુરુષાર્થનો સંબંધ પરસ્પર પૂરક છે; પુરુષાર્થ કર્મને દિશા આપે છે અને કર્મ પુરુષાર્થને ફળ આપે છે.

તુલનાત્મક અભ્યાસથી જાણવા મળે છે કે ભર્તૃહરિના વિચારો અને માં પ્રતિપાદિત કર્મયોગ, ધર્મ, કર્તવ્ય અને પુરુષાર્થના સિદ્ધાંતો સાથે સુસંગત છે. તેમ છતાં ભર્તૃહરિની વિશેષતા એ છે કે તેઓ આ તત્ત્વોને અત્યંત સરળ, સંક્ષિપ્ત અને વ્યવહારલક્ષી સુભાષિતો દ્વારા રજૂ કરે છે.

આધુનિક પરિસ્થિતિમાં પણ ભર્તૃહરિના વિચારો અત્યંત પ્રાસંગિક છે. સ્પર્ધા, માનસિક તણાવ, નિષ્ફળતાનો ભય અને મૂલ્યસંકટના સમયમાં નીતિશતક વ્યક્તિને ધૈર્ય, આત્મવિશ્વાસ, કર્તવ્યપરાયણતા, સદાચાર અને સતત પ્રયત્નનો માર્ગ બતાવે છે. તેથી ભર્તૃહરિનું જીવનદર્શન માત્ર ઐતિહાસિક કે સાહિત્યિક મહત્ત્વ પૂરતું મર્યાદિત નથી, પરંતુ આધુનિક શિક્ષણ, મૂલ્યશિક્ષણ, વ્યક્તિત્વ વિકાસ, વહીવટ, નેતૃત્વ અને સામાજિક જીવન માટે પણ માર્ગદર્શક છે.

આ સંશોધનનો મુખ્ય નિષ્કર્ષ એ છે કે ભાગ્ય જીવનની પરિસ્થિતિઓનું નિર્માણ કરી શકે છે, પરંતુ જીવનનું ઘડતર પુરુષાર્થ અને સદ્કર્મ દ્વારા જ શક્ય બને છે. આ જ ભર્તૃહરિના નીતિશતકનો કેન્દ્રીય જીવનસંદેશ છે.

■ ભલામણો

પ્રસ્તુત સંશોધનના આધારે નીચેની ભલામણો રજૂ કરવામાં આવે છે:

1. ભર્તૃહરિના નીતિશતકને ભારતીય નૈતિકદર્શન અને મૂલ્યશિક્ષણના મહત્ત્વપૂર્ણ ગ્રંથ તરીકે ઉચ્ચ શિક્ષણના અભ્યાસક્રમોમાં વધુ સ્થાન આપવામાં આવે.
2. ભાગ્ય, કર્મ અને પુરુષાર્થના સિદ્ધાંતોને આધુનિક શિક્ષણમાં વ્યક્તિત્વ વિકાસ, જીવનકૌશલ્ય (Life Skills) અને નૈતિક શિક્ષણ સાથે સાંકળવામાં આવે.
3. ભર્તૃહરિના જીવનદર્શનની તુલના ભારતીય તથા પાશ્ચાત્ય તત્ત્વચિંતકો સાથે કરીને આંતરવિષયક સંશોધનને પ્રોત્સાહન આપવામાં આવે.
4. નીતિશતકની વિવિધ પ્રાચીન હસ્તપ્રતો તથા સમાલોચિત આવૃત્તિઓના આધારે પાઠસમીક્ષા (Textual Criticism) અંગે વધુ સંશોધન હાથ ધરવામાં આવે.
5. ભર્તૃહરિના વિચારોના આધારે નેતૃત્વ, જાહેર વહીવટ, કોર્પોરેટ નૈતિકતા અને સુશાસન (Good Governance) અંગે વિશેષ અભ્યાસ કરવામાં આવે.
6. ગુજરાતી સહિત ભારતીય ભાષાઓમાં નીતિશતકના પ્રમાણભૂત અનુવાદ, વ્યાખ્યા અને સંશોધનસાહિત્યની રચના કરવામાં આવે જેથી વિદ્યાર્થીઓ અને સંશોધકોને વિશ્વસનીય અભ્યાસસામગ્રી ઉપલબ્ધ બને.

7. ભવિષ્યના સંશોધનમાં નીતિશતક, વૈરાગ્યશતક અને શૃંગારશતકના સમન્વિત જીવનદર્શનનું તુલનાત્મક અધ્યયન કરવામાં આવે.
8. ભર્તૃહરિના વિચારોને આધુનિક માનસશાસ્ત્ર, પ્રેરણાસિદ્ધાંત (Motivation Theory), સકારાત્મક મનોચિકિત્સા (Positive Psychology) અને નૈતિક નેતૃત્વના પરિપ્રેક્ષ્યમાં પુનઃમૂલ્યાંકિત કરવામાં આવે.

● **અંતિમ અવલોકન**

ભર્તૃહરિના નીતિશતકમાં ભાગ્ય, કર્મ અને પુરુષાર્થનો સમન્વય ભારતીય જ્ઞાનપરંપરાની સંતુલિત અને વ્યવહારલક્ષી વિચારધારાનું પ્રતિનિધિત્વ કરે છે. આ ગ્રંથ મનુષ્યને ભાગ્યનો દાસ નહીં પરંતુ સદ્કર્મ, જ્ઞાન અને પુરુષાર્થ દ્વારા પોતાના જીવનનો ઘડવૈયો બનવાનો પ્રેરણાદાયી સંદેશ આપે છે. આથી નીતિશતકનું જીવનદર્શન પ્રાચીન ભારતીય તત્ત્વજ્ઞાનની અમૂલ્ય ધરોહર હોવા ઉપરાંત આધુનિક માનવસમાજ માટે પણ સમાન રીતે પ્રેરણારૂપ અને માર્ગદર્શક છે.

સંદર્ભો

1. Bhartrhari. (1961). The Nīti and Vairāgya Śatakas of Bhartrhari (M. R. Kale, Ed.). Motilal Banarsidass.
2. Bhartrhari. (2009). Śatakatrayam (Rev. ed.). Chaukhamba Sanskrit Series Office.
3. Radhakrishnan, S. (2008). Indian philosophy (Vols. 1–2). Oxford University Press.
4. Hirianna, M. (2015). The essentials of Indian philosophy. Motilal Banarsidass.
5. Dasgupta, S. (1975). A history of Indian philosophy (Vol. 1). Motilal Banarsidass.
6. Radhakrishnan, S. (1948). The Bhagavadgītā. George Allen & Unwin.
7. Kane, P. V. (1974). History of Dharmaśāstra (Vol. 2). Bhandarkar Oriental Research Institute.
8. Olivelle, P. (Trans.). (2005). Manu's Code of Law: A critical edition and translation of the Mānava-Dharmaśāstra. Oxford University Press.
9. Patton, L. L. (Trans.). (2008). The Bhagavad Gita. Penguin Books.
10. Sharma, C. (2003). A critical survey of Indian philosophy. Motilal Banarsidass.

भारतीय राष्ट्रीय संचेतना के पुरोधा: महर्षि दयानन्द सरस्वती

डॉ. शारदा बी. राठोड

आसिस्टेंट प्रोफेसर, अनुस्रातक संस्कृत भवन,
सौराष्ट्र यूनिवर्सिटी, राजकोट

शोधसार

प्रस्तुत शोध-लेख आधुनिक भारत के निर्माता और सांस्कृतिक पुनर्जागरण के अग्रदूत महर्षि दयानन्द सरस्वती के उन वैचारिक योगदानों का विश्लेषण करता है, जिन्होंने भारतीय राष्ट्रीय संचेतना को एक नई दिशा प्रदान की। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में, जब भारत औपनिवेशिक दासता और सामाजिक कुरीतियों के दोहरे संकट से जूझ रहा था, स्वामी दयानन्द ने 'वेदों की ओर लौटो' का आह्वान कर राष्ट्र की सुप्त आत्मा को झकझोरा।

इस शोध का मुख्य उद्देश्य स्वामी जी द्वारा प्रतिपादित 'स्वराज्य', 'स्वभाषा' और 'स्वदेशी' की अवधारणाओं का राष्ट्रीय आंदोलन के संदर्भ में परीक्षण करना है। लेख में यह स्पष्ट किया गया है कि कैसे उन्होंने धार्मिक सुधारों को राष्ट्रीय अखंडता से जोड़ते हुए जातिवाद और अस्पृश्यता (छुआछूत) का खंडन किया, जिसे वे राष्ट्रीय उन्नति का मुख्य अवरोध मानते थे। शोध इस तथ्य को भी रेखांकित करता है कि 'स्वराज्य' शब्द के सर्वप्रथम उद्घोषक होने के नाते, उनके विचारों ने न केवल क्रांतिकारी आन्दोलनों को वैचारिक ऊर्जा दी, बल्कि परवर्ती जन-आन्दोलनों के लिए एक सुदृढ़ आधारभूमि तैयार की।

शब्द-कुंजी (Keywords): महर्षि दयानन्द, राष्ट्रीय संचेतना, स्वराज्य, आर्यावर्त, वेदों की ओर लौटो, सामाजिक समरसता, आर्य समाज।

• प्रस्तावना

"उठो, जागो और श्रेष्ठता को प्राप्त करो"-वेदों के इस अमर संदेश को 19वीं शताब्दी के मूर्च्छित भारत में पुनः प्राणवायु के रूप में फूंकने वाले महापुरुष महर्षि दयानन्द सरस्वती थे। भारतीय राष्ट्रीय संचेतना के इतिहास में स्वामी दयानन्द का प्राकट्य एक ऐसी युगांतरकारी घटना थी, जिसने न केवल धार्मिक और सामाजिक रूढ़ियों पर प्रहार किया, बल्कि भारतीय जनमानस में 'स्व' (स्वधर्म, स्वभाषा, स्वदेश और स्वराज्य) की चेतना को जागृत कर राष्ट्रवाद की सुदृढ़ आधारशिला रखी।

तत्कालीन भारत जब औपनिवेशिक दासता, सांस्कृतिक हीनभावना और आंतरिक कुरीतियों के तिमिर में जकड़ा हुआ था, तब महर्षि ने 'वेदों की ओर लौटो' का शंखनाद कर भारतीयों को उनकी विस्मृत विरासत का बोध कराया। उन्होंने यह सिद्ध किया कि भारत की अवनति का कारण बाहरी आक्रमणों से अधिक हमारी आंतरिक अविद्या और फूट है। स्वामी जी का राष्ट्रवाद केवल राजनीतिक अधिकारों की मांग नहीं था, बल्कि वह चरित्र-निर्माण और मानसिक स्वतंत्रता का एक समग्र दर्शन था।

इतिहासकारों का मत है कि स्वामी दयानन्द वे प्रथम मनीषी थे, जिन्होंने विदेशी सत्ता की चकाचौंध के बीच निर्भीकता से घोषित किया कि "स्वदेशी राज्य सर्वोपरि उत्तम होता है।" उन्होंने आर्यावर्त की प्राचीन सीमाओं और उसके राजनैतिक गौरव का पुनःस्मरण कराकर बिखरे हुए समाज को एक सूत्र में

पिरोने का कार्य किया। उनके द्वारा स्थापित 'आर्य समाज' केवल एक संस्था नहीं, बल्कि राष्ट्रीय संचेतना का एक ऐसा केंद्र बना, जिसने लाला लाजपत राय, रामप्रसाद बिस्मिल और स्वामी श्रद्धानन्द जैसे असंख्य राष्ट्रभक्तों को जन्म दिया

प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य महर्षि दयानन्द सरस्वती के उन विचारों और कार्यों का विश्लेषण करना है, जिन्होंने भारतीय राष्ट्रीयता को एक नई दिशा प्रदान की। यह शोध इस बात की विवेचना करता है कि कैसे उनके सामाजिक सुधार, भाषाई एकता के प्रयास और स्वराज्य की संकल्पना ने आधुनिक भारत के निर्माण में 'पुरोधा' की भूमिका निभाई।

• ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य और 'वेदों की ओर लौटो' का सिद्धांत

महर्षि दयानन्द के 'वेदों की ओर लौटो' के सिद्धांत ने भारतीय राष्ट्रीय संचेतना को एक सुदृढ़ दार्शनिक आधार प्रदान किया। उन्होंने इतिहास के उन पन्नों को पुनः खोला, जिन्हें औपनिवेशिक शिक्षा पद्धति ने धुंधला कर दिया था। उनके लिए वेदों की ओर लौटना, सत्य की ओर लौटना था। इस सिद्धांत ने भारतीयों को यह विश्वास दिलाया कि वे एक पराजित जाति नहीं, बल्कि उन महान ऋषियों की संतान हैं जिन्होंने मानवता को प्रकाश दिया। इसी सांस्कृतिक आत्मविश्वास ने आगे चलकर राजनीतिक स्वतंत्रता के संघर्ष को एक अजेय शक्ति प्रदान की। स्वामी जी ने राष्ट्र की संचेतना जगाने के लिए ऋग्वेद के इस अंतिम सूक्त पर बहुत बल दिया, जो सामूहिक शक्ति और वैचारिक एकता का आधार है:

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।

देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥ (ऋग्वेद १०.१९१.२)

■ तत्कालीन ऐतिहासिक पृष्ठभूमि: एक वैचारिक संकट

स्वामी दयानन्द का समय (19वीं शताब्दी का उत्तरार्ध) भारत के लिए एक गहरा संक्रमण काल था। 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की विफलता के बाद भारतीयों में निराशा और आत्म-ग्लानि का भाव था। ईसाई मिशनरियाँ और पाश्चात्य शिक्षा भारतीय संस्कृति को 'अंधविश्वासी' और 'पिछड़ा' सिद्ध कर रही थीं। समाज दो हिस्सों में बंटा था-एक वर्ग वह था जो रूढ़िवाद में फंसा था, और दूसरा वह जो पाश्चात्य सभ्यता के रंग में रंगकर अपनी जड़ों को भूल रहा था। तत्कालीन भारत की सबसे बड़ी ऐतिहासिक समस्या 'आपसी फूट' थी। वैचारिक संकट यह था कि हम एक राष्ट्र के रूप में सोचना भूल गए थे। इसके समाधान हेतु स्वामी जी इस मंत्र को राष्ट्र की परम औषधि मानते थे:

न वि जानामि यदिवेदमस्मि निण्यः सन्नद्धो मनसा चरामि । (ऋग्वेद १.१६४.३७)

■ वेदों की ओर लौटो: महर्षि दयानन्द का सांस्कृतिक राष्ट्रवाद एवं नवजागरण

स्वामी जी ने अनुभव किया कि भारत की पराधीनता का मूल कारण राजनीतिक शक्ति का अभाव नहीं, बल्कि सांस्कृतिक पतन है। उन्होंने 'वेदों की ओर लौटो' का नारा दिया, जिसका अर्थ 'पीछे हटना' नहीं, बल्कि 'मूल सत्यों' को फिर से अपनाना था।

वेदः सत्य ज्ञान के स्रोतः स्वामी जी के अनुसार, वेद ईश्वरीय ज्ञान हैं जो सृष्टि के आदि में दिए गए। उन्होंने यह स्थापित किया कि वेद विज्ञान, सामाजिक न्याय और राजधर्म के सर्वोच्च सिद्धांतों से परिपूर्ण हैं।

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।

छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥ (ऋग्वेद १०.९०.९ / यजुर्वेद ३१.७)

कुरीतियों पर प्रहारः उन्होंने वेदों के आधार पर सिद्ध किया कि वैदिक काल में बाल-विवाह, सती प्रथा, मूर्तिपूजा और जन्म आधारित जातिवाद का कोई स्थान नहीं था। इससे उन भारतीयों में आत्मविश्वास

जागा जो अपनी संस्कृति को हेय समझने लगे थे। समाज में सबसे बड़ी विकृति 'छुआछूत' और 'जन्मना जातिवाद' थी। स्वामी जी ने इस मंत्र से सिद्ध किया कि ईश्वर की दृष्टि में सब समान हैं:

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः ।

ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय ॥ (यजुर्वेद २६.२)

■ गौरवशाली अतीत के माध्यम से राष्ट्रीय गौरव का जागरण

स्वामी दयानन्द ने ऐतिहासिक साक्ष्यों के माध्यम से यह सिद्ध किया कि भारत कभी 'विश्व-गुरु' था। उन्होंने अपने अमर ग्रंथ 'सत्यार्थ प्रकाश' में उल्लेख किया कि प्राचीन काल में भारत का वैश्विक प्रभाव था। इस गौरवमयी इतिहास का वर्णन करने का उनका मुख्य उद्देश्य भारतीयों की 'हीनभावना' को समाप्त करना था।

चक्रवर्ती साम्राज्य: उन्होंने महाराज भरत, राम और युधिष्ठिर के शासन काल का उदाहरण देकर बताया कि भारत ने ही संपूर्ण विश्व को सभ्यता और राजनीति सिखाई है। महर्षि दयानन्द ने भारत के राजनैतिक वैभव को रेखांकित करते हुए मनुस्मृति के श्लोक द्वारा यह सिद्ध किया कि आर्यावर्त ही विश्व की राजनीति का केंद्र था। उन्होंने महाराज भरत और युधिष्ठिर के 'चक्रवर्ती' स्वरूप का वर्णन कर भारतीयों को यह स्मरण कराया कि हम कभी वैश्विक प्रशासक रहे हैं, अतः वर्तमान दासता को त्यागकर पुनः स्वराज्य की ओर बढ़ना हमारा ऐतिहासिक दायित्व है।

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।

स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥ (मनुस्मृति २.२०)

मानसिक दासता का अंत: उनका दृढ़ विश्वास था कि जब तक कोई राष्ट्र अपनी ऐतिहासिक महानता पर गर्व नहीं करता, वह स्वतंत्रता के लिए संघर्ष नहीं कर सकता। 'वेदों की ओर लौटो' वस्तुतः मानसिक गुलामी की बेड़ियों को काटने का एक सशक्त वैचारिक अस्त्र था।

■ आधुनिकता और वेद का समन्वय

स्वामी दयानन्द का राष्ट्रवाद केवल अतीत का अंधानुकरण या कोरी प्रशंसा नहीं था। उन्होंने वेदों को आधुनिक विज्ञान और तर्क के साथ जोड़ा। उन्होंने स्पष्ट किया कि रेल, तार, और अन्य वैज्ञानिक आविष्कार वेदों के सिद्धांतों के प्रतिकूल नहीं हैं। इस प्रकार, उन्होंने एक ऐसे आधुनिक भारत की नींव रखी जो अपनी जड़ों से जुड़ा हो और विज्ञान की दिशा में भी अग्रसर हो।

● आर्यावर्त की संकल्पना और भौगोलिक राष्ट्रवाद

स्वामी दयानन्द का 'आर्यावर्त' दर्शन आधुनिक भौगोलिक राष्ट्रवाद की आधारशिला है। उन्होंने उस समय भारत की सीमाओं का स्मरण कराया जब भारत राजनीतिक रूप से पूर्णतः छिन्न-भिन्न था। आर्यावर्त की उनकी संकल्पना ने उत्तर और दक्षिण, पूर्व और पश्चिम के भेदभाव को मिटाकर एक सशक्त और गौरवशाली 'सांस्कृतिक मानचित्र' तैयार किया, जिसने आने वाले समय में स्वतंत्रता सेनानियों को 'भारत माता' के विचार के लिए प्रेरित किया।

■ आर्यावर्त: नामकरण और सांस्कृतिक पहचान

स्वामी जी ने 'सत्यार्थ प्रकाश' में स्पष्ट किया कि इस देश का प्राचीन और वास्तविक नाम 'आर्यावर्त' है। उन्होंने तर्क दिया कि 'आर्य' किसी विशेष प्रजाति (Race) का नाम नहीं, बल्कि 'श्रेष्ठ' गुणों, कर्मों और स्वभाव वाले मनुष्यों का सूचक है। चूंकि प्राचीन काल से ही यहाँ श्रेष्ठ मनुष्यों का निवास रहा है, इसलिए इस भू-भाग का नाम आर्यावर्त पड़ा।

- **आर्यावर्त की भौगोलिक सीमाएँ: एक अखंड मानचित्र**
दयानन्द जी ने मनुस्मृति और अन्य वैदिक ग्रंथों का प्रमाण देते हुए आर्यावर्त की जो सीमाएँ निर्धारित कीं, वे आज के 'अखंड भारत' की संकल्पना को पुष्ट करती हैं। उनके अनुसार:

आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात् ।

तयोरेवान्तरं गिर्योरायवर्तं विदुर्बुधाः ॥ (मनुस्मृति २.२२)

उत्तर और दक्षिण: उत्तर में हिमालय की मध्यरेखा से लेकर दक्षिण में रामेश्वरम और विंध्याचल की विस्तृत श्रेणियों तक।

पूर्व और पश्चिम: पूर्व में दृषद्वती नदी (जो नेपाल और उत्तर-पूर्व के पहाड़ों से निकलकर बंगाल की खाड़ी तक जाती है) और पश्चिम में 'अटक' (सिंधु नदी क्षेत्र) तक।

स्वामी जी की यह व्याख्या क्रांतिकारी थी क्योंकि उन्होंने विंध्याचल को केवल मध्य भारत की एक छोटी पहाड़ी न मानकर उसे दक्षिण भारत की संपूर्ण पर्वतमालाओं का प्रतीक माना, जिससे उत्तर और दक्षिण भारत भौगोलिक रूप से एक अटूट इकाई बन गए।

- **राष्ट्र को आर्य (श्रेष्ठ) बनाने का संकल्प**

आर्यावर्त की सांस्कृतिक पहचान केवल भौगोलिक सीमाओं तक सीमित नहीं थी, बल्कि पूरे विश्व को सभ्य बनाना इसका परम लक्ष्य था:

इन्द्रं वर्धन्तो अमुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम् । (ऋग्वेद ९.६३.५)

अर्थात् ऐश्वर्य को बढ़ाते हुए और निरंतर कर्मशील रहते हुए, हम संपूर्ण विश्व को 'आर्य' (श्रेष्ठ और सुसंस्कृत) बनाएँ। उनके इस सिद्धांत ने भारतीयों को यह गौरव प्रदान किया कि वे इस भूमि के मूल निवासी हैं, न कि कोई बाहरी आक्रमणकारी। इसने 'भौगोलिक राष्ट्रवाद' को एक नई ऊर्जा दी।

- **आर्यावर्त: विश्व का सर्वश्रेष्ठ भू-खंड**

स्वामी जी के अनुसार, आर्यावर्त संपूर्ण भूगोल का सबसे उत्तम हिस्सा है। वे लिखते हैं कि ईश्वर ने इस भूमि को सुवर्ण भूमि बनाया है क्योंकि यहाँ की जलवायु, वनस्पतियाँ और खनिज संपूर्ण विश्व में सर्वश्रेष्ठ हैं:

"आर्यलोग सब भूगोल में उत्तम इस भूमि के खण्ड को जानकर यहीं आकर बसे, इसी से इस देश का नाम आर्यावर्त हुआ।"

- **भौगोलिक राष्ट्रवाद का प्रभाव**

स्वामी दयानन्द का यह भौगोलिक वर्णन केवल सीमाओं का निर्धारण नहीं था, बल्कि खंडित और रियासतों में बँटे भारत को एक राष्ट्र-राज्य (Nation-State) के रूप में देखने की दृष्टि थी। उन्होंने भारतीयों को यह सिखाया कि हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक की यह भूमि हमारी माता है और इसकी रक्षा करना हमारा परम धर्म है।

- **स्वराज्य, स्वदेशी और स्वभाषा (राष्ट्रीय संचेतना के तीन स्तंभ)**

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने स्वराज्य, स्वदेशी और स्वभाषा को राष्ट्रीय संचेतना के अनिवार्य अंग के रूप में प्रतिपादित किया। उनके अनुसार, जिस राष्ट्र के पास अपनी भाषा नहीं वह मूक है, जिसका अपना आर्थिक आधार (स्वदेशी) नहीं वह याचक है, और जिसका अपना शासन (स्वराज्य) नहीं वह मृतप्राय है। इन तीनों 'स्व' के सामंजस्य से ही उन्होंने एक ऐसे 'श्रेष्ठ भारत' की कल्पना की, जो वैचारिक और भौतिक दोनों रूप से स्वतंत्र हो। यह त्रिपक्षीय दर्शन ही आगे चलकर भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की मूल ऊर्जा बना।

■ स्वराज्य: राष्ट्रीय स्वतंत्रता का प्रथम शंखनाद

स्वामी दयानन्द सरस्वती आधुनिक भारत के इतिहास में 'स्वराज्य' शब्द का मंत्र देने वाले प्रथम उद्घोषक थे। उन्होंने 'सत्यार्थ प्रकाश' के छठे समुल्लास में राजधर्म की व्याख्या करते हुए राजनीतिक परतंत्रता को राष्ट्र के लिए सबसे बड़ा अभिशाप बताया।

स्वदेशी राज्य की श्रेष्ठता: स्वामी जी ने निर्भीकता से लिखा- "कोई कितना ही करे, परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है। चाहे वह (विदेशी राज्य) निष्पक्ष, न्यायकारी और प्रजा पर माता-पिता के समान कृपा करने वाला ही क्यों न हो, वह भी पूर्ण सुखदायक नहीं हो सकता।"

लोकतांत्रिक दृष्टि: उनका स्वराज्य केवल सत्ता का परिवर्तन नहीं था, बल्कि वह वेदानुकूल न्याय व्यवस्था पर आधारित था, जहाँ शासक प्रजा के प्रति उत्तरदायी हो। उन्होंने 'सभा' और 'समिति' के माध्यम से शासन के विकेंद्रीकरण की वकालत की। स्वामी जी ने 'सत्यार्थ प्रकाश' के राजधर्म प्रकरण में इस मंत्र को उद्धृत कर यह सिद्ध किया कि राजा अकेले निर्णय नहीं ले सकता:

सभा च मा समितिश्चावतां प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने।

येना संगच्छा उप मा स शिक्षात् चारु वदानि पितरः संगतेषु ॥ (अथर्ववेद २.२७.१२)

अर्थात् सभा और समिति-ये दोनों प्रजापति (राष्ट्र/शासक) की दो दुहित्राओं (पुत्रियों) के समान हैं। ये आपस में मिलकर राष्ट्र की रक्षा करें। मैं जिसकी सहायता लूँ, वह मुझे उचित शिक्षा दे और मैं सभा के बीच में सबके प्रिय और न्यायोचित वचन बोलूँ।

■ स्वदेशी: आर्थिक स्वावलंबन का मार्ग

स्वामी दयानन्द ने यह भली-भांति समझ लिया था कि भारत की राजनैतिक पराधीनता के पीछे आर्थिक निर्बलता एक बड़ा कारण है। उन्होंने भारतीय धन को देश से बाहर जाने से रोकने के लिए 'स्वदेशी' का आह्वान किया।

आत्मनिर्भरता: उन्होंने स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग को राष्ट्रभक्ति का अनिवार्य अंग माना। उनका मानना था कि जब तक हम अपनी आवश्यकताओं के लिए विदेशी शक्तियों पर निर्भर रहेंगे, हम वास्तव में स्वतंत्र नहीं हो सकते।

आर्थिक राष्ट्रवाद: स्वामी जी के स्वदेशी के विचार ने ही आगे चलकर स्वदेशी आंदोलन (1905) और महात्मा गांधी के 'चरखा' एवं 'खादी' आंदोलनों को वैचारिक धरातल प्रदान किया। उन्होंने दरिद्रता दूर करने के लिए भारतीय कला, कौशल और व्यापार को प्रोत्साहन देने पर बल दिया।

■ स्वभाषा: राष्ट्र को जोड़ने वाला भाषाई सूत्र

एक राष्ट्र की संचेतना उसकी निज भाषा में सुरक्षित रहती है। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अनुभव किया कि भारत की अनेकता को एकता में बदलने के लिए एक 'संपर्क भाषा' (Lingua Franca) की नितांत आवश्यकता है।

हिंदी (आर्यभाषा) का चयन: महर्षि की मातृभाषा गुजराती थी और वे संस्कृत के प्रकांड विद्वान थे, फिर भी उन्होंने जन-जन तक पहुँचने के लिए 'हिंदी' को चुना। उन्होंने हिंदी को 'आर्यभाषा' की संज्ञा दी।

सांस्कृतिक एकता का माध्यम: उन्होंने अपने प्रवचन और पत्र-व्यवहार हिंदी में किए और 'सत्यार्थ प्रकाश' जैसे महान ग्रंथ की रचना भी हिंदी में की ताकि कन्याकुमारी से लेकर हिमालय तक का सामान्य नागरिक राष्ट्रीय चेतना से जुड़ सके।

विदेशी भाषा का विरोध: वे विदेशी भाषा (अंग्रेजी) के माध्यम से शिक्षा देने के विरोधी थे क्योंकि उनका मानना था कि पराई भाषा मानसिक दासता को जन्म देती है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती के भाषाई दर्शन का सार भारतेन्दु हरिश्चंद्र की इन पंक्तियों में भी झलकता है, जिसका वैचारिक आधार स्वामी जी के आर्य समाज ने ही तैयार किया था:

"निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।

बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल॥"

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने ऋग्वेद के 'समानो मन्त्रः समितिः समानी' के आदर्श को चरितार्थ करने के लिए 'स्वभाषा' (हिंदी) को अनिवार्य माना। उन्होंने यजुर्वेद के 'वाचं कल्याणी' के सिद्धांत को जन-जन तक पहुँचाने हेतु संस्कृत के प्रकांड विद्वान् होते हुए भी हिंदी को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। उनका मानना था कि 'विवाचसं' (विभिन्न भाषाओं) वाले इस राष्ट्र को केवल एक सशक्त 'आर्यभाषा' ही राष्ट्रीय संचेतना के सूत्र में पिरोसी जा सकती है।

• सामाजिक सुधार के माध्यम से राष्ट्रीय अखंडता

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अनुभव किया कि भारत की पराधीनता का एक बड़ा कारण इसकी सामाजिक जड़ता और आंतरिक बिखराव था। उन्होंने सामाजिक सुधारों को केवल 'परोपकार' के रूप में नहीं, बल्कि 'राष्ट्र-निर्माण' की एक अनिवार्य प्रक्रिया के रूप में देखा।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार करके राष्ट्र के बिखरे हुए अंगों को पुनः जोड़ने का ऐतिहासिक कार्य किया। उनके लिए सामाजिक न्याय ही राष्ट्रीय अखंडता की आधारशिला थी। उन्होंने अस्पृश्यता मिटाकर दलितों को गले लगाया और शिक्षा देकर महिलाओं को सशक्त किया। इस सामाजिक समरसता ने ही वह धरातल तैयार किया, जिस पर खड़ा होकर भारतीय स्वतंत्रता संग्राम एक जन-आन्दोलन बन सका। उनके सुधारों ने सिद्ध किया कि एक न्यायपूर्ण समाज ही एक अपराजेय राष्ट्र बन सकता है।

▪ जातिवाद और छुआछूत का उन्मूलन

स्वामी जी ने वेदों के आधार पर यह सिद्ध किया कि जन्म के आधार पर ऊँच-नीच का कोई स्थान नहीं है। उन्होंने वर्ण व्यवस्था को 'जन्म' के बजाय 'गुण-कर्म-स्वभाव' पर आधारित बताया।

अखंडता का मंत्र: उनका मानना था कि जब तक समाज का एक वर्ग (शूद्र/दलित) अपमानित और उपेक्षित रहेगा, तब तक राष्ट्र कभी भी एकजुट होकर विदेशी शत्रुओं का सामना नहीं कर पाएगा।

अधिकारों की समानता: उन्होंने दलितों को 'यज्ञोपवीत' (जनेऊ) धारण करने और 'वेद' पढ़ने का अधिकार दिया, जो उस समय एक महान सामाजिक क्रांति थी। इसने समाज के दबे-कुचले वर्गों को राष्ट्र की मुख्यधारा से जोड़कर राष्ट्रीय अखंडता को अभूतपूर्व बल प्रदान किया।

नारी शक्ति और राष्ट्र का उत्थान

स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनुसार, राष्ट्र उस पक्षी के समान है जिसके दो पंख 'स्त्री' और 'पुरुष' हैं। यदि एक पंख घायल होगा, तो राष्ट्र रूपी पक्षी उड़ नहीं भर सकता। स्वामी जी ने 'सत्यार्थ प्रकाश' के चतुर्थ समुल्लास 'गृहस्थ और राजधर्म' प्रकरण में इस श्लोक को सर्वाधिक महत्व दिया है:

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।

यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ॥ (मनुस्मृति ३.५६)

स्त्री शिक्षा: उन्होंने कन्याओं के लिए गुरुकुलों की स्थापना पर बल दिया। उनके अनुसार, शिक्षित माता ही श्रेष्ठ संतान और चरित्रवान नागरिक तैयार कर सकती है।

कुरीतियों का विरोध: उन्होंने बाल-विवाह, पर्दा-प्रथा और सती-प्रथा जैसी कुरीतियों का कड़ा विरोध किया और विधवा-विवाह का पुरजोर समर्थन किया। इन सुधारों ने समाज के आधे हिस्से (महिलाओं) को राष्ट्र-निर्माण के कार्य में सक्रिय भागीदार बनाया।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते...' के माध्यम से नारी को राष्ट्र की गरिमा के रूप में स्थापित किया। उन्होंने अथर्ववेद के 'ब्रह्मचर्येण कन्या...' का प्रमाण देकर बाल-विवाह जैसी कुरीति पर प्रहार किया और स्त्री-शिक्षा के द्वार खोले। उनका मानना था कि वेदों में नारी को 'सम्राज्ञी' कहा गया है, अतः राष्ट्र के उत्थान के लिए नारी का सशक्तिकरण केवल सामाजिक सुधार नहीं, बल्कि एक अनिवार्य राष्ट्रीय आवश्यकता है।

■ **अंधविश्वास और पाखंड का खंडन**

राष्ट्रीय संचेतना के मार्ग में अंधविश्वास और पाखंड सबसे बड़ी बाधाएँ थीं। स्वामी जी ने 'परोपकारिणी सभा' और 'आर्य समाज' के माध्यम से तर्क और विज्ञान का प्रसार किया। उन्होंने बताया कि मूर्तिपूजा, मृतक श्राद्ध और अवतारवाद जैसे भ्रमों ने भारतीयों को पुरुषार्थहीन बना दिया है। मानसिक स्वतंत्रता ही वास्तविक राजनैतिक स्वतंत्रता की जननी है।

■ **चरित्र-निर्माण और ब्रह्मचर्य**

एक 'श्रेष्ठ भारत' के लिए 'श्रेष्ठ नागरिकों' की आवश्यकता होती है। स्वामी जी ने युवाओं के लिए ब्रह्मचर्य (आत्म-नियंत्रण) और सदाचार को अनिवार्य बताया। उन्होंने कहा कि जिस देश का युवा चरित्रवान और बलवान होगा, उस देश की अखंडता को कोई भी चुनौती नहीं दे सकता। उनके द्वारा प्रवर्तित गुरुकुलीय शिक्षा पद्धति का मूल उद्देश्य ऐसे ही राष्ट्रवादी नागरिक तैयार करना था।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अथर्ववेद के 'ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपान्नत' के माध्यम से यह प्रतिपादित किया कि राष्ट्र की मृत्यु (पतन) को केवल ब्रह्मचर्य और चरित्र के बल पर ही रोका जा सकता है। उन्होंने मनुस्मृति के 'वृत्तं यत्नेन संरक्षेद्' का उदाहरण देकर स्पष्ट किया कि राष्ट्रीय संचेतना का प्राण 'चरित्र' है। उनके अनुसार, जिस राष्ट्र के युवा संयमी और जितेन्द्रिय होंगे, वही राष्ट्र 'स्वराज्य' का वास्तविक सुख भोग सकेगा।

■ **'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' और 'वसुधैव कुटुम्बकम्'**

महर्षि का सामाजिक सुधार संकीर्ण नहीं था। उन्होंने 'आर्य' (श्रेष्ठ) बनने का आह्वान केवल भारतीयों के लिए नहीं, बल्कि संपूर्ण मानवता के लिए किया। उनके सामाजिक सुधारों का अंतिम लक्ष्य एक ऐसे 'आर्य राष्ट्र' का निर्माण करना था जो विश्व शांति और बंधुत्व का नेतृत्व कर सके। महर्षि दयानन्द सरस्वती का राष्ट्रवाद संकीर्णता से परे था। जहाँ 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के माध्यम से उन्होंने समस्त मानवता को एक परिवार माना, वहीं 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' के माध्यम से उस परिवार के प्रत्येक सदस्य को श्रेष्ठ (आर्य), शिक्षित और चरित्रवान बनाने का सक्रिय आह्वान किया। उनके अनुसार, विश्व को परिवार मानना 'भाव' है, और विश्व को श्रेष्ठ बनाना हमारा 'कर्तव्य' है।

● निष्कर्ष

महर्षि दयानन्द सरस्वती के जीवन और उनके राष्ट्रवादी चिंतन का सूक्ष्म विश्लेषण करने के पश्चात यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि वे आधुनिक भारतीय राष्ट्रीय संचेतना के वास्तविक 'पुरोधा' थे। उनका राष्ट्रवाद केवल एक राजनीतिक विरोध नहीं, बल्कि एक व्यापक सांस्कृतिक महाअभियान था। शोध के मुख्य निष्कर्ष निम्नलिखित हैं:

सांस्कृतिक आधार: स्वामी जी ने सिद्ध किया कि भारत की स्वतंत्रता का मार्ग पश्चिमी अनुकरण में नहीं, बल्कि 'वेदों' के शाश्वत मूल्यों में निहित है। उन्होंने भारतीयों को 'आत्म-हीनता' से निकालकर 'आत्म-गौरव' की ओर मोड़ा।

स्वराज्य का मंत्र: जब भारतीय राजनीति केवल क्रमिक सुधारों की मांग कर रही थी, तब दयानन्द सरस्वती ने पूर्ण 'स्वराज्य' और 'स्वदेशी राज्य' का नारा देकर स्वतंत्रता की दिशा तय की।

अखंडता का सूत्र: 'आर्यावर्त' की उनकी संकल्पना ने उत्तर से दक्षिण तक भारत को एक भौगोलिक और सांस्कृतिक सूत्र में पिरोया। उनके सामाजिक सुधारों (जातिवाद और छुआछूत उन्मूलन) ने राष्ट्र की आंतरिक दीवारों को तोड़कर एक अखंड समाज की नींव रखी।

युगांतरकारी प्रभाव: उनके द्वारा स्थापित 'आर्य समाज' ने वह उर्वर भूमि तैयार की, जिससे लाला लाजपत राय, भाई परमानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द और भगत सिंह जैसे क्रांतिकारी उपजे। उनके 'स्वभाषा' (हिंदी) प्रेम ने भारत को एक सुदृढ़ भाषाई पहचान दी।

अंतिम शब्द: एमर्सन ने अपने उद्गार व्यक्त करते हुए लिखा है- "यह स्वीकार करना पड़ेगा कि भारत के सांस्कृतिक व राष्ट्र के नवजागरण में स्वामी दयानन्द का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उनकी मान्यताओं ने एक बार हीनभाव ग्रस्त भारत जाति को अपूर्व उत्साह से भर दिया।" इस प्रकार स्वभाषा, स्वसंस्कृति एवं स्वराज्य के महामन्त्र के अमर गायक तथा राष्ट्र जागरण काल के अग्रणी मेधापुरुष महर्षि दयानन्द भारतीय पुनर्जागरण के पुरोधा, स्वराज्य के प्रथम उद्घोषक तथा नवजागरण के अग्रदूत थे।

प्रसिद्ध कवि रामनरेश त्रिपाठी ने स्वामी दयानन्द सरस्वती की तुलना आदि शंकराचार्य से करते हुए उन्हें भारतीय भाग्य का विधाता बताया है। उन्होंने 'जयन्त' (खंडकाव्य) में लिखा है कि दयानन्द केवल एक समाज सुधारक नहीं, बल्कि कोटि-कोटि विद्वानों के बीच विकट विरोधियों को परास्त करने वाले और आर्य सभ्यता के स्वाभिमानी रक्षक थे-

- ✓ लोकहित चिन्तन में, गृह सुख त्यागी, वेद ब्रह्म का अनन्य अनुरागी ऊर्ध्वरता था।
- ✓ अद्वितीय ज्ञानी, अभिमानी आर्य सभ्यता का, जीवन का दानी धर्म ग्रन्थ का प्रणेता था।
- ✓ ऋषि के समान कोटि-कोटि विद्वतमण्डली में, विकट विरोधियों के वृन्द का विजेता था।
- ✓ भारत के भाग्य का भविष्य रूप दयानन्द, शंकर के बाद हिन्दुओं का श्रेष्ठ नेता था ॥

इंद्र विद्यावाचस्पति जी (जो स्वामी श्रद्धानन्द जी के सुपुत्र और प्रसिद्ध पत्रकार एवं इतिहासकार थे) ने महर्षि दयानन्द सरस्वती के जीवन और उनके राष्ट्रवाद पर अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक 'महर्षि दयानन्द' (Maharshi Dayanand) में विस्तार से लिखा है कि-

"सन १८५७ के क्रांति के पश्चात के उन महापुरुषों की सूची में जिन्हें हम उस क्रांति के मानसिक, सामाजिक और सांस्कृतिक उत्तराधिकारी कह सकते हैं, तो पहला नाम महर्षि दयानन्द सरस्वती का है।"

इसी ग्रन्थ में वे आगे लिखते हैं- "राजनीति में महर्षि दयानन्द सरस्वती जी को नवीन राष्ट्रीयता का अग्रदूत कहें, तो अत्युक्ति नहीं होगी।" आज के २१वीं सदी के वैश्विक युग में, जहाँ राष्ट्र अपनी सांस्कृतिक पहचान बचाने के लिए संघर्ष कर रहे हैं, महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के 'स्वदेशी', 'शिक्षा' और 'चरित्र-निर्माण' के विचार भारत को पुनः 'विश्व-गुरु' बनाने हेतु प्रकाश-स्तंभ के समान प्रासंगिक हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सरस्वती, स्वामी दयानन्द; सत्यार्थ प्रकाश, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली। (मूल प्रकाशन: 1875, संशोधित संस्करण: 1884/प्रचलित मुद्रण 2010)
2. सरस्वती, स्वामी दयानन्द; ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, रामलाल कपूर ट्रस्ट, हरियाणा। (प्रथम प्रकाशन: 1877-1878, ट्रस्ट संस्करण: 2004)
3. उपाध्याय, पं. गंगाप्रसाद; दयानन्द दर्शन, आर्य प्रकाशन, नई दिल्ली। (प्रकाशन वर्ष: 1950)
4. पांड्ये, डॉ. धनपति; महर्षि दयानन्द और भारतीय राष्ट्रवाद, ग्रन्थ अकादमी। (प्रकाशन वर्ष: 1970)
5. सिद्धांतलंकार, सत्यव्रत; वैदिक संस्कृति और आधुनिकता, विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द। (प्रकाशन वर्ष: 1971)
6. सरकार, सुमित; आधुनिक भारत (1885-1947), राजकमल प्रकाशन। (मूल प्रकाशन: 1983, हिंदी अनुवाद: 1993/2009)
7. सिंह, प्रो. शेर; महर्षि दयानन्द के राजनैतिक विचार, दयानन्द संस्थान। (प्रकाशन वर्ष: 1977)
8. त्रिपाठी, रामनरेश; जयन्त (खंडकाव्य), हिंदी मंदिर, प्रयाग, उत्तर प्रदेश। (प्रकाशन वर्ष: 1934)
9. मैक्समूलर, फ्रेडरिक; इण्डिया: व्हाट इट कैन टीच अस, लॉन्गमैन्स, ग्रीन एंड कंपनी, लंदन। (प्रकाशन वर्ष: 1883)